भारत—नये संविधान तक

[जिसमें नवीन संविधान की रूपरेखा, देशी राज्यों के एकीकरण का इतिहास, स्वतंत्रता-प्राप्ति की कहानी, तथा पूर्ववर्ती भारतीय संविधानों का संक्षिप्त विवरण समाविष्ट है।]

लेखक :

श्री मदन मोहन गुप्त,

बी. ए., एल-एल. बी.

प्रकाशक

मक्तबा जामिआ लिमिटेड

डाकघर जामिआनगर, दिल्ली

प्राक्कथन

अब तक हिंदी मुख्यतः धर्म, दर्शन, शुद्ध साहित्य आदि विषयों का ही माध्यम रही है; विज्ञान, राजनीति, कानून, संविधान आदि आधुनिक विषयों में उसका प्रयोग एक सहस्र वर्षों के पश्चात अब ही आरंभ हुआ है। इसी कारण हिन्दी में इन आधुनिक कलाओं के साहित्य तथा पारिभाषिक शब्दावलि तक का सर्वथा अभाव है। अब हिंदी के राजभाषा स्वीकृत होने के साथ साथ कई विश्वविद्यालयों ने उसे शिक्षा का माध्यम स्वीकार कर लिया है, पर इस कार्य में मुख्य कठिनाई पाठ्यक्रम के योग्य हिंदी पुस्तकों का अभाव है। संविधान के विषय पर तो हिंदी में एक भी अच्छी पुस्तक है ही नहीं यद्यपि भारतीय संविधान तथा सांविधानिक इतिहास प्रायः राजनीतिशास्त्र और कानून के विद्यार्थियों के लिये पाठ्यक्रम का आवश्यक अंग होता है। इसके अतिरिक्त जन साधारण को भी इस विषय में रुचि बढ़ रही है। इन सब आवश्यकताओं का ध्यान रख कर ही हमने यह पुस्तक लिखी है।

हमने इस पुस्तक में इस समय तक की सारी उपलब्ध सामग्री दे कर इसे लाभप्रद बनाने का पूरा प्रयत्न किया है। हाल ही के लोक प्रतिनिधित्व अधिनियम, १९५० (Peoples Representation Act, 1950) में से आवश्यक तालिकाएं तथा जनगणना आयुक्त (Census Commissioner) के नवीनतम जनसंख्या के आंकड़े भी इस पुस्तक में समाविष्ट कर दिये गये हैं। हाल ही में भारत सरकार के राज्य मंत्रालय द्वारा प्रकाशित देशी राज्यों संबंधी श्वेतपत्र (White Paper on Indian States) में से भी सुसंगत बातें ले ली गई हैं। भारत का नवीनतम मानचित्र भी दे दिया गया है जिसमें संविधान की प्रथम अनुसूची में उल्लिखित तीनों भागों के राज्यों को भिन्न भिन्न प्रकार से दिखाया गया है।

हमने इस पुस्तक के लिखने में अंग्रेजी की एतद्विषयक पुस्तकों से अबाधरूपेण सहायता ली है जिसके लिये हम उनके कृतज्ञ हैं। इसके अतिरिक्त भारत सरकार तथा संविधान सभा द्वारा प्रकाशित साहित्य का भी

हमने स्वतंत्र प्रयोग किया है। प्रसिद्ध सांविधानिक महत्व के सरकारी लेख्यों का अक्षरशः अनुवाद दिया गया है जिससे अर्थभेद के कारण भ्रम न हो सके।

इस पुस्तक में प्रयुक्त भाषा के विषय में स्पष्टीकरण के लिये कुछ शब्द कह देना अपेक्षित है। अब भारतीय संविधान के सरकारी अनुवाद के प्रकाशित हो जाने से भाषा में एक नई धारा आगई है। १९४९ तक प्रांतों में जो सभाएं थीं उन्हें धारा सभा या व्यवस्थापिका सभा ही कहते थे, किन्तु १९५० से उन्हें विधान-सभा कहा जाने लगा है। इसी प्रकार पहले 'फेडरेशन' को संघ कहते थे और अब 'भारत संघ' का अर्थ 'इंडियन यूनियन' है। किन्तु नवीन संविधान की भाषा का पूर्ण प्रयोग पाठकों के लिये कठिनाई उत्पन्न करने वाला होगा, यह सोच कर हमने उस भाषा का कम प्रयोग करके, प्रायः प्रचलित भाषा का ही प्रयोग किया है। किन्तु अंतिम भाग (नवीन संविधान) में नवीन भाषा का अधिकाधिक प्रयोग किया गया है। भाषा के लिये यह संक्रमण काल है अतः ऐसी असंगतियां होंगी ही, पर हमने पाठकों की सुविधा का ध्यान रख कर ही ऐसा किया है। हमने सामान्यतः मध्य भारत, राजस्थान, उत्तर प्रदेश, मध्यप्रदेश तथा बिहार आदि हिन्दी-भाषी प्रांतों में प्रयुक्त होने वाले शब्दों का ही प्रयोग किया है। श्री सुखसंपत राय भंडारी, महापंडित राहुल सांकृत्यायन तथा आचार्य रघुवीर आदि के सुविख्यात कोषों से भी अनुवाद में सहायता ली गई है जिसके लिये हम उनके आभारी हैं।

हमें आशा है कि यह पुस्तक राजनीतिशास्त्र के छात्रों तथा जन-साधारण के लिये समानरूपेण लाभप्रद सिद्ध होगी और हिन्दी जगत तथ शिक्षा संस्थाएं इसे अपना कर लेखक का साहस बढ़ायेंगी।

नई दिल्ली,
कृष्ण जन्माष्टमी, २००७ वि०,
तदनुसार ४ सितम्बर १९५०

मदन मोहन गुप्त

विषय-सूची

प्रथम भाग

भारत का सांविधानिक इतिहास

प्रथम अध्याय

पृष्ठ

द्वितीय अध्याय

तीसरा अध्याय

चतुर्थ अध्याय

पांचवा अध्याय

छठा अध्याय

द्वितीय भाग

स्वतंत्र भारत का संविधान

प्रथम अध्याय

द्वितीय अध्याय

तृतीय अध्याय

चतुर्थ अध्याय

पांचवां अध्याय

छठा अध्याय

सातवां अध्याय

आठवां अध्याय

नौवां अध्याय

परिशिष्ट

मानचित्र

प्रथम अध्याय

निरंकुशता का राज्यकाल

१. अंग्रेजों से पहले

भारत के प्राचीन इतिहास पर दृष्टिपात करने से प्रतीत होता है कि भारत में समय समय पर विविध प्रकार की शासन प्रणालियां थीं। अधिकतः राजतंत्र का ही प्राधान्य था तथा यूरोप के समान भारत में छोटे छोटे राज्य होते थे जिनमें वंशगत नरेश निरंकुश राज्य करते थे। किन्तु वे प्रजा की इच्छा तथा हितों का ध्यान रखते थे, न्यायानुसार प्रशासन चलाते थे, और यदि कोई नरेश अत्याचार करता था तो उसे सदा अपना राज्य खो देने का भय बना रहता था, क्योंकि अन्य नरेश ऐसे राज्यों को हड़पने के लिये सदा उद्यत रहते थे जहां असंतुष्ट प्रजा उनका स्वागत करने के लिये तैयार रहे।

किन्तु राजतन्त्रों के अतिरिक्त प्राचीन भारत में गणराज्य भी थे जहाँ वंशगत राजा राज्य नहीं करते थे। किन्तु वे गणराज्य भी छोटे छोटे ही थे तथा कोई अधिक शक्तिशाली नहीं बन सका। चाणक्य ने अपने 'कौटिल्य अर्थशास्त्र' में कुछ समकालीन गणराज्यों का वर्णन किया है जिनमें कठ, अरिष्ट, सौभूति, शूद्रक, मालव आदि प्रमुख थे। शायद वे गणराज्य रोम के 'नगर राज्यों' के समान ही होंगे।

मुस्लिम राज्य की स्थापना से उत्तरी भारत की शासन-प्रणाली में कुछ परिवर्तन अवश्य हुए, किन्तु मूलतः वे नये शासक भी जनता के हितों के प्रति नितान्त उदासीन नहीं रहे। उन्होंने प्राचीन ग्राम्य-पंचायतों तथा

प्रादेशिक प्रशासन को अछूता ही छोड़ दिया और स्थानीय प्रजा का सहयोग प्राप्त करने का प्रयत्न किया।

मुस्लिम शक्ति के क्षीण होने के साथ साथ भारत के पृथक पृथक भाग हो गये थे। उत्तर में अफगानिस्तान, काश्मीर एवं पंजाब में सिखों का बोल-बाला था तथा महाराजा रणजीतसिंह जी की लोकप्रिय परन्तु निरंकुश सरकार अपना कार्य भारतीय शासन-प्रणाली के अनुसार चला रही थी, जिसमें जनता की आवाज को पूर्णतः कर्णगोचर किया जाता था। प्राणदंड की प्रथा उठा दी गई थी, जबकि उस समय इंगलिस्तान में छोटे छोटे अपराधों पर क्रूर दंड मिलते थे।

उधर मरहठा साम्राज्य में जनतन्त्र प्रणाली का सर्वोत्तम भारतीय नमूना दृष्टिगोचर होता था। शिवाजी ने मंत्रिमण्डल प्रथा आरम्भ की तथा राष्ट्रीय परिषद् के समान प्रायः एक सभा होती थी जो राज्य-शासन में भाग लेती थी।

उधर दक्षिण में मैसूर के हैदरअली का शासन भी लोकप्रिय था किन्तु शासन प्रणाली राजतन्त्र पर ही आधारित थी। उसके पुत्र टीपू सुल्तान ने सर्व प्रथम भारत में राष्ट्रीय भावना के आधार पर विदेशियों को निकालने के लिये एकता आन्दोलन चलाया था।

उधर अंग्रेजों व फ्रांसीसी लोगों का प्रभुत्व भारत में बढ़ रहा था और महान परिवर्तन हो रहे थे। फ्रांस तो जल्दी ही दौड़ में पिछड़ गया परन्तु अंग्रेज अपना प्रभुत्व जमाने में सफल हो गये। धीरे धीरे उन्होंने मरहठों, सिखों एवं मुसलमानों को भी हरा दिया तथा सारे भारत में उनका कोई प्रतिद्वंद्वी नहीं रहा।

२. अंग्रेजी व्यापार संस्था का राज्य

भारत की शासन प्रणाली में अंग्रेजों के आने से क्रांतिकारी परिवर्तन हुए और भारतीय शासन प्रणाली का सर्वथा नाश हो गया। नया युग आ गया तथा इंगलिस्तान के क्रूर कानूनों के अनुसार शासन होने लगा।

अंग्रेजी राज्य व्यापार की भावना से स्थापित हुआ था अतः प्रारम्भ में एक अंग्रेजी कम्पनी जिसको ईस्ट इंडिया कम्पनी कहते थे, राज्य करती थी। कम्पनी के संचालकों (डाइरेक्टरों) का उद्देश्य आर्थिक होने के कारण

तथा भारत के शासकीय नियमों से अनभिज्ञता के कारण, वे यहां मनमानी करते थे। स्वयं अंग्रेजों पर तो कोई राजनियम लागू था नहीं, पर भारतीयों पर अंग्रेजों के क्रूर नियम लगाये जाते थे। अंग्रेजी कानून के अनुसार ही महाराजा नन्दकुमार को नकली पत्र-लेखन (forgery) पर प्राणदंड दिया गया था।

जैसा ऊपर वर्णन किया जा चुका है भारत में अंग्रेजी व्यापारिक संस्था ही पहले स्थापित हुई थी। वह सन् १६०० से अपना व्यापार अंग्रेजी बादशाह के आज्ञापत्र (Charter) के अनुसार करती रही। पर जब कम्पनी को वास्तव में प्रदेश मिल गया तब उसे ब्रिटिश बादशाह ने आज्ञापत्र द्वारा राज-सत्ता, न्याय-सत्ता तथा वैधानिक सत्ता प्रदान करदी और अपनी मुद्रा चलाने की अनुमति भी दे दी। बहुत समय तक तो वे केवल युद्ध में ही लगे रहे और कोई न्याय-व्यवस्था स्थापित न कर सके पर बाद में उन्होंने मनमाने नियम बना कर धन बटोरना आरम्भ कर दिया। बहुत समय तक कम्पनी का प्रबन्ध तीनों अधीनस्थ प्रांतों—बम्बई, बंगाल, एवं मद्रास में भिन्न भिन्न परिषदों द्वारा होता था जिनमें १२ से १६ तक अंग्रेज सदस्य होते थे। परिषदों के प्रधान लंदन स्थित कम्पनी के संचालक मंडल के प्रति संयुक्त रूप से उत्तरदायी थे।

३. संसद का अंकुश

ज्यों ज्यों कम्पनीकी शक्ति बढ़ती गई, त्यों त्यों इंगलिस्तान की सरकार का ध्यान कम्पनी की ओर अधिक आकर्षित हुआ और वह अपना प्रभुत्व बढाने की चेष्टा करने लगी जिससे कि भारत में अंग्रेजी संसद की सर्वोच्च सत्ता स्थापित हो सके। १७७३ ई० में एक महत्वपूर्ण नियमितकरण अधिनियम (Act)बनाया गया जिससे कम्पनी के आधीन सारे राज्य के लिये एक शासन-प्रणाली का आयोजन किया गया। इसके अनुसार बंगाल भारत के शासनसूत्र का केन्द्र बना दिया गया। वहां एक गवर्नर जनरल रहता था जो चार परामर्श-दाताओं की सहायता से बंगाल का सीधा शासन करता था और मद्रास तथा बम्बई के गवर्नरों (राज्यपालों) एवं परिषदों पर नियन्त्रण रखता था। अधिनियम द्वारा गवर्नर जनरल को नियम-उपनियम बनाने का एवं उन्हें लागू करने का अधिकार दिया गया। क्योंकि गवर्नर जनरल एवं प्रांतीय राज्यपालों की परिषदों में केवल अंग्रेज ही होते थे, अतः सारी राज्य-व्यवस्था विदेशियों के हाथ में ही थी और भारतीय न उनकी भाषा से भिज्ञ थे और न उन्हें राज्य काज में कोई रुचि ही थी।

सबसे महत्वपूर्ण कार्य इस नियमितकरण अधिनियम द्वारा यह हुआ कि न्याय के लिए एक सर्वोच्च न्यायालय की स्थापना की गई, जिसकी शक्ति अंग्रेजी प्रणाली के अनुसार, शासन-सत्ता से परे थी और वह शक्ति ब्रिटिश बादशाह से प्राप्त हुई थी। यह सर्वोच्च न्यायालय, नियमितकरण अधिनियम के अन्तर्गत बादशाह के एक आज्ञापत्र द्वारा १७७४ में कलकत्ते में स्थापित हुआ। इसमें एक मुख्य न्यायाधिपति तथा तीन अन्य न्यायाधीश थे जिन्हें बादशाह नियुक्त करता था। इनके निर्णय के विरुद्ध ब्रिटेन की संसद में अपील करने की भी व्यवस्था की गई थी।

यह बात समझने योग्य है कि विधि-राज्य (Rule of Law) के सिद्धान्त के अनुसार न्यायालय की शक्ति सर्वोच्च मानी जाती है और उसे शासन-सत्ता के अनियमित कार्य को रोकने का अधिकार होता है। सिद्धान्ततः यह नियम अच्छा है क्योंकि शासन-सत्ता को अत्याचार करने से रोकने का कोई मार्ग अवश्य चाहिए, परन्तु विदेशी राज्य, विशेषतः व्यापारिक राज्य, तो दमन पर ही निर्भर रह सकता है। सर्वोच्च न्यायालय सीधा बादशाह के आधीन था एवं वह कम्पनी की उपेक्षा कर ब्रिटिश प्रणाली से न्याय करता था। वह भारत के शासकीय नियमों से भी अनभिज्ञ था। कई बार इसने कम्पनी के स्थापित न्यायालयों की अवहेलना की एवं उनके न्यायाधीशों के विरुद्ध चलाए गये अभियोगों पर ध्यान दिया। इसी सर्वोच्च न्यायालय ने नन्दकुमार को छोटे से अपराध पर अंग्रेजी नियमानुसार मृत्युदण्ड दिया था जब कि भारत में केवल महान अपराधों के लिये ही ऐसा दण्ड नियत था। इसके अतिरिक्त उसने राज्य-सत्ता में भी हस्तक्षेप करना आरम्भ किया जो कम्पनी को बहुत अखरा। गवर्नर जनरल को यह असह्य होगया क्योंकि वह एकाधिपति (तानाशाह) के समान राज्य करना चाहता था। यहां तक कि वह अपने मन्त्रियों के परामर्श के विरुद्ध भी चलना चाहता था। नियमितकरण अधिनियम द्वारा उसे ऐसा करने की अनुमति भी थी। उधर प्रादेशिक राज्यपालों और परिषदों से भी इसका झगड़ा रहने लगा।

इस प्रकार यह नियमितकरण अधिनियम कुछ भी नियमित न कर सका। गवर्नर जनरल की एकतन्त्रीय मनोवृत्ति इसके मार्ग में बाधा थी। दूसरी बात इस अधिनियम द्वारा सर्वोच्च न्यायालय की तो स्थापना कर दी गई पर ठीक तरह से न्याय-प्रणाली की व्यवस्था नहीं की गई। अतः कहीं अंग्रेजी कानूनों का प्रयोग होता था, तो कहीं भारतीय कानूनों का।

४. सन् १७८१ का अधिनियम

परिणामतः १७८१ ई० में ही एक संशोधक अधिनियम बनाया गया। इससे निम्न परिवर्तन हुए:—

(१) सर्वोच्च न्यायालय का अधिकार-क्षेत्र सीमित करके गवर्नर जनरल व उसकी परिषद् को उससे मुक्त कर दिया गया। यह विधि-राज्य के सिद्धान्त के विरुद्ध था और वास्तव में इसके पश्चात भारत में कभी भी पूर्णतया विधि-राज्य स्थापित नहीं किया गया।

(२) सर्वोच्च न्यायालय को अंग्रेजी कानून भारत में लागू न करने का आदेश दिया गया तथा घोषणा की गई कि भारत में हिन्दू व मुसलमानों को उनके धर्मशास्त्रों द्वारा ही उत्तराधिकार, विवाह आदि के विषय में शासित किया जाएगा। इसके अनुसार विवाह, दत्तक प्रथा तथा तलाक आदि के विषय में अब भी मिताक्षर, अथवा शरियत आदि का प्रयोग होता रहा है।

(३) प्रान्तीय न्यायालयों के लिए कानून बनाने का कार्य सपरिषद् गवर्नर जनरल के नियन्त्रण में आगया जिससे वह न्याय के लिए भिन्न भिन्न कानून बना सके।

उपर्युक्त अधिनियम से मानो भारत में पहला शासन-विधान (संविधान) स्थापित हुआ था। किन्तु इसमें सारी शक्ति एक विदेशी व्यक्ति में एकत्रित कर दी गई।

५. पिट का अधिनियम—अधिक नियन्त्रण

इस संशोधन के उपरान्त भी ब्रिटिश सरकार की दृष्टि से एक कमी ही रही कि भारत का वास्तविक राज्य-शासन कम्पनी के संचालकगण के अधीन ही था और वे ब्रिटिश संसद् के प्रति उत्तरदायी न थे। अतः १७८७ में प्रधान मन्त्री पिट ने एक महत्वपूर्ण भारतीय अधिनियम बनाया जिसके अनुसार संसद् के छः कमिश्नरों का एक नियन्त्रक-मण्डल बना दिया गया जो भारत का शासन-प्रबन्ध करने का अधिकारी हो गया। परन्तु कम्पनी के संचालक मण्डल को गवर्नर आदि नियुक्त करने का अधिकार फिर भी रहा। इस प्रकार एक द्विमुखी नियन्त्रण (Dual Govt.) स्थापित हुआ जो दोषपूर्ण होता ही है। तत्पश्चात शनैः-शनैः कम्पनी के राज्य का विस्तार होने के

साथ साथ ब्रिटिश संसद् ने अपना नियन्त्रण और भी कड़ा करना आरम्भ किया। १८१३ में संसद् ने एक नया अधिनियम बना कर मद्रास, बम्बई और बंगाल की परिषदों की शक्ति को बढ़ा दिया तथा उनको कर लगाने एवं संसद् के नियन्त्रण में युद्ध आदि करने की शक्ति दे दी। इस प्रकार संसद् ने भारत में अपनी प्रभुशक्ति का परिचय दिया।

६. सन् १८३३ का संविधान व एकीकरण की प्रवृत्ति

१८३३ में पुनः एक नया अधिनियम बनाया गया जिसमें

(१) कम्पनी को अपनी अर्जित भूमि पर बादशाह की ओर से न्यासधारी (Trustee) घोषित कर दिया गया।

(२)बंगाल के गवर्नर का नाम भारत का गवर्नर जनरल रख दिया गया तथ उसे सारे भारत के लिये कानून बनाने का अधिकार दे दिया गया। उस समय तक पंजाब के अतिरिक्त सारे भारत पर या तो अंग्रेजों की प्रभुसत्ता स्थापित हो चुकी थी या राजा महाराजा उनसे मैत्री संधि कर चुके थे। परन्तु वे मित्र राजा महाराजा अपने राज्य में अंग्रेजों को हस्तक्षेप नहीं करने देते थे और न वहां गवर्नर जनरल के कानून ही चलते थे। वे अंग्रेजी राज्य के अन्त तक आन्तरिक मामलों में स्वतन्त्र रहे और अपने कानून भिन्न रखते थे। अतः इस पुस्तक में समस्त भारत का अर्थ केवल थोड़े से अंग्रेजी भारत से ही रहेगा। पर मद्रास व बम्बई के गवर्नरों की शक्ति कम होजाने से भारत का एकीकरण आरम्भ हो गया।

(३) यह नियम बना दिया गया कि कम्पनी के आधीन किसी नौकरी पद या स्थान पर नियुक्ति के लिए कोई अपने धर्म, जन्मस्थान, वर्ण या वंश के कारण अयोग्य नहीं समझा जायगा।

यह नियम बड़ा सुन्दर होने पर भी इसका उद्देश्य भारतीयों को उच्च पद देने का नहीं था। २० वीं शताब्दी में तो इस नियम के विरुद्ध धर्मानुसार नियुक्तियां आरम्भ कर दी गई थीं। अब स्वतन्त्र भारत के संविधान में भी १८३३ के अधिनियम के समान ही एक धारा रखी गई है जो निम्न लिखित है:—

"अनुच्छेद १६. (१) राज्याधीन नौकरियों या पदों पर नियुक्त के संबन्ध में सब नागरिकों के लिये अवसर की समता होगी।"

(२) केवल धर्म, मूलवंश, जाति, लिंग, उद्भव, जन्मस्थान, निवास अथवा इनमें से किसी के आधार पर किसी नागरिक के लिये राज्याधीन किसी नौकरी या पद के विषय में न अपात्रता होगी और न विभेद किया जायेगा।

पंजाब में सिक्खों की पराजय के कारण सन् १८४० तक सारे भारत पर अंग्रेजों का प्रभुत्व हो गया। अतः १८४३ में ब्रिटिश संसद ने फिर एक नया अधिनियम बना कर भारत का सारा शासनाधिकार नियन्त्रक मण्डल को पूर्णतः सौंप दिया। ब्रिटिश भारत के एकीकरण के लिए १२ सदस्यों की भारतीय व्यवस्थापिका परिषद् बनाई गई जिस में गवर्नर जनरल, उसके मन्त्री, परामर्शदाता तथा मुख्य सेनापति भी सम्मिलित थे। बंगाल के लिए एक पृथक गवर्नर नियुक्त किया गया। १८४४ ई० में एक अन्य अधिनियम बनाकर सपरिषद् गवर्नर जनरल का आधिपत्य सारे भारत में स्थापित कर दिया गया।

७. सन् १८५७ की क्रांति के कारण और परिणाम

जैसा ऊपर वर्णन किया जा चुका है कि भारत पर अंग्रेजों का आधिपत्य जमने के उपरान्त भी वास्तव में आधे भारत पर राजाओं तथा नवाबों का ही राज्य रहा जो अंग्रेजों से मैत्रीपूर्ण संधियां कर चुके थे। वे युद्ध में अंग्रेजी सरकार की सहायता के लिए बाध्य थे, अपनी सेना बढ़ा नहीं सकते थे तथा किसी अन्य शक्ति से सम्बन्ध स्थापित नहीं कर सकते थे। संक्षेप में सेना तथा वैदेशिक सम्बन्धों के अतिरिक्त वे आन्तरिक मामलों में स्वतन्त्र थे तथा अपनी परम्परानुसार अपने राज्य का शासन करते थे। उनके पुत्र उनके उत्तराधिकारी होते थे। अंग्रेजों ने योजना बनाई कि शनैः शनैः इन देशी राज्यों का भी अन्त कर दिया जाए। इसी उद्देश्य से एक लुप्तकरण सिद्धान्त (Doctrine of Lapse) बनाया गया जिस के अनुसार उन राज्यों को ब्रिटिश भारत में लीन कर दिया जाता था जिनके राजा पुत्रहीन मर जाते थे। हिन्दु राजाओं में गोद लेने की प्रथा होने से कठिनाई होती देख इस प्रथा को अनियमित घोषित कर दिया गया। परिणामतः कुछ राज्य छीन लिये गये।

इस नीति से देशी नरेशों में असंतोष पैदा हुआ, विशेषतः झांसी की रानी विद्रोही हो उठी। उधर विदेशियों के दमन से जनता भी विद्रोही हो गई। १८४७ में क्रांति का ज्वालामुखी फट गया। पर कुछ देशी राजाओं ने अंग्रेजों के साथ अपनी मैत्री निभाई, विशेषतः हैदराबाद ने, जिसके फलस्वरूप अंग्रेज क्रांति को दमन करने में सफल हुए।

८. व्यापारी राज्य का अंत

ब्रिटिश संसद् ने भारत के "सुशासन के लिये" १८५८ में एक नया अधि-नियम निर्मित किया जिससे व्यापारिक कम्पनी का पूर्णान्त करके राज्य प्रणाली में निम्न परिवर्तन किये गये :

(१) ब्रिटिश भारत का राज्य सम्राज्ञी तथा उसके उत्तराधिकारियों को मिल गया।

(२) देशी नरेशों (राजाओं तथा नवाबों) को सम्राज्ञी ने घोषणा द्वारा विश्वास दिलाया कि उनके साथ कम्पनी ने जो सन्धियां की थीं वे अब सम्राज्ञी से की गई मानी जायेंगी तथा उनका पूर्णतः पालन किया जायेगा। उनके राज्य को किसी बहाने छीना न जायेगा तथा उनको गोद लेने का अधिकार होगा। (बाद में इन संधियों का महत्व कम होता गया तथा देशी नरेश केवल नाम-मात्र के लिये ही रह गये। वे वास्तव में अंग्रेजों के हाथ की कठपुतली बन गये और उनके आन्तरिक मामलों में प्रभुसत्ता का हस्तक्षेप बढ़ता गया।)

(३) राज्य संभालने पर सम्राज्ञी ने यह भी घोषणा की कि भारतीयों के धर्म में कोई हस्तक्षेप न किया जायेगा एवं किसी भी पद पर नियुक्ति के विषय में न्याय से काम लिया जायेगा। (वास्तव में उच्च पदों पर भारतीयों को स्थान न देने के विषय में इस घोषणा के पश्चात भी बहुत समय तक कोई परिवर्तन नहीं हुआ।)

(४) सम्राज्ञी के आधीन होने पर भारत का शासन प्रबन्ध ब्रिटिश संसद् के एक मंत्री (जिसे भारत मंत्री कहा जाता है) द्वारा किया जाने लगा जो संसद् के प्रति उत्तरदायी था तथा ब्रिटिश मंत्रिमंडल का सदस्य था। नियन्त्रक मंडल एवं कम्पनी के संचालक मंडल की सारी शक्तियां उसे प्राप्त हो गयीं। भारत मंत्री की सहायता के लिये एक परिषद् बना दी गई जो उसको लंदन में ही सम्मति देती थी। भारत मंत्री भारत की आय पर नियन्त्रण करता पर वह अपनी परिषद् की सलाह से ही व्यय कर सकता था। सरकार की ओर से या सरकार के विरुद्ध दावे सपरिषद् भारत मंत्री के नाम से चलते थे।

(५) गवर्नर जनरल, गवर्नर, परिषद् के सदस्यों की नियुक्ति का भी अधिकार सम्राज्ञी को ही मिल गया।

९. विकेन्द्रीकरण की ओर : १८६१ का संविधान

अब तक के संविधानों का उद्देश्य केन्द्रीयकरण ही था। परन्तु अनुभव से पता लगा कि सारे भारत के लिये एक ही स्थान से सर्वांश में सुव्यवस्थित रूप से शासन होने में कठिनाइयां हैं, अतः विकेन्द्रीकरण की ओर लौटने के आशय से १८६१ में एक भारतीय परिषद् अधिनियम बनाया गया जिसके अनुसार बंगाल, मद्रास तथा बम्बई के लिये पृथक पृथक व्यवस्थापिका परिषदें (Legislative Councils) बना दी गईं।

इस संविधान से गवर्नर जनरल की व्यवस्थापिका-परिषद में कार्यकारिणी परिषद (Executive Council) के सदस्यों के अतिरिक्त ६ से १२ तक अन्य सदस्यों को रखा गया जिनमें से आधे सदस्य गैर सरकारी होते थे। यह पहला समय था कि शासकीय अधिकारियों के अतिरिक्त सम्मति देने के लिये गैर सरकारी लोगों को परिषद में रखा गया। वे सब सदस्य अंग्रेज ही होते थे तथा गवर्नर जनरल द्वारा नियुक्त होते थे और दो वर्ष तक रहते थे। पर भारतीय जनता का शासन से किसी प्रकार का सम्बन्ध स्थापित करने का प्रयत्न नहीं किया गया।

गवर्नर जनरल की कार्यकारिणी परिषद में ६ सदस्य होते थे जिनमें कानूनों पर सम्मति देने के लिए एक वकील भी होता था। सपरिषद गवर्नर जनरल की व्यवस्थापिका शक्ति को भी बढ़ा दिया गया और उसे ६ मास के लिये अधिनियमों के समान प्रभाव वाले अध्यादेश (Ordinance) भी बनाने की क्षमता दी गई। स्थानीय या प्रादेशिक व्यवस्थापिका परिषदों की शक्ति सीमित थी तथा वे अपने प्रदेश के लिए गवर्नर जनरल की अनुमति से ही कानून बना सकती थीं। केन्द्रीय शासन से सम्बद्ध विषयों पर कानून बनाने का उन्हें अधिकार नहीं था। वास्तव में अभी तक केन्द्र की ही सर्वोच्च सत्ता थी और प्रांत अपनी शक्ति केन्द्र से ही लेते थे।

इसी वर्ष न्याय के विषय में भी विकेन्द्रीयकरण की ओर एक पग उठाया गया तथा एक ही सर्वोच्च न्यायालय के स्थान पर तीनों प्रदेशों—बम्बई, कलकत्ते एवं मद्रास में तीन उच्च न्यायालय बनाने के लिये भारतीय उच्च न्यायालय अधिनियम निर्मित हुआ। ब्रिटिश सरकार के आज्ञापत्रों द्वारा इन न्यायालयों की स्थापना हुई तथा उनमें प्रत्येक में बादशाह द्वारा एक मुख्य न्यायाधिपति तथा अन्य न्यायाधीश नियुक्त किये गये। पुरानी सदर-दिवानी,

फौजी अदालतें एवं सर्वोच्च न्यायालय बंद कर दिये गये तथा उन सबके अधिकार उच्च न्यायालयों को प्राप्त हो गये।

१०. भारत में जागृति तथा उसका प्रभाव

१८५७ की क्रान्ति के दमन के पश्चात् भारतीयों में देशप्रेम की भावना शनैः शनैः पुनः उभरने लगी। अंग्रेजी शिक्षा प्राप्त युवक उच्च पदों के लिये तथा निर्धन जनता विदेशी व्यापार नीति के विरुद्ध आवाज़ उठाना चाहती थी। अतः १८८५ में भारतीय राष्ट्रसभा (कांग्रेस) की स्थापना हुई। इसका प्रभाव दिन प्रतिदिन बढ़ता देख ब्रिटिश सरकार ने शासन-प्रणाली में शनैः शनैः सुधार करने की नीति अपनाई।

प्रथम सुधार : १८९२ का संविधान : पहला सुधार १८९२ में नये भारतीय परिषद् अधिनियम द्वारा किया गया। गवर्नर जनरल की परिषद् के सदस्यों में चार और सदस्य जोड़ दिये गये। वे सदस्य चारों प्रान्तों की परिषदों के अशासकीय सदस्यों के द्वारा निर्वाचित होते थे। परिषदों के सदस्यों को प्रश्न पूछने के अधिकार दिये गये तथा सरकार की आर्थिक नीति पर भी आलोचना करने की छूट दी गई। प्रान्तीय परिषदों को बढ़ा कर उनमें विशेष हितों के प्रतिनिधि भी ले लिये गये। इनमें जमींदारों, स्थानीय समितियों, विश्वविद्यालयों एवं व्यापार समितियों के नाम उल्लेखनीय हैं। इन सब सुधारों के उपरान्त भी परिषदों में शासकीय सदस्यों का ही बहुमत रहा तथा जनता को कोई सीधा प्रतिनिधित्व नहीं मिला।

११. साम्प्रदायिकता का समावेश : मिन्टो-मोरले सुधार

भारत में राष्ट्रीय कांग्रेस के प्रभुत्व को बढ़ता देख कर चतुर अंग्रेज शासकों ने भारत में कुछ राजभक्त मुसलमानों को प्रोत्साहन देना आरम्भ कर दिया जिस से कि यहां एक धार्मिक समस्या उठ खड़ी हो। सर्वप्रथम १९०६ में मुस्लिम लीग की स्थापना हुई जिसने मुसलमानों की ओर से पृथक प्रतिनिधित्व की मांग की और अंग्रेजों ने उसे सहर्ष स्वीकार करके पृथक साम्प्रदायिक निर्वाचक मंडलों द्वारा मुस्लिम प्रतिनिधियों के निर्वाचन के सिद्धान्त को मान्यता देदी।

उधर कांग्रेस की ओर से १८९२ के अधिनियम के विरुद्ध प्रचार बढ़ता ही जा रहा था। बंगभंग की योजना से अग्नि और भी भड़क उठी। ब्रिटेन

ने भारतीयों को संतुष्ट करने के लिये १९०९ में भारतीय परिषदों का नया अधिनियम बनाया जो मिन्टो-मोरले सुधारों (Reforms) के नाम से प्रसिद्ध है। इसमें जनता द्वारा निर्वाचित प्रतिनिधियों को परिषदों में स्थान देने का सिद्धान्त लागू कर जनतन्त्रवाद का ढिंडोरा पीटने का यत्न किया गया परन्तु भारतीय राजनीति में एक महान विष वृक्ष का बीज भी बो दिया गया। वह बीज था साम्प्रदायिकता का; अर्थात् निर्वाचन में हिन्दु, मुसलमान आदि के लिये अपने अपने सम्प्रदायों के आधार पर पृथक पृथक चुनाव की व्यवस्था की गई। शनैः शनैः आगामी संविधानों में इस साम्प्रदायिक अन्तर को बढ़ाया गया; जिससे जनतन्त्र की ओर प्रगति के साथ साथ हम नाश की ओर भी बढ़ते गये। मिन्टो-मोरले सुधार के विशेष अंगों का दिग्दर्शन नीचे किया जायेगा :

१. गवर्नर जनरल की व्यवस्थापिका परिषद् में कार्यकारिणी के अतिरिक्त अन्य सदस्यों की संख्या १६ से बढ़ा कर साठ कर दी गई। केवल २८ सदस्य शासकीय थे, ५ सदस्य विशिष्ट जातियों के प्रतिनिधि थे एवं २७ सदस्य चुने हुए थे जो मुसलमानों, जमींदारों, व्यापार मण्डलों, एवं प्रान्तीय परिषदों के प्रतिनिधि थे।

२. प्रान्तीय एवं केन्द्रीय व्यवस्थापिका परिषदों की कार्यशक्ति सीमित थी। यद्यपि सदस्यों को प्रस्ताव रखने, वादविवाद करने तथा मत देने का अधिकार था किन्तु सदा सरकार का बहुमत रहने से भारतीयों की चलती नहीं थी। अतः जनता असंतुष्ट रही।

३. परिषदों के निर्णयों से किसी प्रकार गवर्नर या गवर्नर जनरल बाध्य नहीं थे, अतः परिषदें केवल वादविवाद के अतिरिक्त कुछ नहीं कर सकती थीं।

४. निर्वाचन सीधे जनता के द्वारा न होने के कारण सदस्य गण किसी के प्रति उत्तरदायी नहीं थे।

फिर शीघ्र ही १९११ में उच्च न्यायालयों की संख्या बढ़ाने का, अधिनियम बना और कार्यशक्ति सम्राट को दी गई। प्रत्येक उच्च न्यायालय के न्यायाधीशों की अधिकतम संख्या २० रखी गई।

अब तक कई शासन सम्बन्धी नियम एवं अधिनियम बन चुके थे। अतः १९१५ में एक ही पूर्ण भारतीय संविधान निर्मित किया गया जिसमें

पहले के सारे संविधानों का संग्रह कर दिया गया था। इससे भारतीय तनिक भी संतुष्ट नहीं हुए, अपितु कांग्रेस की लोकप्रियता बढ़ती गई।

१२. प्रथम विश्व युद्ध तथा स्वराज्य की मांग

१९१४ से प्रथम महायुद्ध आरम्भ होने पर भारत ने सर्व प्रकार जनधन से साम्राज्य की सहायता की और भारतीयों ने इस के पुरस्कार रूप में स्वराज्य की मांग की। १९१६ के लखनऊ अधिवेशन में राष्ट्रसभा कांग्रेस ने एक स्वराज्य सम्बन्धी प्रस्ताव पास किया जिस में निम्न लिखित मांगें कीं गई :

१. सम्राट को चाहिये कि यह घोषणा कर दे कि ब्रिटिश नीति का लक्ष्य भारत को जल्द स्वराज्य देने का है।

२. कांग्रेस और मुस्लिम लीग की कमेटियों द्वारा बनाई हुई सुधार योजना के अनुसार ब्रिटिश सरकार भारत को स्वराज्य की पहली मात्रा देवे।

३. भारत को अधीनस्थ देश की श्रेणी से उठाकर साम्राज्य के अन्य स्वशासित भागों के समान बना दिया जावे।

ब्रिटिश सरकार ने यह देख कर कि भारतीयों की स्वतंत्रता की भावना को दबाया नहीं जा सकता, निम्न नीति अपनाई :

१. भारत को नाम मात्र की सत्ता धीरे धीरे देते जाना और भविष्य के लिये उदारता से आश्वासन देना।

२. हिन्दू मुस्लिम मतभेदों को बढ़ाना तथा इसके लिये राजभक्त मुसलमानों को प्रत्येक प्रोत्साहन देना।

१३. मोंटफोर्ड की सुधार योजना

ब्रिटिश सरकार की इसी मुस्लिमपक्षी साम्प्रदायिक नीति से प्रोत्साहित हो मुस्लिम लीग ने भी अपने सम्प्रदाय के लिये विशेषाधिकारों की मांग करनी आरम्भ कर दी, तथा इसके प्रतिक्रियास्वरूप हिन्दू महासभा की स्थापना हुई। कांग्रेस के आन्दोलन के फलस्वरूप २० अगस्त १९१७ को भारत मंत्री श्री मौनटेग ने ब्रिटेन की लोकसभा में निम्नलिखित प्रसिद्ध घोषणा की।

"ब्रिटिश सरकार की नीति, जिससे भारत सरकार पूर्णतः सहमत है, भारत में, ब्रिटिश साम्राज्य का अभिन्न भाग रहते हुये ही, प्रगति से

उत्तरदायी शासन स्थापित करने के उद्देश्य से, स्वशासित संस्थाओं के शनैः शनैः विकास करने की एवं भारतीयों का राज्य-प्रबन्ध की प्रत्येक शाखा में सम्बन्ध बढ़ाने की है। उन्होंने निश्चय किया है कि इस दिशा में यथासम्भव वास्तविक कार्यवाही करनी चाहिये और कि यह अत्यन्त आवश्यक है कि यह कार्यवाही निश्चित करने के पूर्व भारत तथा ब्रिटेन में जो अधिकारी हैं उनके बीच स्वतन्त्र तथा निजी रूप से विचारों का आदान प्रदान हो। ब्रिटिश सरकार ने तद्नुसार यह निर्णय किया है कि मैं (भारत मन्त्री) वाइसराय के निमन्त्रण को स्वीकार कर के भारत जाऊं तथा इन बातों पर वायसराय तथा भारतीय सरकार से विचारविमर्श करूं, स्थानीय सरकारों के दृष्टिकोणों पर वाइसराय से मिलकर विचार करूं और उस के साथ मिलकर प्रतिनिधि संस्थाओं एवं दूसरों के प्रस्तावों को प्राप्त करूं।

"मैं यह बात भी कह दूं कि इस नीति में प्रगति क्रमानुसारही हो सकती है। ब्रिटिश तथा भारत सरकार ही, जिन पर भारत के लोगों की भलाई तथा उन्नति का उत्तरदायित्व है, प्रत्येक प्रगतिशील कदम के लिये उपयुक्त समय तथा माप का निर्णय करेंगी, और वे इस कार्य में इस बात से प्रभावित होंगी कि जिन को सेवा (नौकरियों) के नये अवसर मिलेंगे उनके सहयोग तथा उत्तरदायित्व की भावना में कितना विश्वास किया जा सकता है।

"संसद में उचित समय पर जो प्रस्ताव रखे जायेंगे उन पर सार्वजनिक वाद विवाद के लिये पर्याप्त अवसर दिया जायेगा।"

इस घोषणा की शक्ति तथा मूल्य बढ़ाने के लिये प्रत्येक परिस्थिति प्रस्तुत थी इसकी भाषा मिश्रित मंत्रिमंडल ने निश्चित की थी अतः यह किसी दल विशेष की नहीं, सारे ब्रिटन की ओर से घोषणा थी। राज्य के किसी दल ने इसको चुनौती नहीं दी थी।

उपर्युक्त घोषणा से निम्न महत्वपूर्ण निष्कर्ष निकलते हैं :

१. भारत को ब्रिटिश साम्राज्य का ही भाग रहना होगा।

२. उत्तरदायी शासन भारत में स्थापित होगा परन्तु शनैः शनैः प्रगति द्वारा ही यह हो सकेगा। इसका अर्थ है कि पहले स्थानीय समितियां, फिर प्रान्तीय शासन एवं अन्त में ही केन्द्रीय सत्ता भारतीयों को मिलेगी।

३. कितनी उन्नति कब होगी यह अंग्रेज ही निश्चित करेंगे।

४. नौकरियों में भारतीयों को बड़े बड़े पद शनैः शनैः मिलेंगे और वे उस में जितनी योग्यता से कार्य करेंगे उस पर भावी उन्नति निर्भर होगी।

राष्ट्रसभा कांग्रेस ने इस घोषणा का स्वागत करते हुये यह मांग की कि स्वशासन स्थापित करने के लिये अवधि निश्चित हो।

इसके पश्चात् भारत मंत्री श्री मौनटेग भारत आये तथा उन्होंने यहां के वायसराय चैम्सफोर्ड के सहयोग से जुलाई १९१८ में अपनी रिपोर्ट प्रकाशित की। इस में चार बातें थीं :

१. स्थानीय (नगर या जिला आदि) समितियों में जनता का पूर्ण नियन्त्रण हो।

२. प्रान्तीय शासन में कुछ जनता का नियन्त्रण एवं कुछ उत्तरदायित्व हो।

३ केन्द्रीय सरकार ब्रिटिश संसद् के नियन्त्रण में ही रहेगी पर जनता का परिषदों में अधिक हाथ होगा जिससे कि वह सरकार की नीति पर प्रभाव डाल सके।

४. उपर्युक्त तीनों बातों को कार्यान्वित करने के लिए भारत मन्त्री तथा ब्रिटिश संसद् का भारत के राज्य शासन पर नियन्त्रण ढीला कर दिया जायेगा।

मौन्टेग-चेम्सफोर्ड की पूर्ण रिपोर्ट के कुछ अंश नीचे दिये जाते हैं :

१. हमारी २० अगस्त १९१७ की घोषणा से प्रगट है कि कदम धीरे धीरे बढ़ाये जायेंगे तथा प्रत्येक पग पर प्रगति को आंका जायेगा। इन आवश्यकताओं के अनुसार एक वास्तविक कदम एक दम उठाना है। यदि यह तर्क ठीक है तो जनता के चुने प्रतिनिधियों को कुछ उत्तरदायित्व प्रारम्भ से ही देना चाहिये। स्पष्ट है कि तीन ही स्तर हैं जिन के अनुसार सत्ता सौंपी जा सकती है, स्थानीय समितियों में, प्रान्तों में और भारतीय शासन में। क्योंकि एक ही व्यक्ति दो की आज्ञा पर नहीं चल सकता, अतः प्रतिनिधियों पर जितना जनता का नियन्त्रण होगा उतना ही उच्च अधिकारियों का नियंत्रण कम करना होगा। परिस्थितियां ऐसी हैं कि एक ही समय में तीनों स्तरों पर एक ही गति से परिवर्तन नहीं हो सकता। भारत सरकार का मुख्य कार्य भारत की रक्षा होगा, प्रान्तों का आधारभूत कर्त्तव्य शान्ति रखना होगा। जनता का

नियन्त्रण नीचे स्तरों पर अधिक होगा और ऊपर जाते जाते कम होता जायेगा। दूसरी तरह बात यूं कही जा सकती है, शासन के कर्तव्य आवश्यकतानुसार इस प्रकार बांटे जा सकते हैं कि एक तो राज्य के अस्तित्व की रक्षा का प्रधान कार्य है और दूसरे कार्य प्रजा के सुख तथा भलाई के लिये हैं। अपनी भलाई के कामों का जनता को अनुभव है और वह उसे समझती है, इस कारण इस कार्य को वह भली भांति सम्हाल सकती है। यह काम जनता के पूर्ण नियन्त्रण में दे देना हमारा उद्देश्य होना चाहिए। अतः हमारा पहला सिद्धांत यह बनता है कि:—

"यथासम्भव स्थानीय समितियों में पूर्णतः लोक नियन्त्रण होना चाहिए और उन्हें वाह्य नियन्त्रण से अधिकतम स्वतन्त्रता होनी चाहिए।"

(पाठकों को यह ध्यान देना चाहिये कि उपर्युक्त सुधार वास्तव में संविधान से सम्बन्धित नहीं है और देश के सामान्य कानून से ही लागू किया जा सकता है।)

२. जब हम प्रांतीय शासन पर आते हैं तो प्रश्न दूसरा है। हमारा उद्देश्य उत्तरदायी सरकार है। पर अभी जनता को चुनाव के विषय में शिक्षा है ही नहीं और राज्य सम्बन्धी अनुभव भी इतना नहीं है कि शासन को व्यवस्थापिका सभा के प्रति उत्तरदायी बनाया जा सके। उत्तरदायित्व को शनैः शनैः बढ़ा कर ही राजनैतिक शिक्षा दी जा सकती है। हम इस कारण कुछ कार्यों के लिये उत्तरदायित्व देकर अन्य क्षेत्रों में पूर्ववत नियन्त्रण रखने की सिपारिश करते हैं और हमारा दूसरा सिद्धान्त यह बनता है :

"प्रान्त ऐसे क्षेत्र हैं जिन में प्रगति से उत्तरदायी सरकार के स्थापित करने के लिये शीघ्र कदम उठाने चाहियें। कुछ उत्तरदायित्व तो तत्काल ही दे देना चाहिये, और परिस्थितियों के अनुसार शीघ्रातिशीघ्र पूर्ण स्वराज्य देना हमारा उद्देश्य है। इसका अर्थ है कि प्रान्तों को भारत सरकार से कानून-निर्माण, प्रशासन तथा आर्थिक विषयों में इतना स्वतन्त्र कर दिया जाये कि भारत सरकार को स्वयं अपने उत्तरदायित्व को पूरा करने में कोई कठिनाई न हो।"

(इसका परिणाम यह हुआ था कि प्रान्तों में कुछ सरकारी विभागों पर भारतीय मंत्रियों को नियुक्त कर दिया गया और वे व्यवस्थापिका सभा के प्रति उत्तरदायी माने जाते थे। बाकी विभाग गवर्नर के अधीन थे, अर्थात् द्वैध शासन पद्धति थी।)

३. हम अभी लोकतन्त्र के अनुभवों के परिणामों को देखने से पहले भारत सरकार में कोई परिवर्तन करना उचित नहीं समझते । किन्तु फिर भी यह वांछनीय है कि भारतीय व्यवस्थापिका परिषद् को भारतीय विचारधारा की सच्ची प्रतिनिधि बनाया जाये तथा उस विचारधारा को सरकार पर प्रभाव डालने का अधिक अवसर दिया जाये । अतः हम संसद को यह सम्मति नहीं दे सकते कि प्रान्तों एवं भारत सरकार में एक सी और साथ साथ उन्नति की जाये, अतः हम निम्न सिद्धान्त पर पहुंचते हैं :

"प्रान्तों में परिवर्तन के अनुभवों को देखने से पहले भारत सरकार ब्रिटिश संसद के प्रति ही उत्तरदायी रहे और इस उत्तरदायित्व के अतिरिक्त महत्वपूर्ण मामलों में इसकी सत्ता निर्विवाद रहे । पर इसी काल में भारतीय व्यवस्थापिका सभा को बढ़ा कर अधिक प्रतिनिधित्वपूर्ण बनाया जाये तथा इसे सरकार को प्रभावित करने के अधिक अवसर दिये जायें ।"

(इन सब का अर्थ यह हुआ कि प्रान्तों में द्वैध शासन तथा केन्द्र में पूर्णतः अंग्रेजी राज्य हो । एक विशेष बात यह है कि विकेन्द्रीयकरण के सिद्धान्त को अब पूर्णतः मान लिया गया । कार्य रूप में इन प्रस्तावों के फल-स्वरूप भी भारत की जनता को शासन-सत्ता नहीं मिली क्योंकि निर्वाचन संकुचित मताधिकार पर आधारित होने के कारण प्रान्तीय सभाओं में जनता के प्रतिनिधि नहीं गये । यदि गये, तो भी सरकार का ही बहुमत रहा क्योंकि विशेष प्रतिनिधियों को गवर्नर नियुक्त करता था । केवल शाब्दिक आलोचना-मात्र का अधिकार जनता को मिला) ।

४. भारत मन्त्री तथा संसदका नियन्त्रण ढीला करने का सुझाव : क्योंकि लोक नियन्त्रण के साथ साथ भारत मंत्री का नियन्त्रण नहीं चल सकता और कार्यकारिणी पर दोनों विरोधी वृत्तियों की ओर से परस्पर विपरीत दबाव पड़ने की सम्भावना थी, अतः चौथा सिद्धान्त यह बनाया गया कि :—

"जैसे उपर्युक्त परिवर्तन कार्यान्वित हों उसी अनुपात में भारत मंत्री तथा संसद का भारत सरकार तथा प्रान्तीय सरकारों पर से नियन्त्रण ढीला किया जाना चाहिये ।"

तीन समितियां : इसके उपरान्त तीन समितियां नियुक्त हुईं :

१. एक समिति का यह कार्य था कि वह केन्द्र तथा प्रान्तों में राजकीय विषयों का बंटवारा करे तथा यह बताये कि प्रान्तों को क्या क्या विषय हस्तान्तरित किये जाने चाहिये और उन पर मंत्रियों के नियन्त्रण के विषय में क्या क्या सीमा होनी चाहिये।

२. दूसरी समिति को मताधिकारों के विषय में निर्णय करने को कहा गया, विशेषतः उन जातियों आदि के लिये जो अल्पसंख्या में थीं।

३. तीसरी समिति लण्डन में स्थित भारत कार्यालय अर्थात् भारत मंत्री के कार्यालय के विषय में थी।

१४. स्वराज्य आन्दोलन तथा नया संविधान

उपर्युक्त रिपोर्ट से भारतीय संतुष्ट नहीं हुए अपितु वे समझने लगे कि युद्ध समाप्त होने पर अब ब्रिटेन अपने संकल्प को पूरा नहीं करना चाहता और मान्टेग-चैम्सफोर्ड की रिपोर्ट केवल भुलावा ही है। उधर रोलेट अधिनियम तथा उस के अन्तर्गत किये गये अत्याचारों से ऊब कर महात्मा गांधी के नेतृत्व में भारत ने सरकार से अहिंसात्मक असहयोग आरंभ कर दिया जिसे दमन करनेके लिये सेना-राज्य की घोषणा कर दी गई। अमृतसर के जलियान वाले बाग के हत्याकांड ने मानों भारत की आत्मा को ही उथल पुथल कर दिया। अब भारत अधिराज्य (Dominion) की श्रेणी से कम में नहीं रहना चाहता था।

भारत के विरोध करने पर भी मौनटेग-चैम्सफोर्ड योजना को प्रस्ताव रूप देकर अन्त में १९१९ का भारतीय संविधान बना दिया गया। इन सुधारों को राष्ट्र सभा कांग्रेस ने "अपर्याप्त, असंतोषजनक, निराशापूर्ण तथा अस्वीकार्य" कह कर ठुकरा दिया और निर्वाचन लड़ने की बजाय असहयोग सत्याग्रह आरम्भ कर दिया।

नये संविधान की विशेष बातें निम्न लिखित थीं :—

१. भूमिका में २० अगस्त १९१७ की घोषणा की पुनरावृत्ति की गई।

२. नए प्रान्त—कुछ नये प्रान्त बनाये गये। पहले तो मद्रास, बंगाल तथा बम्बई प्रांत ही थे, अब युक्त प्रांत, पंजाब, बिहार तथा उड़ीसा,

मध्य प्रांत और आसाम भी जोड़ कर ८ गवर्नरी प्रांत बन गये। पर इन को पहले के तीन प्रांतों से कुछ नीचा स्थान मिला। उधर दिल्ली, कुर्ग, अंडेमान, अजमेर आदि ६ चीफ कमिश्नर के प्रांत भी बन गये। कुछ समय बाद सीमा-प्रांत तथा बर्मा भी गवर्नरी प्रांत बन गये।

३. प्रांतीय शासन—प्रांतों तथा केन्द्र के क्षेत्रों को पृथक पृथक कर दिया गया अर्थात विकेन्द्रीयकरण आरम्भ हो गया। प्रान्तीय शासन में द्वैध शासन पद्धति का समावेश हुआ जिस के अनुसार कुछ विभाग भारतीय उत्तरदायी मंत्रियों को 'हस्तान्तरित' कर दिये गये तथा अन्य विभाग 'रक्षित' रहे।

निम्न सूची से यह विषय-विभाजन स्पष्ट होगा :—

केन्द्रीय विषय	प्रांतीय विषय	
	हस्तान्तरित	रक्षित
सेना सम्बन्धी विषय	स्थानीय स्वराज्य	पुलिस तथा जेल
विदेशी नीति	शिक्षा	दुर्भिक्ष
आयात निर्यात	स्वास्थ्य तथा सफाई	कृषि कर
रेलवे	मकान निर्माण	पेन्शन
डाक तार	कृषि	पत्रों पर नियंत्रण
आय-कर	उद्योगों का विकास	कलों का निरीक्षण
मुद्रा	मद्य कर	
व्यापार	सहकारी संस्थायें	
दंड संहिता	मीन व्यवसाय	
व्यवहार संहिता		

उपर्युक्त प्रांतीय मंत्री वास्तव में शक्तिहीन थे और हस्तांतरित विषयों में भी गवर्नर को पूर्ण सत्ता प्राप्त थी। वह लोकप्रिय मन्त्रियों को हटा सकता था या उनकी सम्मति के विरुद्ध काम कर सकता था। वे मंत्री व्यवस्थापिका सभा द्वारा निर्वाचित न हो कर गवर्नर द्वारा नियुक्त होते थे अतः उत्तरदायित्व वास्तव में था ही नहीं।

इसके अतिरिक्त गवर्नर किसी प्रस्तावित विधान (Legislation) को आवश्यक प्रमाणित कर के सभा से मनवा सकता था तथा कई प्रस्तावों को रोक सकता था। रक्षित विषयों पर तो गवर्नर का अधिकार था ही, उसे कुछ अंश तक हस्तान्तरित विषयों पर भी नियन्त्रण करने का अधिकार था। प्रान्तीय व्यवस्थापिका सभा का कोई प्रस्ताव गवर्नर जनरल द्वारा भी रोका जा सकता था।

उधर मन्त्रियों को उन राज्य कर्मचारियों के द्वारा कार्य चलाना पड़ता था जो सीधे भारत मंत्री के नियन्त्रण में थे, अतः मंत्रियों की गवर्नर भी चिन्ता नहीं करता था और नीचे के कर्मचारी भी उन की इच्छानुसार नहीं चलते थे। मंत्रिमंडल के लिये संयुक्त विचारविमर्श या उत्तरदायित्य का सिद्धान्त न मानने से भी कठिनाई हुई। मंत्रियों को धन पर अधिकार नहीं था, वे अपने विभागों के व्यय के लिये गवर्नर पर आश्रित थे। उधर प्रान्तों को आय के साधन कम मिले थे तथा केन्द्र को ही अधिक आय मिलती थी।

उपर्युक्त कारणों से प्रान्तों का आंशिक स्वराज्य भी केवल नाममात्र का ही था वास्तविक नहीं।

४. प्रान्तीय व्यवस्थापिका परिषदें:—प्रान्तों की व्यवस्थापिका परिषदों के सदस्यों की संख्या बढ़ा दी गई। किसी परिषद् में २० से अधिक शासकीय सदस्य नहीं हो सकते थे और निर्वाचित सदस्य ७० प्रतिशत से कम नहीं हो सकते थे।

इन परिषदों का जीवन तीन वर्ष का था पर गवर्नर परिषद् को बीच में भंग भी कर सकता था तथा एक वर्ष अधिक भी जीवित रख सकता था।

चुनाव सीधी जनता करती थी पर चुनाव पृथक सांप्रदायिक निर्वाचक-गणों द्वारा होता था और अल्पसंख्यकों को उनकी जनसंख्या के अनुपात से बहुत अधिक स्थान दिये गये थे जो कि निम्नांकित सूची से प्रगट होगा:

	मद्रास	बम्बई	बंगाल	युक्त प्रान्त	पंजाब	बिहार व उड़ीसा	मध्य प्रांत	आसाम	बर्मा
अमुस्लिम	६५	४६	४६	६०	२०	४८	४०	२०	०
मुस्लिम	१३	२७	३९	२९	३२	१८	७	१२	०
भारतीय ईसाई	५	०	०	०	०	०	०	०	०
यूरोपियन	१	२	५	१	०	१	०	०	१
आंग्ल भारतीय	१	०	२	०	०	०	०	०	१
जमींदार	६	३	५	६	४	५	३	०	०
विश्व विद्यालय	१	१	२	१	१	१	१	०	१
चाय आदि के बगान के अधिकारी	१	०	०	०	०	१	०	५	०
व्यापार उद्योग	५	७	१५	३	२	०	२	१	५
सिक्ख	०	०	०	०	१२	०	०	०	०
खनिज अधिकारी	०	०	०	०	०	२	१	०	०
व्यापक नगरवासी	०	०	०	०	०	०	०	१	१४
भारतीय नगरवासी	०	०	०	०	०	०	०	०	८
करेन ग्राम्य	०	०	०	०	०	०	०	०	५
व्यापक ग्राम्य	०	०	०	०	०	०	०	०	४४
योग (निर्वाचित का)	९८	८६	११४	१००	७१	७६	५४	३९	७९
मनोनीत सदस्य (कार्यकारिणी परिषद् सहित)	२९	२५	२६	२३	२२	२७	१६	१४	२४
महायोग	१२७	१११	१४०	१२३	९३	१०३	७०	५३	१०३

(५) केन्द्रीय सरकारः—केन्द्रीय सरकार अनुत्तरदायी ही रही तथा उसका प्रान्तों पर नियंत्रण एवं देख रेख का अधिकार बना रहा। केन्द्रीय व्यवस्थापक मंडल के दो भाग कर दिये गये, एक राज्यपरिषद् जो धनिकों की प्रतिनिधि थी और दूसरी व्यवस्थापिका सभा जो सीमित रूप से जनता की

प्रतिनिधि थी। यह मंडल केवल आलोचना कर सकता था। वायसराय दोनों सभाओं के निर्णय के विरुद्ध कार्य करने की क्षमता रखता था। पर वायसराय की कार्यकारिणी परिषद् में एक के स्थान पर तीन भारतीय ले लिये गये। केन्द्रीय व्यवस्थापक मंडल में भी साम्प्रदायिक निर्वाचन तथा अल्पसंख्यकों के लिये पासंग था जैसा कि निम्न तालिकाओं से प्रकट होगा :

केन्द्रीय व्यवस्थापिका सभा में प्रतिनिधित्व

(१०४ निर्वाचित तथा ४१ गवर्नर जनरल द्वारा मनोनीत)

	असांप्रदायिक	अमुस्लिम	मुस्लिम	यूरोपियन	सिक्ख	अन्य	जोड़
मद्रास	०	१०	३	१	०	२	१६
बम्बई (सिंध सहित)	०	७	४	२	०	३	१६
बंगाल	०	६	६	३	०	२	१७
युक्त प्रान्त	०	८	६	१	०	१	१६
पंजाब	०	३	६	०	२	१	१२
बिहार तथा उड़ीसा	०	८	३	०	०	१	१२
मध्य प्रांत	०	३	१	०	०	१	५
आसाम	०	२	१	१	०	०	४
बर्मा	३	०	०	१	०	०	४
दिल्ली	१	०	०	०	०	०	१
अजमेर मेरवाड़ा	१	०	०	०	०	०	१
	५	४७	३०	९	२	११	१०४

दूसरे सदन राज्यपरिषद् में ६० सदस्य थे जिनमें से २७ तो गवर्नर जनरल के द्वारा मनोनीत थे (२० शासकीय, एक बरार का प्रतिनिधि तथा ६ अशासकीय) बाकी ३३ प्रतिनिधि निम्न तालिका के अनुसार निर्वाचित होते थे:—

राज्य-परिषद् के निर्वाचित सदस्य

प्रान्त का नाम	अमुस्लिम	मुस्लिम	यूरोपियन	सिक्ख	सामान्य	जोड़
मद्रास प्रदेश	४	१	०	०	०	५
बंबई प्रदेश	३	२	१	०	०	६
बंगाल प्रदेश	३	२	१	०	०	६
युक्त प्रान्त	३	२	०	०	०	५
पंजाब	१	२	०	१	०	४
बिहार तथा उड़ीसा	२	१	०	०	०	३
मध्य प्रान्त	०	०	०	०	१	१
आसाम	०	१	०	०	०	१
बर्मा	०	०	१	०	१	२
	१६	११	३	१	२	३३

६. सम्राट की शक्ति असीमित रही। वह बड़े बड़े पदों पर नियुक्तियां करता था, केन्द्रीय या प्रान्तीय व्यवस्थापक मण्डलों के किसी कानून को रद्द कर सकता था, तथा उच्च न्यायालयों के विषय में पर्याप्त नियन्त्रण रखता था।

७. लन्दन स्थित भारत मंत्री के वेतन का भार ब्रिटिश निधि पर डाल दिया गया। भारत के शासन पर भारत मन्त्री का पूर्ण नियन्त्रण जारी रहा। गवर्नर जनरल तथा उनके द्वारा गवर्नर भारत मन्त्री के आधीन थे।

८. लन्दन में भारत की ओर से एक दूत रखने का उपबंध (Provision) रखा गया जिससे भारत के व्यापारिक तथा कुछ अन्य कार्य भारत मन्त्री को न करने पड़ें।

९. यह भी उपबन्ध रखा गया कि दस वर्ष उपरान्त अर्थात् १९२९ में एक संविधान समिति नियुक्त की जायेगी जो इन वर्षों के अनुभव पर यह बतायेगी कि प्रान्तों या केन्द्र में उत्तरदायित्व को बढ़ाया, घटाया या संशोधित किया जाये।

१०. देशी नरेशों को नरेन्द्र-मण्डल बनाने की अनुमति देदी गई।

द्वितीय अध्याय

सन् १६१६ के संविधान का कार्यकाल

१. परिषदों में स्वराज्य की मांग

जैसा कि ऊपर वर्णन किया जा चुका है राष्ट्रसभा ने मौन्टफोर्ड सुधारों को असंतोषजनक, निराशात्मक तथा अस्वीकार्य ठहरा कर असहयोग आरम्भ कर दिया और निर्वाचनों में भाग नहीं लिया अतः चुनाव के क्षेत्र में नरम दल का बोलबाला रहा तथा उसे प्रान्तों एवं केन्द्रीय सभाओं में बहुत से स्थान मिल गये। वे भी १६१६ के संविधान से संतुष्ट न थे अतः उन्होंने परिषदों के अन्दर से स्वराज्य की मांग आरम्भ की। २३ सितम्बर १६२१ को श्री जादूनाथ मौजुमदार ने प्रस्ताव रखा कि प्रान्तों में स्वशासन तथा केन्द्र में उत्तरदायित्व मिलना चाहिये। श्री जमनादास द्वारकादास ने एक संशोधन द्वारा सुझाव पेश किया कि सपरिषद गवर्नर जनरल से निवेदन किया जाता है कि वह शासकीय तथा अशासकीय सदस्यों की एक समिति नियुक्त करे, जिस में कि भारतीय व्यवस्थापक मंडल के सदस्य भी सम्मिलित हों, और जो गवर्नरी प्रान्तों में प्रान्तीय स्वशासन स्थापित करने तथा केन्द्रीय शासन में उतरदायित्व का प्रवेश करने के उत्तमोत्तम उपाय सोचे तथा अपनी सम्मति दे। अंग्रेज गृह-सदस्य सर विलियम विनसेन्ट ने इस प्रस्ताव का विरोध किया तथा निम्न प्रस्ताव स्वीकृत करवाया :

"यह सभा सपरिषद् गवर्नर जनरल से निवेदन करती है कि वे इस सभा का यह मत भारत मंत्री को बतायें कि उत्तरदायी शासन के मार्ग पर

भारत ने जो प्रगति की है उस से यह आवश्यक हो गया है कि १६१६ से पहले ही संविधान का पुनर्विलोकनतथा पुनरीक्षण हो ।"

(यह याद रखने योग्य है कि १६१६ के संविधान में १० वर्ष पश्चात पुनर्विचार करने का उपबंध था) ।

भारत मंत्री ने इस प्रस्ताव को अस्वीकार करते हुए कहा कि उसी संविधान के अन्तर्गत उन्नति की जा सकती है, अभी निर्वाचकों की योग्यता का पूर्ण परिचय नहीं मिल पाया है । इस में समय एवं अनुभव चाहिये और अभी शासन-तन्त्र की पूरी तरह परीक्षा नहीं हो सकी है ।

इसी प्रकार बाद में कई सुधारों की मांग के प्रस्ताव रखे गये तथा सरकार के विरोध के उपरांत भी स्वीकृत होगये । उधर कांग्रेस का असहयोग वेग से चलता रहा ।

इस संविधान के अन्तर्गत द्वितीय निर्वाचन १६२३ में होने थे । राष्ट्र सभा कांग्रेस में इस समय दो दल (नरम तथा गरम) बन गये । गरम दल तो असहयोग ही चाहता था पर नरम दल ने श्री चितरंजन दास तथा श्री मोती लाल नेहरू के नेतृत्व में स्वराज्य दल बना लिया और चुनाव लड़ने की ठानी । उन्होंने निर्वाचन सम्बन्धी नीति की घोषणा करते हुए अपना परिषदों में प्रवेश करने का निम्न उद्देश्य बताया :

१. हम सरकार को, परिषदों द्वारा, राष्ट्रीय आन्दोलन के विरुद्ध कोई कार्य न करने देंगे ।

२. सरकार को चुनौती दी जायेगी कि यदि राष्ट्रीय मांगें स्वीकार न की गई तो हम निरन्तर और एक सी बाधक नीति का प्रयोग करेंगे और परिषदों द्वारा शासन कार्य असम्भव बना देंगे ।

इस घोषणाके आधार पर उन्होंने चुनाव लड़े तथा अपूर्वसफलता पाई । प्रांतों तथा केन्द्र में उन्होंने आन्तरिक असहयोग सा आरम्भ कर दिया । बंगाल व मध्य प्रान्त में बहुमत प्राप्त करके भी मन्त्रिपद स्वीकार नहीं किये । श्री मोती लाल नेहरू ने शासकों के तीव्र विरोध के उपरान्त भी एक प्रस्ताव व्यवस्थापिका सभा में स्वीकार करवा दिया जिसमें ब्रिटिश सरकार द्वारा संविधान के निरीक्षण की मांग करने के स्थान पर "भारतीयों द्वारा विचार विमर्ष के पश्चात् पूर्णतः उत्तरदायी सरकार की स्थापना" की मांग की गई थी । उसका अंश नीचे लिखा जाता है :—

"यह सभा सपरिषद् गवर्नर जनरल से सिफारिश करती है कि वे भारत में पूर्ण उत्तरदायी शासन स्थापित करने के उद्देश्य से भारतीय संविधान का पुनरीक्षण कराने के लिए कार्यवाही करें और इस के लिये:—

(क) अल्पसंख्यकों के हितों तथा अधिकारों का आवश्यक ध्यान रखते हुये भारत के निमित्त एक संविधान की योजना की सिफारिश करने के लिये एक प्रतिनिधि गोलमेज परिषद् बुलायें, और

(ख) केन्द्रीय व्यवस्थापक मण्डल को भंग करने के पश्चात एक नवीन निर्वाचित भारतीय व्यवस्थापक मण्डल की स्वीकृति के लिये कथित योजना रखें और उसी को एक अधिनियम का रूप देने के लिये ब्रिटिश संसद् में प्रस्तुत करें।"

शासकों की टाल मटोल के विपरीत यह प्रस्ताव स्वीकृत हो गया। पर सरकार ने यह मांग अस्वीकार कर दी। तब स्वराज्य दल ने भी आय-व्यय के अनुमान-पत्र को सभा में अस्वीकृत करवा दिया। गवर्नर जनरल ने उसे अपने विशेषाधिकारों से प्रमाणित किया। अन्य कई शासकीय प्रस्ताव गिर गये जिन्हें गवर्नर जनरल ने पुनर्जीवित किया। ऐसी ही अवस्था प्रांतों में थी।

२. मुड्डीमैन समिति

फिर सरकार ने एक समिति नियुक्त की जिस के अध्यक्ष सर एलैक्जेण्डर मुड्डीमैन थे। उस में ३ अन्य अंग्रेज तथा ६ भारतीय थे जिनके नाम निम्नांकित हैं:—

१. मियां सर मोहम्मद शफी
२. बर्दवान के महाराजाधिराज
३. सर तेज बहादुर सप्रू
४. श्री पी० एस० शिवास्वामी आयर
५. मि० जिन्ना
६. डा० रघुनाथ परांजपे

तीनों अंग्रेज़ों तथा उनके साथ महाराजा और शफी साहब ने तो सुधारों के विषय में विरोधी नीति की सिफारिश की पर बाकी चार भारतीयों ने कहा कि "द्वैध शासन असफल सिद्ध हुआ है अतः स्वराज्य की स्थापना के उद्देश्य से संविधान में परिवर्तन करना आवश्यक है।" सरकार का यह मत

अस्वीकार्य बताया गया कि "वर्तमान संविधान के अन्तर्गत ही वास्तविक उन्नति सम्भव है"। जब व्यवस्थापिका सभा में यह रिपोर्ट रखी गई तो श्री मोतीलाल नेहरू ने अपना पहले वाला गोलमेज़ परिषद् सम्बन्धी सुझाव पुनः पेश किया तथा स्वीकृत कराया।

३. भारत में फूट

इसके पश्चात स्वराज्य दल में फूट पड़ गई और सर्वश्री जयकर, केलकर, मुंजे आदि ने अपने त्यागपत्र देकर एक प्रतियोगी-सहयोगी दल का निर्माण कर लिया जो सरकार के साथ सहयोग करके जनता को लाभ पहुँचाना चाहता था। उन्होंने मंत्रिपद आदि स्वीकार कर लिये। अन्त में उनका स्वराज्य दल से कुछ निपटारा सा हुआ। परन्तु उधर, कांग्रेस की मुस्लिम लीग के सामने झुकने की नीति को देख कर, महमना मदनमोहन जी मालवीय ने लाला लाजपतराय की सहायता से एक 'स्वतन्त्र दल' बना लिया जो सारे सम्प्रदायों के साथ समान व्यवहार चाहता था। उधर मुस्लिम लीग साम्प्रदायिक विष फैला रही थी और महान हिन्दू विरोधी दंगे भी करा रही थी। इस प्रकार साम्प्रदायिक अन्तर बढ़ते ही गये जो कि अंग्रेजों का उद्देश्य था और जिस उद्देश्य से साम्प्रदायिक निर्वाचन तथा मुसलमानों को विशेष पासंग (वजन) दिया गया था। १९२६ के निर्वाचन पर इस का इतना प्रभाव पड़ा कि निम्न लिखित दलों ने चुनाव लड़े, स्वराज्य, प्रतियोगी-सहयोगी, स्वतन्त्र, उदार, हिंदू महासभा, मुस्लिम लीग, खिलाफत तथा दक्षिण में अब्राह्मण आदि। परिणामतः स्वराज्य दल को मद्रास के अतिरिक्त कहीं भी पूर्ण बहुमत प्राप्त नहीं हुआ।

४. साइमन आयोग

अंततोगत्वा २६ नवम्बर १९२७ को अर्थात संविधान में लिखित तिथि से २ वर्ष पहले ही एक आयोग साइमन नामक अंग्रेज की अध्यक्षता में नियुक्त हुआ जिसमें समस्त सदस्य भी अंग्रेज ही थे। आयोग का उद्देश्य निम्न लिखित था:—

"कि ब्रिटिश भारत की शासन-प्रणाली के कार्यरूप की, शिक्षा वृद्धि की, प्रतिनिधि संस्थाओं के विकास की एवं तत्सम्बन्धी विषयों की जांच करे तथा रिपोर्ट दे कि क्या उत्तरदायी शासन का सिद्धान्त लागू करना वांछनीय है, यदि है तो किस मात्रा में और शासन में तात्कालिक उत्तरदायित्व को बढ़ाया

या घटाया जाये अथवा कोई और परिवर्तन किया जाये । इसके साथ साथ आयोग यह भी सम्मति दे कि प्रान्तों में द्वितीय परिषद् स्थापित करना भी वांछनीय है या नहीं ।"

पूर्णतः श्वेतवर्ण समिति से विश्वास उत्पन्न न होकर असंतोष की लहर दौड़ गई । भारत की स्वभाग्य-निर्णय कि मांग का इससे अधिक निरादर क्या हो सकता था कि हमारे भाग्य-निर्णय में हमारा तनिक भी सहयोग न मांगा जाये । निदान सारे दलों के २६ राजनैतिक नेताओं ने निम्न घोषणा की :

"इस मामले पर खूब गम्भीरता से विचार करने के पश्चात् हम इस परिपक्व परिणाम पर पहुँचे हैं कि भारतीयों को आयोग में न रखना सिद्धान्ततः त्रुटिमय है । भारतीयों के इस योजना में भाग न लेने का सिद्धान्त ऐसा है कि भारत अपने स्वाभिमान के साथ इसको मान नहीं सकता । इस समय निर्मित आयोग को हम सहयोग नहीं दे सकते, जब तक कि ऐसी समिति नहीं बनती जिस में कि भारतीय एवं ब्रिटिश राजनीतिज्ञ समानता से बैठने के लिये आमन्त्रित हों ।"

इस विषय में राष्ट्र सभा में जो प्रस्ताव स्वीकृत हुआ उसका संक्षेप इस प्रकार है :

"चूंकि स्वभाग्य-निर्णय के सिद्धान्त के विरुद्ध यह समिति नियुक्त की गई हैं अतः राष्ट्रसभा कांग्रेस यह निश्चय करती है कि स्वाभिमानी भारत के लिये यही एक मार्ग है कि आयोग का बहिष्कार किया जाये, विशेषतः

१. आयोग के भारत में आने के दिन देश भर में विरोध प्रदर्शन एवं हड़ताल हो ।

२. आयोग के समस्त राजनैतिक नेता तथा परिषदों एवं व्यवस्थापिका सभाओं के अशासकीय सदस्य विचार प्रकट न करें और न उनसे भेंट ही करें और उनके साथ सहभोग आदि में भी सम्मिलित न हों ।

३. परिषदों तथा व्यवस्थापिका सभा के अशासकीय सदस्य उपसमितियों में भी सम्मिलित न हों और साइमन आयोग के व्यय के लिये मत न दें ।

४. जब तक यह आयोग भारत में रहे तब तक परिषदों आदि का भी बहिष्कार किया जाये, जब तक कि राष्ट्रीय हित में वहां उपस्थित होना आवश्यक न समझा जाये ।"

इसके अतिरिक्त राष्ट्र सभा ने भारतीय जनता के लक्ष्य 'पूर्ण राष्ट्रीय स्वतन्त्रता' को दोहराया।

३ फरवरी १९२८ को जब यह समिति भारत पहुंची तो देश में व्यापक हड़ताल रही। जहां भी वे गये काले झंडों से उनका स्वागत किया गया तथा 'साइमन लौट जावो' के नारे लगाये गये। मानो देश भर में गड़बड़ मच गई।

६ फरवरी १९२८ को साइमन ने वायसराय को निम्न कार्य-प्रणाली का संकेत किया :

"जैसे ब्रिटिश संसद ने हम ७ व्यक्तियों को चुना है, भारतीय व्यवस्थापक मण्डल भी उसी प्रकार अपने प्रतिनिधि चुने, तथा वे हम लोगों के साथ, मेरे सभापतित्व में समवेत होकर, लोगों के विचारों को सुनें। यह 'संयुक्त स्वतन्त्र सम्मेलन' होगा। यही उचित, न्याययुक्त एवं भारत तथा ब्रिटेन के यथार्थ हित में है। शासकीय वर्ग के अतिरिक्त जनता, संस्थाओं एवं व्यक्तियों की भी बात सुनी जाये। प्रांतों के विषय में सोचते समय प्रांतीय परिषदों के प्रतिनिधि तथा केन्द्रीय विषयों के समय केन्द्रीय व्यवस्थापक मण्डल के प्रतिनिधि हों तो ठीक है। हमें तो अपना कार्य पूरा करना ही है चाहे कुछ भी हो, पर कार्यारम्भ से पहले हमने सद्भावना से भारतीयों के लिये सम्मान तथा बराबरी के साथ सहयोग करने का द्वार खोल दिया है।"

राष्ट्रसभा के निदेश पर व्यवस्थापिका सभा ने 'संयुक्त स्वतंत्र सम्मेलन' के लिये अपने प्रतिनिधि चुनने से इंकार कर दिया।

५. सर्वदलीय सम्मेलन तथा नेहरू समिति

उधर राष्ट्रसभा ने फरवरी-मार्च १९२८ में दिल्ली में एक सर्वदल सम्मेलन किया जिसने 'पूर्ण उत्तरदायी शासन' की मांग की। १९ मई की दूसरी बैठक में सम्मेलन ने, मानो साइमन की प्रतिस्पर्धा में, श्री मोतीलाल नेहरू की अध्यक्षता में एक समिति भारतीय संविधान के सिद्धान्तों का मसविदा बनाने के लिये नियुक्त करदी जिसे १ जुलाई १९२८ तक अपनी सिफारिशें देने का आदेश दिया गया। नेहरू समिति की सिफारिशों में अधिराज्य (Dominion) स्वराज्य को भारतीय संविधान का आधार बनाया गया तथा उसे सर्वदल सम्मेलन ने उसके परिश्रम पर बधाई दी।

राष्ट्रसभा ने अपनी बैठक में, जो दिसम्बर १६२८ में कलकत्ते में हुई थी, सरकार को नेहरू समिति की सिफारिशें स्वीकार करने के लिये एक वर्ष का समय दिया तथा चुनौती दी "कि यदि नेहरू समिति की शासन पद्धति को ३१ दिसम्बर १६२६ तक ब्रिटिश संसद् स्वीकार न करेगी अथवा इस तिथि के पूर्व ही अस्वीकार कर देगी तो राष्ट्रसभा असहयोग आन्दोलन का संगठन आरम्भ कर देगी और देश को इस बात के लिये तैयार करेगी कि सरकार को न तो कर दिया जाये और न किसी प्रकार की सहायता दी जाये।" आगे चल कर आप पढेंगे कि ३१ दिसम्बर १६२६ को राष्ट्रसभा ने नेहरू रिपोर्ट रद्द करके पूर्ण स्वराज्य अर्थात् ब्रिटिश साम्राज्य से सम्बन्ध विच्छेद की मांग की। मानो अधिराज्य पद की मांग का युग भी चला गया।

६. साइमन की रिपोर्ट

१६२६ के अप्रेल में साइमन आयोग ब्रिटेन को लौट गया। पर मई में ही वहां अनुदार दल का शासनान्त हो गया तथा श्रमिक दल का मंत्रिमंडल स्थापित हो गया। इसके फलस्वरूप कुछ नीति में परिवर्तन हो गया तथा साइमन की सिफारिशें जो निम्नलिखित सिद्धान्तों पर आधारित थीं जून १६३० तक प्रकाशित नही की गईं :

१. भारत का अन्तिम संविधान संघीय आधार पर हो (अर्थात् पूर्ण विकेन्द्रीकरण कर के तथा प्रान्तों को स्वराज्य देकर शेष विषय केन्द्र रखे)।

२. द्वैध शासन का अन्त तथा मंत्रिमंडल की स्थापना, जिसमें एक या अधिक अनिर्वाचित मंत्री हों।

३. कार्यकारिणी को स्वतन्त्रता हो अर्थात् उत्तरदायित्व न हो।

४. व्यवस्थापक मंडलों के सदस्यों की संख्या बढ़ाई जाये तथा मताधिकार को अधिक विस्तृत किया जाये।

५. साम्प्रदायिक निर्वाचन स्थिर रहें।

६. मुसलमानों को उनकी संख्या के अनुपात से अधिक स्थान तथा पासङ्ग दिया जाये।

७. गवर्नरों के अंकुश समान विशेष अधिकार बने रहें, जैसे पहले थे।

८. केन्द्रीय संघीय राज्यपरिषद् तथा व्यवस्थापिका सभा का निर्वाचन प्रान्तीय सभाओं द्वारा किया जाये।

६. बर्मा को भारत से पृथक कर दिया जाये ।

७. गोलमेज सम्मेलनों की तैयारी

जैसा ऊपर कहा जा चुका है श्रमिक दल की सरकार ने साइमन की रिपोर्ट को एक वर्ष तक प्रकाशित नहीं किया क्योंकि वह बहुत अनुचित थी। प्रत्युत इसी बीच में वायसराय लार्ड इरविन जून १९२९ में विलायत चले गये जिससे कि 'साइमन की वैधानिक जांच के परिणाम स्वरूप जो सुधार योजना संसद के सम्मुख रखी जाये उससे पहले ऐसा उपाय करें जिससे कि संविधान सम्बन्धी स्थिति स्पष्ट हो जाये और भारत के लोकमत के प्रतिनिधि दलों का अधिक सहयोग प्राप्त हो सके।'

वायसराय इरविन ने भारत लौट कर ३१ अक्टूबर को एक घोषणा की कि "ब्रिटिश सरकार का उद्देश्य भारत में अधिराज्य स्थापित करना है तथा इस सम्बन्ध में विचार करने के लिये ब्रिटेन में एक गोलमेज सम्मेलन किया जायेगा।" पर यह सब अनिश्चित सी भाषा में था और कोई इस बात का संकेत नहीं था कि अधिराज्य कब तक स्थापित होगा। कांग्रेस ने इसकी स्थापना के लिये अन्तिम तिथि ३१ दिसम्बर १९२९ रखी हुई थी। इरविन की घोषणा का संक्षिप्त आशय निम्नलिखित था :

'सर साइमन ने प्रधान मंत्री से पत्रव्यवहार में कहा है कि शासन सुधारों के साथ ब्रिटिश भारत एवं देशी राज्यों के भावी सम्बन्धों के प्रश्न पर विचार करना भी आवश्यक है अतः हमारी योजना को संसद के सामने रखने से पूर्व यह अपेक्षित है कि ब्रिटिश सरकार ब्रिटिश भारत और देशी राज्यों दोनों के प्रतिनिधियों से मिलकर उन प्रस्तावों पर अधिकतम समझौते का प्रयत्न करे जिन्हें कि संसद में रखना उसका कर्तव्य होगा।

मुझे इसका ज्ञान है कि सम्राट की सरकार इन विचारों से पूर्णतः सहमत है।

ब्रिटिश नीति का लक्ष्य, जैसा कि अगस्त १९१७ की घोषणा में उल्लिखित है, यह है कि भारत में, ब्रिटिश साम्राज्य का अभिन्न भाग रहते हुए, प्रगति से उत्तरदायी शासन स्थापित करने के उद्देश्य से स्वशासित संस्थाओं का शनैः शनैः विकास किया जाये। यह सम्राट की इच्छा है कि १९१९ में संसद द्वारा निर्मित योजनानुसार, भारत अधिराज्यों में अपना उचित स्थान प्राप्त कर सके। सम्राट के मंत्रियों ने भी कई बार सार्वजनिक घोषणायें की हैं कि ब्रिटिश सरकार की यह आकांक्षा है कि यथासमय भारत को साम्राज्य में

दूसरे अधिराज्यों के साथ अपना बराबर का स्थान प्राप्त करना चाहिये। किन्तु १६१६ का अधिनियम बनाने में ब्रिटिश सरकार के इरादों के विषय में ब्रिटेन एवं भारत दोनों देशों में जो सन्देह प्रकट किये गये हैं उनको ध्यान में रख कर मुझे ब्रिटिश सरकार द्वारा यह स्पष्ट कहने का अधिकार दिया गया है कि उनके विचारानुसार १६१७ की घोषणा में यह निहित है कि भारत की संविधान सम्बन्धी प्रगति का स्वाभाविक परिणाम अधिराज्य श्रेणी की प्राप्ति है।"

भारतीय नेताओं ने घोषणा का स्वागत करते हुये अपना सहयोग देने का आश्वासन दिया पर कुछ संदेह भी प्रकट किये। दिल्ली में सब दलों के भारतीय नेताओं की एक बैठक ने गोलमेज सम्मेलन में सम्मिलित होने के लिये निम्न शर्तें रखीं :—

"१. सम्मेलन में यह न सोचा जाये कि अधिराज्य कब स्थापित होगा वरन् अधिराज्य की रूपरेखा निश्चित की जाये।

२. सम्मेलन शीघ्रातिशीघ्र बुलाया जाये।

३. राजनैतिक बन्दी मुक्त कर दिये जायें।

४. राष्ट्र सभा को सब से अधिक प्रतिनिधित्व मिले।

५. इसके अतिरिक्त नये संविधान के बनने से पूर्व ही देश के शासन में नई विचारधारा का प्रादुर्भाव किया जाये, कार्यकारिणी और व्यवस्थापक मंडल के बीच ऐसा सम्बन्ध स्थापित किया जाये जो प्रस्तावित सम्मेलन के उद्देश्यों के अनुकूल हो तथा वैधानिक कार्यप्रणाली का अधिक अनुसरण किया जाये। यह आवश्यक है कि कि जनता को अनुभव होने लगे कि वास्तव में आज से नवीन युग का श्रीगणेश हो गया है और नया संविधान इस तथ्य की अभिव्यक्ति मात्र होगा।"

सरकार इन शर्तों को पूरा न कर सकी, अपित संसद् में भारत को अधिकार सौंपने के प्रस्ताव पर विरोधात्मक भाषण हुए और अधिकारियों ने संसद् में आश्वासन दिया कि "परिस्थिति में कोई परिवर्तन नहीं हुआ है, और १६१७ की घोषणा के अनुसार ही कार्य होगा।" भारत मंत्री श्री वेजवुड बैन ने यहां तक कह डाला कि 'भारत को १० वर्ष से अधिराज्य पद तो मिला ही हुआ है।' इससे भारतीयों की आंखें खुल गईं और गोलमेज सम्मेलन का बहिष्कार करने का निर्णय हुआ।

८. पूर्ण स्वराज्य की मांग

२३ दिसम्बर १९२९ को लार्ड इरविन से महात्मा गांधी तथा श्री मोतीलाल नेहरू की बातचीत हुई, पर इरविन ने कोई संतोषजनक आश्वासन नहीं दिया कि शीघ्र ही अधिराज्य पद दिया जायेगा। इसके परिणाम स्वरूप एक वर्ष की अवधि समाप्त होने पर ३१ दिसम्बर १९२९ की मध्य रात्रि के समय लाहौर में श्री जवाहर लाल नेहरू के सभापतित्व में राष्ट्रसभा ने प्रस्ताव स्वीकार किया कि "वायसराय की घोषणा के पश्चात जो हुआ है उस पर तथा महात्मा गांधी, श्री मोती लाल नेहरू तथा अन्य नेताओं के बीच बातचीत के परिणाम पर विचार करने के पश्चात राष्ट्रसभा का यह मत है कि वर्तमान परिस्थितियों में राष्ट्रसभा के गोलमेज सम्मेलन में प्रतिनिधित्व करने से कोई भी लाभ नहीं होगा। अतः गत वर्ष कलकत्ते में स्वीकृत प्रस्ताव के अनुसार राष्ट्रसभा यह घोषणा करती है कि राष्ट्रसभा के संविधान में स्वराज्य शब्द का अर्थ 'पूर्ण स्वतन्त्रता' होगा और यह भी घोषणा करती है कि नेहरू समिति की सारी योजना अब रद्द हो गई है।"

२५ जनवरी १९३० को लार्ड इरविन ने व्यवस्थापिका सभा में एक भाषण दिया जिस में उन्होंने स्पष्ट किया कि 'गोलमेज सम्मेलन में वास्तव में वह चीज न होगी जो कि भारतवासी सोच रहे हैं; उसका निर्णय बहुमत से न किया जायेगा। वह तो संसद को भारतीय सुधारों के विषय में केवल मार्ग प्रदर्शन का कार्य करेगा।' इससे मानो जले पर नमक लग गया।

राष्ट्रसभा के आदेशानुसार २६ जनवरी १९३० को देश भर में स्वाधीनता दिवस मनाया गया, जलूस निकाले गये, सभाएं की गईं तथा राष्ट्रसभा का राष्ट्रीय ध्वज फहरा कर निम्न प्रतिज्ञा की गई :

'हम विश्वास करते हैं कि आत्म विकास का पूर्ण अवसर प्राप्त करने के लिये दूसरे देशों के लोगों की तरह भारतीयों को पूर्ण स्वाधीनता पाने का, अपनी कमाई के उपभोग करने का तथा जीविका के उपयुक्त उपकरण पाने का अविच्छेद्य अधिकार है। हम यह भी विश्वास करते हैं कि यदि कोई सरकार इस उद्देश्य में बाधक हो तो उस को ध्वंस करने का अधिकार हमें है।' इत्यादि अन्तिम पैरा में करबंदी तथा सत्याग्रह की प्रतिज्ञा थी। इस प्रकार की प्रतिज्ञा प्रतिवर्ष भारत में २६ जनवरी को दौहराई जाने लगी।

फरवरी १९३० तक राष्ट्रसभा के आदेश पर १७२ सदस्यों ने व्यवस्थापिका सभा तथा राज्यपरिषदों से त्यागपत्र दे दिये। सत्याग्रह आरम्भ हो गया। वायसराय ने अधिराज्यपद तक के विषय में कोई आश्वासन देने से इंकार कर दिया। इसके विपरीत राष्ट्रसभा ने मांग की कि गोलमेज सम्मेलन एक स्वतन्त्र भारत का संविधान बनाये, अर्थात् राष्ट्रसभा अधिराज्य पद की मांग से भी कहीं आगे बढ़ गई।

६. पहला गोलमेज सम्मेलन

लंदन में १२ नवम्बर १९३० को सम्मेलन का प्रथम अधिवेशन धूम-धाम से आरम्भ हुआ। कुल ८६ प्रतिनिधि सम्मिलित हुए जिनमें राष्ट्रसभा का कोई प्रतिनिधि न होने से उसका राजनैतिक महत्व कम हो गया। जो प्रतिनिधि उपस्थित थे उन में ब्रिटिश भारत के ५७ प्रतिनिधि थे, देशी राज्यों के १६ तथा ब्रिटिश सरकार के १३, जिन में ८ सरकारी दल के, ४ अनुदार दल के तथा १ उदार दल का था। भारत के प्रतिनिधि किसी प्रकार निर्वाचित नहीं थे वरन् वे वायसराय द्वारा 'आमंत्रित' थे।

सब से पहले अधिराज्य स्वराज्य के विषय पर खूब भाषण हुए। राष्ट्रसभा की अनुपस्थिति के कारण पूर्ण स्वतन्त्रता का विषय उठा ही नहीं। इसके पश्चात् यह प्रश्न उठा कि भारत में एक केन्द्रीय शासन रहे या संघीय शासन प्रणाली लागू की जाये। देशी नरेशों ने अखिल भारतीय संघ में सम्मिलित होने की इच्छा प्रगट की। पटियाला, बीकानेर, अलवर और भोपाल के नरेशों ने विशेषकर इस प्रणाली की सराहना की। श्री श्रीनिवास शास्त्री, जो पहले कुछ संकोच कर रहे थे, बाद में संघीय प्रणाली के पक्ष में हो गये। ब्रिटिश प्रधान मंत्री श्री रामसे मेकडोनल्ड ने कहा कि "नरेशों की घोषणा से परिस्थिति में क्रान्तिकारी परिवर्तन हो गया है। उन्होंने वास्तविक संयुक्त संघीय भारत के निर्माण के लिये मार्ग खोल दिया है। भारत के भावी संविधान की इमारत बनाने के लिये हम ने तथा आप सब ने बहुत सहायता की है।" इस के पश्चात् प्रधान मंत्री ने निम्न व्यवहारिक प्रश्न सुझाये :

"१. संघ में मिलने वाली भिन्न भिन्न इकाइयां किस प्रकार की होंगी?

२. केन्द्रीय शासन किस प्रकार का होगा और इकाइयों पर कैसे नियन्त्रण करेगा?

३. केन्द्र का प्रान्तों से क्या सम्बन्ध होगा?

४. केन्द्र का देशी राज्यों से क्या सम्बन्ध होगा ?

५. विशेष हितों का तथा अल्पसंख्यकों का सहयोग प्राप्त करने के लिये क्या उपबंध रखे जायेंगे ?

६. इकाइयों और केन्द्र के क्या विषय होंगे तथा क्या कार्य एवं कर्तव्य होंगे ?"

फिर उन्होंने कहा कि "इन प्रश्नों का व्यवहारिक उत्तर देना ही आप की और मेरी समस्या है जिससे कि संसद द्वारा स्वीकृत संविधान में यह बातें निहित की जा सकें।" उन्होंने दो बातें आवश्यक बताईं एक तो "संविधान ऐसा हो जिस पर कार्य किया जा सके, केवल आदर्शमय ही नहीं हो, दूसरी बात, उसका विकास होता रहे।"

इस के पश्चात निम्न प्रश्नों पर विचार करने के लिये ६ उपसमितियों की स्थापना की गई :

१. प्रथम उपसमिति को संघीय रूप रेखा बनाने के लिये निम्न प्रश्नों पर विचार करने का कार्य मिला :

(क) संघ की भिन्न भिन्न इकाइयां।

(ख) संघीय व्यवस्थापक मंडल किस प्रकार का हो तथा उसमें कितने सदन हों ?

(ग) संघीय व्यवस्थापक मंडल की शक्ति तथा कार्य।

(घ) संघीय व्यवस्थापक मंडल में कितने सदस्य हों व कितने सदस्य किस प्रान्त से लिये जायें ?

(ङ) ब्रिटिश भारत तथा देशी राज्यों के प्रतिनिधि किस प्रकार चुने जायें ?

(च) संघीय कार्यकारिणी का संविधान, शक्ति, प्रकार, तथा कार्य क्या हों ?

२. दूसरी समिति को प्रान्तीय व्यवस्थापक मंडल तथा कार्यकारिणी सत्ता का संविधान, कार्यक्षेत्र, शक्ति आदि निर्धारित करने का कार्य मिला।

३. तीसरी उपसमिति को अल्पसंख्यकों के विषय में सुझाव पेश करने के लिये कहा गया।

४. चौथी उपसमिति को मताधिकार के सिद्धान्तों पर अपनी सम्मति देने की आज्ञा हुई।

५. एक उपसमिति रक्षा के विषय पर नियुक्त हुई।

६. सरकारी नौकरों के विषय में विचार करने के लिये भी एक उपसमिति बैठाई गई।

७. एक उपसमिति बर्मा के विषय में नियुक्त की गई जिससे कि बर्मा को भारत से पृथक किया जा सके।

८. एक उपसमिति सीमाप्रान्त का विशेष संविधान बनाने के लिये नियुक्त हुई।

९. एक उपसमिति सिंध को पृथक प्रान्त बनाने के विषय में थी।

१०. मैक्डोनल्ड की घोषणा

उपसमितियों की रिपोर्टें आने पर सम्मेलन ने उनकी सराहना की, विशेषतः अल्पसंख्यकों को दिये गये विशेषाधिकारों की जो कि मिस्टर जिन्ना ने स्वीकार करवाये थे। वास्तव में सम्मेलन में सारे राजभक्त ही थे अतः अंग्रेजी शासन की इच्छानुसार सारा काम हुआ। सम्मेलन के अन्त में भारत में चल रहे असहयोग सत्याग्रह को बंद करने के लिये वायसराय ने महात्मा गांधी से अनुरोध किया जिससे कि गोलमेज सम्मेलन के द्वारा भारत के लिये अच्छा संविधान बन सके। उधर प्रधान मंत्री मैक्डोनल्ड ने १९ जनवरी १९३१ को सम्राट की सरकार की नीति की निम्न घोषणा की :

"१. **स्वतन्त्रता पर प्रतिबन्ध:** बादशाह की सरकार का यह मत है कि भारत के शासन का उत्तरदायित्व केन्द्रीय तथा प्रांतीय व्यवस्थापक मंडलों पर डाला जाये किन्तु ऐसे आवश्यक उपबंध रखे जायें जो परिवर्तन काल में कुछ विशेष कर्तव्यों के पालन करने के लिये तथा अल्पसंख्यकों के अधिकारों और राजनैतिक स्वतन्त्रता की रक्षा के लिये अपेक्षित हों।

२. **स्वतन्त्रता की सीढ़ी:** इस परिवर्तनकाल की आवश्यकताओं के कारण जो वैधानिक संरक्षण रखे जायेंगे उन में सम्राट की सरकार यह अच्छी तरह व्यवस्था करेगी कि रक्षित अधिकारों का इस प्रकार निर्माण तथा प्रयोग हो कि नये संविधान द्वारा भारत को अपने शासन में पूर्ण उत्तरदायित्व प्राप्त करने में कोई बाधा न पड़े।

३. समझौते का प्रयत्न: बादशाह की सरकार को इस बात का ज्ञान है कि ऐसे संविधान की सफलता के लिये जो बातें आवश्यक हैं वे पूरी नहीं हुई हैं किन्तु इतना कार्य कर के वे ऐसे स्थान पर पहुंच गये हैं जहां कि यह आशा होने लगी है कि इस घोषणा के पश्चात् आगे की बातचीत सफल हो सकती है।

४. संघीय योजना : बादशाह की सरकार ने यह बात देखी है कि सम्मेलन की कार्यवाही सब दलों द्वारा स्वीकृत इस आधार पर चली है कि केन्द्रीय सरकार अखिल भारत का एक संघ हो जिसके व्यवस्थापक मंडल में दो सदन हों और ब्रिटिश भारत तथा देशी राज्य सम्मिलित हों। नई संघीय सरकार का ठीक रूप और ढांचा तो देशी नरेशों तथा ब्रिटिश भारत के प्रतिनिधियों से बातचीत करके ही निश्चित होगा। इसको दिये जाने वाले विषयों की सूची पर और वादविवाद की आवश्यकता होगी, क्योंकि संघीय सरकार को देशी राज्यों से सम्बन्धित ऐसे ही मामलों में अधिकार होंगे जो कि देशी नरेश संघ में मिलते समय उसे अर्पित करेंगे। देशी राज्यों का संघ से सम्बन्ध इस मूल सिद्धान्त पर आधारित होगा कि जो विषय वे संघ को अर्पित नहीं करेंगे उनके बारे में इन राज्यों के, वायसराय द्वारा, सम्राट से ही सम्बन्ध होंगे।

५. उत्तरदायित्व : संघीय सिद्धान्त पर व्यवस्थापक मंडल के निर्माण होने पर सम्राट की सरकार व्यवस्थापक मंडल के प्रति कार्यकारिणी के उत्तरदायित्व के सिद्धान्त को मान लेने के लिये तैयार होगी।

६. रक्षित विषय : वर्तमान परिस्थितियों में सुरक्षा तथा विदेशी सम्बन्ध के विषय गवर्नर जनरल द्वारा रक्षित होंगे और इनके प्रबन्ध के लिये उसे शक्ति प्रदान करने की व्यवस्था की जायेगी। इसके अतिरिक्त लाचार होने पर गवर्नर जनरल को संकटके समय राज्य में शान्ति रखनेकी क्षमता होनी चाहिये और इसी प्रकार उसे अल्पसंख्यकों के वैधानिक अधिकारों के पालन के लिये उत्तरदायी होना चाहिये, अतः उसे इन प्रयोजनोंके लिये आवश्यक शक्ति देनी होगी।

७. वित्त : नये संविधान में रिज़र्व बैंक, ऋण ,विनिमय नीति आदिके लिये उपबंध रखना होगा जिससे कि भारत की आर्थिक अवस्था स्थिर रहे और भारत मंत्री के नाम से लिये गये ऋणों की पूर्ति हो सके। इन उपबंधों के

आधीन रहते हुए भारतीय सरकार को पूर्ण आर्थिक उत्तरदायित्व होगा जिससे वह किसी प्रकार आय के साधन बना सके या अरक्षित विषयों के व्यय पर नियन्त्रण कर सके।

८. द्वैध शासन : इसका अर्थ यह है कि केन्द्र में द्वैध शासन रहेगा। रक्षित शक्तियों का होना आवश्यक है, किन्तु ऐसी परिस्थितियों को उत्पन्न होने से रोकने का प्रयत्न करना चाहिये जिनमें उनका प्रयोग आवश्यक हो जाये ; उदाहरणार्थ मंत्रियों को गवर्नर जनरल के भरोसे अपने उत्तरदायित्व में ढील नहीं करनी चाहिये।

९. प्रांतीय स्वराज्य : गवर्नरों के प्रान्त पूर्ण उत्तरदायित्व के आधार पर निर्मित होंगे।

१०. विशेषाधिकार : गवर्नरों के लिये अल्पतम विशेषाधिकार रक्षित होंगे जो कि अपवाद स्वरूप परिस्थितियों में शान्ति स्थिर रखने के लिये या संविधान द्वारा उपबंधित सार्वजनिक नौकरियों और अल्पसंख्यकों की रक्षा के लिये आवश्यक हैं।

११. विस्तृत मताधिकार : अन्त में सम्राट् की सरकार का विचार है कि प्रान्तों में उत्तरदायी सरकारों की स्थापना से यह आवश्यक हो जाता है कि प्रान्तीय व्यवस्थापक मंडलों को भी बढ़ाया जाये और वे अधिक विस्तृत मताधिकार पर आधारित हों।

१२. राष्ट्रसभा से अपील : यदि इसी बीच में वे लोग जो कि असहयोग में लगे हुये हैं वायसराय के अनुरोध का उत्तर दें तो उनकी सेवाओं को स्वीकार करने के लिये कदम उठाया जायेगा।"

उपर्युक्त घोषणा ब्रिटेन की स्वाभाविक कूटनीति से परिपूर्ण है। इस का विश्लेषण क्रमशः नीचे किया जाता है :

१. वास्तव में प्रथम पैरा में उल्लिखित उपबंध भारत की स्वतन्त्रता के लिये घातक थे। अल्पसंख्यकों के रक्षण के बहाने मुसलमानों को विशेषाधिकार देकर विद्वेश फैला दिया गया तथा जनतन्त्र का प्रश्न ही समाप्त कर दिया गया।

२. दूसरे पैरा का यह अर्थ है कि पूर्ण उत्तरदायित्व तक पहुंचने के लिये यह संविधान एक सीढ़ी मात्र होगा, स्वयम इस संविधान से स्वशासन प्राप्त नहीं होगा।

३. तीसरे पैरे में यह संकेत था कि राष्ट्रसभा से फिर समझौते का प्रयत्न किया जायेगा, किन्तु पूर्ण स्वराज्य की मांग करने वाली संस्था ऐसे अधकचरे संविधान से कैसे संतुष्ट हो सकती थी। इस विषय में राष्ट्रसभा का प्रस्ताव आगे दिया जायेगा।

४. चौथे पैरे में देशी राज्यों तथा शेष भारत में फूट डालने का प्रयत्न है क्योंकि यदि राज्य अपनी इच्छानुसार ही विषय अर्पित करने के लिये स्वतन्त्र हों तो वे कदाचित कुछ भी अर्पित नहीं करना चाहेंगे। इस प्रकार कई स्वतन्त्र राज्य बन सकेंगे जो कि अंग्रेजों के संकेतानुसार कार्य करेंगे। याद रहे यहां राज्यों के नरेशों के अतिरिक्त वहां की प्रजा की सत्ता या इच्छा की कोई चर्चा भी नहीं की गई। अंग्रेजी राज्य के अन्त तक इसी कारण संघ स्थापित ही न हो सका।

५. पंचम पैरा संतोषजनक है किन्तु अगले दो पैरों से इसका महत्व भी कम हो जाता है। वास्तव में केन्द्र में १९४६ तक उत्तरदायित्व नहीं मिला।

६. छठे पैरे में दो मुख्य विषय रक्षित बना कर इस बार केन्द्र में द्वैध पद्धति स्थापित करने का विचार प्रकट किया गया है, जब कि यह पद्धति प्रान्तो में सफल नहीं हो पाई थी। गवर्नर जनरल के विशेषाधिकारों से मंत्रिमंडल का उत्तरदायित्व नष्ट सा हो जाता है।

७. सप्तम पैरे द्वारा आर्थिक शक्ति बहुत मात्रा में गवर्नर जनरल को मिल गई तथा मंत्रिमंडल से वह बहुत सा रुपया उनकी इच्छा के विरुद्ध लेकर हस्तान्तरित विषयों के लिये कुछ न छोड़ने की क्षमता रखता था।

८. अष्टम पैरे से केवल संसार को भ्रम में डालने का प्रयत्न किया गया था कि भारतीय अयोग्य न हों इसी भय से हमने विशेषाधिकार रखे हैं।

९. नवम तथा एकादश पैरे संतोषजनक थे क्योंकि प्रान्तों में द्वैध पद्धति का अन्त कर दिया गया परन्तु दसवें पैरे में गवर्नरों को दिये गये विशेषाधिकार सदा व्यवहार में बाधा स्वरूप रहे जैसा कि आगे के इतिहास से पता चलेगा। वास्तव में १९३५ में केवल ९ से ११ तक के पैरों के सिद्धांत ही कार्यान्वित हुए। केन्द्रीय सरकार तो अंग्रेजी राज्य के अन्त तक १९१९ के संविधानानुसार ही कार्य करती रही।

भारत की प्रतिक्रिया: राष्ट्रसभा की कार्यकारिणी के अधिकांश सदस्य तो कारागृह में थे किन्तु जो स्वतन्त्र थे उन्होंने २१ जनवरी १६३१ को निम्न प्रस्ताव स्वीकार किया :

"भारतीय राष्ट्रसभा की कार्यकारिणी समिति तथाकथित गोलमेज सम्मेलन को कोई मान्यता देने के लिये तैयार नहीं है जो ब्रिटिश संसद के कुछ सदस्यों, भारतीय नरेशों तथा उन व्यक्तिगत भारतीयों के बीच हुआ था जो कि सरकार ने अपने समर्थकों में से चुने थे और जिन्हें भारतीयों के किसी दल ने अपना प्रतिनिधि नहीं चुना था। समिति का यह मत है कि ब्रिटिश सरकार ने भारतीय प्रतिनिधियों से सम्मति लेने का, जब कि वास्तव में वह महात्मा गांधी तथा पंडित जवाहर लाल नेहरू जैसे राष्ट्र के नेताओं को जेल में डाल कर भारत की आवाज को दबाती रही है, जो आडम्बर किया है, उससे वह स्वयम निन्दनीय बन गई है।

"समिति ने ब्रिटिश मंत्रिमंडल की ओर से प्रधान मंत्री रामजे मैक्डोनल्ड द्वारा १६ जनवरी १६३१ को की गई घोषणा पर ध्यानपूर्वक विचार किया है तथा समिति की यह राय है कि वह घोषणा इतनी अस्पष्ट तथा व्यापक है कि राष्ट्रसभा की नीति में कोई परिवर्तन करने की आवश्यकता नहीं है।

"लाहौर राष्ट्रसभा में स्वीकृत 'पूर्ण स्वतन्त्रता' के प्रस्ताव पर अटल रहते हुये यह समिति महात्मा गांधी आदि नेताओं द्वारा १५ अगस्त १६३० के दिन यर्वदा जेल से वायसराय को लिखित पत्र में प्रकट किये गये विचारों का समर्थन करती है तथा प्रधान मंत्री की घोषणा को उस पत्र का यथायोग्य उत्तर नहीं समझती। समिति का विचार है कि ऐसे उत्तर की अनुपस्थिति में और जब कि सहस्रों नर-नारी, जिन में कार्यकारिणी समिति के मौलिक सदस्य भी सम्मिलित हैं, कारागृह में हैं, हमारी नीति की व्यापक घोषणा करना सहायक सिद्ध नहीं हो सकता।'

११. गांधी-इरविन संधि

इस प्रस्ताव को प्रकाशित नहीं किया गया किन्तु सरकार को इसका पता लगते ही वायसराय ने २५ जनवरी १६३१ को निम्न आशय की घोषणा की :

"१६ जनवरी को प्रधान मंत्री द्वारा दिये गये वक्तव्य पर विचार करने के लिये अवसर देने के उद्देश्य से मैंने यह उचित समझा है कि भारतीय राष्ट्रसभा की कार्यकारिणी के सदस्य परस्पर विचार विमर्श करने की पूर्ण स्वतन्त्रता पायें।

"मेरी सरकार उन को मुक्त करने पर कोई शर्त न लगायेगी क्योंकि हम अनुभव करते हैं कि शान्तिपूर्ण स्थिति उत्पन्न करने की आशा इसी से हो सकती है कि बातचीत निर्बाध स्वच्छन्दता के साथ हो।"

कारागृह से मुक्त हो कर गांधी जी ने अन्य सदस्यों से बातचीत की तथा अन्त में वायसराय से मिलने की इच्छा प्रकट करते हुए एक पत्र भेजा। १७ फरवरी से गांधी-इरविन वार्ता आरम्भ हो कर ५ मार्च को एक संधि हुई जिसमें अधिकतर सत्याग्रह के विषय में निर्णय किये गये थे पर कुछ बातें संविधान के विषय में भी थीं, जिनका आशय निम्न लिखित है :

"संविधान के विषय में प्रश्नों पर आगे चल कर विचार होगा, किन्तु उसके सम्बन्ध में मुख्य बातों के तय होने के लिये ये आधार होंगे :

१. शासन का रूप संघीय होगा।

२. केन्द्र में उत्तरदायित्व रहेगा।

३. विदेशी नीति, रक्षा आदि भारत के हित की दृष्टि से रखे जायेंगे।

४. सम्मेलन में राष्ट्रसभा के प्रतिनिधि लिये जायेंगे।"

१२. द्वितीय गोलमेज सम्मेलन

द्वितीय गोलमेज सम्मेलन में, जो ७ दिसम्बर १६३१ को आरम्भ हुआ, राष्ट्रसभा की ओर से एकमात्र प्रतिनिधि महात्मा गांधी गये। ब्रिटिश सरकार ने मिस्टर जिन्ना तथा अन्य छोटे दलों के प्रतिनिधियों को प्रोत्साहित कर साम्प्रदायिक तथा अन्य प्रश्नों पर खूब चोंचें लड़वाईं। अकेले गांधी जी से कुछ करते न बना। पग पग पर विशेषाधिकारों की मांग होने लगी और ब्रिटिश सरकार एकता के लिये अनुरोधात्मक भाषण देने लगी। मुसलमानों के अतिरिक्त दलित जातियों को हिन्दुओं से पृथक करने का प्रयत्न किया गया जिस पर गांधी जी ने अपने प्राणों को बाजी पर लगा देने की धमकी दी। अन्त में १ दिसम्बर को प्रधान मन्त्री मैक्डोनल्ड ने १६ जनवरी १६३१ की घोषणा को हेर-फेर के साथ दोहराया और उस पर चलने का अपना

विचार प्रकट किया तथा भारतीयों के पारस्परिक मतभेदों पर खेद प्रकट किया एवं घोषणा की कि उन में समझौता होने के बिना आगे बढ़ना कठिन है। गांधी जी को भारत आते ही फिर बंदी बना लिया गया और अस्थायी गांधी-इरविन समझौता समाप्त होकर संघर्ष पुनः आरम्भ होगया।

१३. साम्प्रदायिक पंचाट

अगस्त १९३२ में प्रधान मन्त्री मैक्डोनल्ड ने अपने 'साम्प्रदायिक पंचाट' (Commundnal Award) की घोषणा की जिसके अनुसार मुसलमानों को ३३½ प्रतिशत स्थान देने का निर्णय किया गया तथा हरिजनों को हिन्दुओं से पृथक निर्वाचनवर्ग बनाने का भी निश्चय हुआ। यह हिन्दुओं के लिये नाशकारी था क्योंकि आबादी के आधार पर उन को जितने स्थान मिलने चाहिये उतने नहीं मिलते थे, इसके अतिरिक्त उन में फूट डालने का प्रयत्न किया जा रहा था। गांधी जी ने हरिजन निर्णय के विरुद्ध अपने संकल्प के अनुसार २० सितंबर से आमरण उपवास आरंभ कर दिया। इसके परिणाम स्वरूप पूना-संधि हुई और हरिजनों को पृथक निर्वाचनवर्ग बनाने का निर्णय बदल दिया गया, यद्यपि उन्हें अधिक प्रतिनिधित्व दे दिया गया। मुसलमानों के विषय में राष्ट्रसभा चुप रही, इससे उत्पीड़ित हिन्दुओं को असंतोष हुआ और महामना मालवीय जी तथा श्रीयुत अणे राष्ट्रसभा से पृथक होगये।

१४. तीसरा गोलमेज सम्मेलन तथा १९३५ का संविधान

तीसरा गोलमेज सम्मेलन १७ नवम्बर से २४ दिसम्बर तक हुआ। राष्ट्रसभा ने उसमें भाग नहीं लिया तथा केवल सरकार के समर्थक ही उस में गये। अंग्रेजों ने संघीय स्थापना के प्रश्न को स्थगित करके केवल कुछ शर्तों के साथ प्रान्तीय स्वशासन देने का निर्णय किया था, इस पर श्रमिक दल के कुछ अंग्रेजों ने भी असहयोग किया।

• तीसरे सम्मेलन के बाद भारत मन्त्री सर सेमुअल होर ने फिर ब्रिटिश नीति दोहराई जिसमें निम्न बातें थीं:

१. भारत एक संघ ही बनेगा।

२. देशी राज्यों के साथ की गई संधियों का सम्मान किया जायेगा। कुल राज्यों की आधी जनसंख्या वाले राज्य जब सहमत हो जायेंगे तभी

संघ स्थापित होगा। (वास्तव में वे सहमत हुए ही नहीं और भारतीय संघ की स्थापना अंग्रेजी राज्य में हो ही नहीं सकी।)

३. संघ तथा प्रान्तों के क्षेत्र स्पष्टतः पृथक कर दिये जायेंगे अर्थात दोनों एक दूसरे के विषयों में हस्तक्षेप न करेंगे।

४. मुसलमानों को ३३⅓ प्रतिशत स्थान मिलेंगे।

५. सिंध तथा उडीसा पृथक प्रान्त बनाये जायेंगे।

६. गवर्नरों तथा गवर्नर जनरल को विशेषाधिकार होंगे, पर इस लिये नहीं कि वे मन्त्रियों के दिन प्रतिदिन के कार्य में बाधा डालें, पर केवल नियन्त्रण के लिये।

७. रक्षा के प्रश्न पर, जो कि रक्षित विषय होगा, निम्न व्यवस्था होगी :—

(क) रक्षा के निमित्त धन की आवश्यकता होगी उसे मन्त्री रोक न सकेंगे।

(ख) भारतीय सेना को भारत के बाहर भेजने के प्रश्न पर अंग्रेजों का नियन्त्रण होगा पर संघीय सरकार को भी कुछ निर्णय करने का अधिकार दिया जा सकता है।

(ग) भारतीय सेना के भारतीयकरण का प्रश्न संविधान द्वारा निश्चित नहीं हो सकता।

इसके अतिरिक्त अन्य पुरानी बातों को भी उन्होंने दोहराया। फिर मार्च १९३३ में ब्रिटिश सरकार ने 'भारतीय संवैधानिक सुधार' नामक पुस्तिका प्रकाशित की जो 'श्वेत-पत्र' के नाम से प्रसिद्ध है। इस पर विचार करनेके लिये संसद की दोनों सभाओं के १६, १६ प्रतिनिधियों की एक 'संयुक्त संसदीय समिति' बनाई गई जिस ने भारत के कुछ प्रतिनिधियों के साथ परामर्श करने के पश्चात अपनी सिफारशें दीं। इन में गवर्नरों तथा संसद के विशेषाधिकार और भी बढ़ा दिये गये। अंततोगत्वा लम्बे कार्यक्रम के पश्चात् १९३५ का भारतीय संविधान बना। इस संविधान द्वारा संसद का भारतीय शासन पर पूर्ण नियन्त्रण रहा और अधिराज्यपद तो बहुत दूर की वस्तु जान पड़ने लगी। प्रान्तीय स्वराज्य तथा द्वैध प्रणाली सहित संघीय शासन इसकी विशेषतायें थीं। बर्मा तथा अदन को भारत से पृथक कर दिया गया।

राष्ट्रसभा ने इसे 'पूर्णरूपेण अस्वीकार' करते हुये कहा कि "यह संविधान किसी प्रकार राष्ट्र की इच्छा का प्रतीक नहीं है और भारत की पराधीनता एवं शोषण को स्थायी बनाने के लिये ही बनाया गया है।" अन्य संस्थाओं ने भी इसकी निन्दा की। अगले अध्याय में हम इस संविधान का विश्लेषण करेंगे तथा वैधानिक दृष्टि से यह १९१९ के संविधान की तुलना में कितना भिन्न था यह बतायेंगे।

१९३५ का संविधान १ अप्रैल १९३७ से लागू किया गया।

—:*:—

तीसरा अध्याय

सन् १९३५ का संविधान

१. आधारभूत सिद्धान्त

पहले संविधानों से १९३५ का संविधान कई अंशों में सुधार ही था। इस की प्रांतीय स्वराज्य सम्बन्धी योजना १९३७ में लागू कर दी गई थी पर संघ स्थापन सम्बन्धी उपबंध कभी कार्यान्वित नहीं हुए।

भारत की शासन-प्रणाली में १९३५ के संविधान से यह मूल परिवर्तन हुआ कि भारत में एकात्मक शासन-प्रणाली के स्थान पर संघीय प्रणाली का समावेश हुआ। १९१९ के संविधान के अन्तर्गत प्रान्तों में द्वैध प्रणाली होने के उपरान्त भी ३३ वीं धारा के अन्तर्गत देख-भाल, निदेश तथा नियन्त्रण का कार्य केन्द्रीय सरकार को दिया गया था। उसी संविधान की ४५ वीं धारा के अनुसार प्रान्तीय सरकारों को यह आदेश था कि वे सपरिषद् गवर्नरजनरल की आज्ञाओं का पालन करें। प्रान्त के शासन सम्बन्ध वे सरकारें सपरिषद् गवर्नर जनरल की देख-भाल, निदेश तथा नियन्त्रण में थी। यह तो कार्यकारिणी के सम्बन्ध में था पर व्यवस्थापक कार्यक्षेत्र में भी १९१९ के संविधान की ६५ वीं धारा के अनुसार केन्द्रीय व्यवस्थापकमंडल को ब्रिटिश भारत के प्रत्येक स्थान, प्रत्येक व्यक्ति तथा प्रत्येक न्यायालय के लिये कानून बनाने का अधिकार था। किन्तु कुछ विशेष विषयों पर प्रान्तों को कुछ अधिकार दिये गये थे जिन पर केन्द्रीय सरकार तथा व्यवस्थापक मंडल साधारणतः हस्तक्षेप नहीं करते थे।

१९३५ के संविधान में दूसरी धारा के अनुसार सारे अधिकार, शक्ति तथा कार्यक्षेत्र जो कि १९१९ के संविधान के अन्तर्गत भारत सरकार से

संनिहित थे उस से वापिस लेकर पहले सम्राट में केन्द्रित कर दिये गये और तत्पश्चात सम्राटने उन्हें केन्द्रीय और प्रान्तीय सरकारों में वितरित कर दिया। इस प्रकार प्रान्तों की सत्ता का स्रोत भारतीय सरकार नहीं रही अतः दोनों का कार्यक्षेत्र सहयोगियों का सा बन गया। केन्द्र तथा प्रान्तों के बीच, या दो प्रांतों के बीच पारस्परिक संघर्ष होने पर न्यायालयों को ही संविधानके अनुसार इसका निर्णय करना होता तथा अन्त में १९३५के संविधान द्वारा स्थापित संघीय न्यायालय का निर्णय लागू होता। १९१९ के संविधान के अन्तर्गत तो प्रान्त केन्द्रीय सरकार के नियन्त्रण मे बाध्य थे और कार्यक्षेत्र विषयक कोई भी विवाद होने पर केन्द्रीय सरकार ही अन्तिम निर्णय करने की क्षमता रखती थी।

किन्तु १९३५ के संविधान मे यह उपबंध था कि संकट में केन्द्रीय सरकार और केन्द्रीय व्यवस्थापकमंडल को प्रान्तों पर सर्वोच्चसत्ता होगी अर्थात उस समय संघीय ढांचा स्थगित हो जाता। द्वितीय महायुद्ध में इसी उपबंध के अन्तर्गत प्रान्तीय स्वराज्य की इतिश्री कर दी गई थी। इस संविधान में यह भी उपबंध था कि जब प्रान्तीय स्वराज्य असफल होने के कारण प्रान्त का शासन गवर्नर स्वयम् संभाल ले तब वह गवर्नर जनरल के द्वारा केन्द्र के सीधे नियन्त्रण में हो जायेगा यह परिस्थिति तबउत्पन्न हुई थी जब कि राष्ट्र-सभा ने बहुमत में होते हुए भी प्रान्तों में मंत्रिमंडल बनाने से इंकार कर दिया था।

एक बात स्पष्ट समझ लेनी चाहिये कि भारतीय सरकार की जो संघीय रूपरेखा संविधान में उपबन्धित थी वह कभी कार्यान्वित नहीं हुई तथा वास्तव में केन्द्र की सरकार, अंग्रेजी राज्यके अन्त तक, १९१९के संविधान के अन्तर्गत ही कार्य करती रही और सपरिषद् गवर्नर जनरल ही केन्द्र का शासन चलाता रहा। केवल प्रान्तीय स्वराज्य से केन्द्र की उन विषयों में सत्ता मिट गई जो कि प्रांतों को मिल गये थे। प्रांतों तथा केन्द्र के सम्बन्धों में कुछ अन्तर आने के अतिरिक्त केन्द्रीय सरकार में कोई परिवर्तन नहीं हुआ। १९३५ के संविधान के द्वितीय अध्याय के अनुसार ही यह परिवर्तन संभव था और वह अध्याय अन्य अध्यायों के साथ लागू नहीं हुआ। वह सम्राट की घोषणा से लागू होना था पर देशी राज्यों के संघ में आने से आनाकानी करने के कारण तथा देश में इस अध्याय का विरोध होने के कारण एवं युद्ध के कारण सम्राट ने यह घोषणा कभी नहीं की। १९३५ के संविधान के

१३ वें अध्याय के 'परिवर्तन काल के लिये उपबंधों' के अनुसार केन्द्रीय सरकार १६१६ के समान चलती रही। इस की शक्ति सर्वोच्च रही पर केवल केन्द्रीय विषयों तक ही सीमित रही जिन की कि सूची संविधान की ३१२ वीं धारा के अनुसार परिशिष्ट रूप में दी गई थी। 'परिवर्तन काल' १ अप्रेल १६३७ से आरम्भ हुआ था और अन्त तक चलता ही रहा।

अब हम १६३५ के संविधान का विस्तृत विवरण लिखेंगे क्योंकि स्वतन्त्र भारत का संविधान भी इसी संविधान का विकास है और दोनों में कई बातें मिलती जुलती हैं।

२. संघ के अंग

भारतीय संघ की जो योजना बनाई गई थी उसमें निम्न इकाइयां सम्मिलित होने का प्रस्ताव था :

प्रथम श्रेणी गवर्नरी प्रान्त : यह संख्या में ११ थे, उन्हें विशेष विषयों में स्वशासन का अधिकार था। वहां जनता की सरकार गवर्नरों के विशेषाधिकारों : के अन्तर्गत अंशतः स्वतन्त्र रूप से काम करती थीं। इनके नाम यह हैं :

	जन संख्या (लाखों में)
१. उत्तर-पश्चिमी सीमांप्रांत	३०
२. पंजाब	२८४
३. सिंध	४५
४. बम्बई	२१०
५. मद्रास	४६०
६. उड़ीसा	६०
७. बंगाल	६०३
८. बिहार	३६०
६. मध्य प्रांत	१७०
१०. युक्त प्रांत	५५०
११. आसाम	१०१
	लगभग २६ करोड़ ३३ लाख

द्वितीयश्रेणी : चीफ-कमिश्नर के प्रांत :—यह संख्या में ६ थे। ये छोटे छोटे राज्य थे और इन में कोई स्वशासन नहीं था। इनका प्रबन्ध केन्द्रीय सरकार करती ह थी। नके नाम यह :—

१. दिल्ली
२. अजमेर-मेरवाडा
३. कुर्ग
४. पंथ-पिप्लोदा
५. अंदेमान द्वीपसमूह
६. ब्रिटिश बलूचिस्तान

तृतीय श्रेणी : देशी राज्य :—वे आन्तरिक मामलों में स्वतन्त्र थे। अंग्रेजों से संधियों के आधार पर वे विदेशी नीति और सेना आदि पर सम्राट का नियन्त्रण मानते थे। १९३७ तक सम्राट की ओर से सपरिषद् गवर्नर जनरल उनकी ओर से इन विषयों का प्रबन्ध करता था। १९३५ के संविधान के अनुसार इनका सम्बन्ध "सम्राट-प्रतिनिधि" से कर दिया गया था जो पद गवर्नर जनरल के पद पर आसीन व्यक्ति को ही मिलता रहा। संघीय योजना के अनुसार इन राज्यों की संघीय सरकार से और नई संधियां होना आवश्यक था जिन के द्वारा वे संघ में सम्मिलित हो सकें। वे कुछ विषयों के अतिरिक्त शेष संघीय विषयों में से जो विषय चाहें संधि द्वारा संघ को अर्पित कर सकते थे। अर्थात भिन्न-भिन्न राज्य भिन्न-भिन्न विषय संघ को दे सकते थे।

देशी राज्य संख्या में तो ५६२ थे पर उनकी कुल जनसंख्या भारत की जनसंख्या की चौथाई थी। वहां नरेशों का निरंकुश शासन था। और संविधानों या जनतन्त्र का नाम भी न था। संधियों के अनुसार इन राज्यों की तीन श्रेणियां 'अ' 'ब' और 'ज' थीं। कुछ तो राज्य इतने छोटे थे कि उन्हें कइयों को मिला कर जनसंख्या के आधार पर केन्द्रीय व्यवस्थापिका सभा में एक प्रतिनिधि भेजने का अधिकार मिला था। बड़े बड़े राज्य निम्नलिखित थे :—

नाम	लाखों में जन-संख्या	स्वतंत्र भारत में उनका किस राज्य में विलय हुआ।
१. हैदराबाद	१६३·३	
२. मैसूर	७३·२	
३. त्रावनकोर	६०·७	त्रांवनकोर-कोचीन
४. जम्मू और काश्मीर	४०·२	
५. ग्वालियर	४०·०	मध्य भारत
६. जयपुर	३०·४	राजस्थान
७. बड़ौदा	२८·५	बम्बई
८. जोधपुर	२५·५	राजस्थान
९. पटियाला	१९·३	पटियाला तथा पूर्वी पंजाब राज्य-संघ
१०· उदयपुर	१९·२	राजस्थान
११· रीवा	१८·२	विंध्य प्रदेश
१२. इन्दौर	१५·१	मध्य भारत
१३· कोचीन	१४·२	त्रांवनकोर-कोचीन
१४: बहावलपुर	१३·४	पाकिस्तान
१५· बीकानेर	१२·९	राजस्थान
१६· कोल्हापुर	१०·९	बम्बई
१७· मयूरभंज	९·९	उड़ीसा
१८· अलवर	८·२	राजस्थान
१९· भोपाल	७·८	केन्द्र शासित राज्य
२०· कोटा	७·७	राजस्थान

जोड़········· ६ करोड़ १९ लाख

बाकी राज्य बहुत छोटे थे, पर अड़चन वे भी डाल सकते थे। उनकी कुल जनसंख्या ३ करोड़ के लगभग थी। संघ स्थापन के लिये यह आवश्यक शर्त थी कि आधी जनसंख्या वाले राज्य अर्थात् साढ़े चार करोड़ जन संख्या के राज्य संघ में सम्मिलित हों। वास्तव में यह शर्त पूरी न होने के कारण संघ स्थापित ही नहीं हो सका था।

३. संघीय योजना की असफलता के कारण

१९३५ के संविधान में प्रस्तावित संघ में कई दोष थे जिनके कारण उसका विरोध हुआ। साधारणतः संसार के अन्य संघ, जिन में अमरीकी संघ मुख्य है, इस प्रकार बने हैं कि कुछ बराबर सत्ता वाले स्वतन्त्र या स्वशासित राज्य अपनी इच्छा से अपनी कुछ सत्ता, जो सारे राज्यों के लिये एक सी होती है, एक संधि या संधियों द्वारा संघ को अर्पित कर देते हैं। किन्तु भारत में ऐसी स्थिति थी कि देशी राज्य तो स्वतन्त्र थे जो कि भिन्न भिन्न मात्रा तक अपनी सत्ता छोड़ने को तैयार थे, बराबर मात्रा में नहीं, और प्रान्त बेचारे किसी प्रकार देशी राज्यों से कोई संधि करने के लिये स्वतन्त्र न थे, प्रत्युत उनसे सम्राट मनचाही सत्ता छीन कर संघ को दे सकता था। दूसरी बात स्वतन्त्र देशी राज्यों, स्वशासन वाले ११ प्रान्तों और संघ के आधीन छः प्रान्तों में बराबरी कैसी, अतः यह संघ एक भानमती का कुनबा ही बनता। संघ के नियम भिन्न भिन्न मात्रा में भिन्न-भिन्न इकाईयों में चलते तथा भिन्न भिन्न प्रकार से शासन होता। तीसरी बात जनतन्त्र द्वारा शासित प्रान्तों का एकतन्त्र प्रणाली वाले पुरातन राज्यों से निर्वाह होना कठिन था। दोनों के शासकों में मनोवृति का ही अन्तर होता। राज्यों के नरेश प्रान्तों के जनतन्त्र का विरोध करते तथा प्रान्त राज्यों के एकाधिपत्य का।

पाठकों को आगे चल कर विदित होगा कि यही कठिनाइयां एक पग पर भारत के स्वतन्त्र होने के समय पड़ी थीं। पर भारत के रियासती विभाग के मंत्री सरदार वल्लभ भाई पटेल ने बड़ी योग्यता से साम, दाम, दंड, भेद की नीति काम में लेकर सारे नरेशों को भारत में सम्मिलित कर लिया तथा बाद में छोटे छोटे राज्यों को या तो प्रान्तों में विलीन कर दिया या कई राज्यों के संघ बना दिये। बड़े बड़े राज्य संघों के नाम यह हैं, मध्य भारत, विंध्य, राजस्थान, सौराष्ट्र, पूर्वी-पंजाब राज्यसंघ।

इसके अतिरिक्त देशी राज्यों या राज्य संघों में जनतन्त्र प्रणाली लागू करवा कर निरंकुशता का अन्त कर दिया गया। राज्यों की समस्या का इसके अतिरिक्त कोई हल नहीं हो सकता था पर अंग्रेजी राज्य में यह मार्ग अपनाना कठिन था अतः संघ शासन योजना १९३७ में सफल न हो सकी। अभी उस के पूरा होने में १० वर्ष की कमी थी।

४. ब्रिटेन का नियन्त्रण

अ, संसद की सत्ता : पहले के अन्य संविधानों के समान १९३५ का

संविधान ब्रिटिश संसद् द्वारा निर्मित था अर्थात संसद् ही सारी शक्ति का स्रोत थी एवं उसका अंकुश भारत मन्त्री के द्वारा भारत पर रहता था। संसद् द्वारा निर्मित संविधान के अनुसार गवर्नर और गवर्नर जनरल भारत का शासन करते थे पर उनकी शक्तियां भी सीमित थी। उनको भारत मंत्री संसद् से पूछ कर कुछ 'अनुदेश पत्र' देता था जो कि संविधान का भाग नहीं थे और उनको संविधान नहीं कहा जा सकता था। किन्तु उन में इस बात के निदेश थे कि संविधान का कार्य कैसे चलाया जाए और गवर्नर जनरल तथा गवर्नरों को किस भावना से शासन करना चाहिए। यदि उन 'अनुदेश पत्रों' को न माना जाता तो भारत मन्त्री चाहे अप्रसन्न हो जाये परन्तु भारतीय जनता कुछ न कह सकती थी। संविधान में समाविष्ट होने पर भी अनुदेश पत्रों का वैध मूल्य न था।

इस के अतिरिक्त संसद् की अनुमति से राज-आज्ञायें भी लागू की जा सकतीं थीं जो संविधान में परिवर्तन कर सकती थीं। अर्थात् भारत के संविधान को समयानुकूल बनाने की शक्ति भी संसद् में थी और भारतीयों को कोई स्वराज्य नहीं मिला था। संसद् के किसी अधिनियम के विरुद्ध जो कि भारत पर लागू हो कोई अधिनियम बनाने का संघीय और प्रांतीय व्यवस्थापक मंडलों को वर्जन था क्योंकि संसद् सर्वोच्च सत्ताधारी थी तथा भारतीय संस्थायें उसकी 'सृष्टि' थीं।

ब. सम्राट की सत्ता : सम्राट की शक्ति, संसद् द्वारा नियन्त्रित होने के अतिरिक्त असीमित थी। भारत का शासन उसी के नाम से होता था। देशी राज्यों पर भी वह अपने प्रतिनिधि के द्वारा राज्य करता था। जैसा कि पहले कहा जा चुका है सम्राट ने ही प्रांतों तथा केन्द्र को शक्तियां वितरित की थीं। सम्राट के कुछ मौलिक अधिकार होते हैं जो उसकी ओर से प्रयुक्त होते थे जैसे कि क्षमा दान, उपाधि दान, सर्वभूमि पर अधिकार, निरुत्तराधिकारी की मृत्यु पर उसकी सम्पत्ति पर अधिकार, आदि। इसके अतिरिक्त उसे संविधान द्वारा कई अधिकार मिले हुए थे यथा गवर्नर जनरल, गवर्नरों, सम्राट-प्रतिनिधि, प्रधान सेनापति, उच्च न्यायाधीशों आदि की नियुक्ति करने की क्षमता, भारत के प्रांतीय या केंद्रीय व्यवस्थापक मण्डलों द्वारा निर्मित अथवा गवर्नर या गवर्नर जनरल द्वारा स्वीकृत किसी अधिनियम को एक वर्ष में रद्द करने का अधिकार तथा देशी राज्यों के विषय में पूर्ण अधिकार, संघीय योजना को लागू करने का अधिकार (जो उसने कभी काम में नहीं लिया),

सैनिक अफसरों को नियुक्त करने का अधिकार, उच्च न्यायालय स्थापित करने का अधिकार आदि, अर्थात् शासन की रूपरेखा बनाना तथा उस का नियन्त्रण दोनों सम्राट के द्वारा संसद् के हाथ में था।

ज. भारत मंत्री के अधिकार : सम्राट तो वैधानिक सम्राट होने के कारण उसका नाम तथा हस्ताक्षर ही चलते थे। वास्तविक भारत-सम्राट तो भारत-मन्त्री था जो संसद् का प्रतिनिधि था और ब्रिटिश मन्त्रिमण्डल का सदस्य होता था। वह गवर्नर जनरल आदि को आज्ञायें भेज कर ६ हजार मील से भारत पर नियन्त्रण रखता था। उसके ८ से १२ परामर्शदाता होते थे जिनमें से आधे भारत में दस वर्ष सरकारी कार्य का अनुभव रखने वाले अफसर होते थे। संघ स्थापित होने पर उनकी संख्या ६ से ३ कर देने का उपबंध था जो लागू नहीं हुआ। १९३७ से भारत मन्त्री और उस के बड़े भारी कार्यालय का आर्थिक भार संसद् ने अपने ऊपर ले लिया था।

भारत मन्त्री को गवर्नर जनरल और उसके द्वारा गवर्नरों पर नियंत्रण तथा अंकुश रखने के अधिकार थे। वह सम्राट का भारत के विषय में परामर्शदाता था। वह गवर्नर जनरल आदि को अनुदेश पत्र तथा राज-आज्ञायें भेजता था। गवर्नर जनरल उस को भारतीय शासन के रत्ती रत्ती समाचार देता था। भारत मन्त्री ही भारत में बड़े बड़े अफसरों की नियुक्तियां आदि करता था और यहां के प्रांतीय मंत्रियों को इस विषय में कोई अधिकार न था। भारत के अफसर कठपुतलीमात्र थे जिनकी डोरियां भारत मन्त्री के हाथ में थीं।

५. ब्रिटेन में उच्चायुक्त

भारत को स्वतन्त्रता देने के आडम्बर के साथ साथ १९३५ के संविधान में यह भी आदेश था कि गवर्नर जनरल भारत की ओर से एक उच्च आयुक्त ब्रिटेन में नियुक्त करेगा। वास्तव में यह राजदूत के पद के समान आडम्बर रचा गया था पर वास्तव में वह व्यापार दूत का कार्य करता रहा और भारतीय व्यापार विभाग के ही नियन्त्रण में रहा। एक प्रकार से भारत मन्त्री के शीश पर जो निरर्थक कार्य का भार था वह उच्च आयुक्त को सौंप दिया गया।

६. गवर्नर जनरल : परिवर्तन काल में

केन्द्रीय शासन सूत्र का सूत्रधार गवर्नर जनरल होता था। १९३७ के पहले वह सारे भारत पर राज्य करता था। १९३५ के संविधान के अनुसार उसका कार्यक्षेत्र ब्रिटिश भारत तक ही सीमित कर दिया गया क्योंकि देशी नरेशों पर राज्य करने का कार्य सम्राट-प्रतिनिधि का हो गया। वास्तव में एक ही व्यक्ति गवर्नर जनरल और सम्राट-प्रतिनिधि दोनों पदों पर आसीन कर दिया जाता था। जनसाधारण की बोली में उसे वायसराय कहते थे। संविधान में वाइसराय शब्द कहीं प्रयुक्त नहीं हुआ। परिवर्तन काल होने के कारण १९१९ के संविधान के अनुसार सारा कार्य सपरिषद् गवर्नर जनरल करता था और वही केन्द्रीय सरकार था। उस की परिषद् के सदस्यों को सम्राट नियुक्त करता था। साधारणतः गवर्नर जनरल अपनी परिषद् के बहुमत के निर्णय से वाध्य था पर विशेषावस्था में जब कि भारत की शान्ति, सुरक्षा आदि पर उसके विचार के अनुसार विशेष प्रभाव पड़ता हो तो वह बहुमत के विरुद्ध जा सकता था।

इस के अतिरिक्त वह धारा ७२ के अनुसार ६ मास के लिये विशेष अधिनियम भी बना सकता था अर्थात परिमित समय के लिये वह व्यवस्थापक-मन्डल का कार्य कर सकता था। युद्ध काल में उसे सारे युद्ध काल और तत्पश्चात एक वर्ष तक के लिये नये अधिनियम बनाने का अधिकार मिल गया उधर व्यवस्थापक मंडल द्वारा स्वीकृत कोई भी प्रस्ताव गवर्नर-जनरल की स्वीकृति के बिना अधिनियम नहीं बन सकता था और उसे स्वीकृति न देने का एवं सम्राट की स्वीकृति के लिये प्रस्ताव को रोकने का भी अधिकार था। सम्राट तो गवर्नर जरनल की स्वीकृति के बाद भी अधिनियम को रद्द कर सकता था। गवर्नर जरनल व्यवस्थापक मंडल का सदस्य न होते हुये भी उसमें भाषण देने का अधिकारी था।

विदेश विभाग तथा राज्य विभाग गवर्नर जनरल के अपने विभाग होते थे तथा परिषद् के किसी सदस्य के आधीन नहीं थे। इसके अतिरिक्त वह कबाइली प्रदेशों, अल्पसंख्यकों की रक्षा, ईसाई धर्म सम्बन्धी नीति, सुरक्षा, धन आदि के विषयों में विशेष शक्ति से कुछ भी कर सकता था।

केन्द्रीय कार्यपालिका के रूप में गवर्नर जनरलकी एक कार्यकारिणी परिषद् थी जिसके सदस्य सम्राट द्वारा नियक्त होते थे। धीरे धीरे इस परिषद् में ६ से

बढ़ा कर १५ सदस्य कर दिये गये थे। प्रायः प्रधान सेनापति भी इसका सदस्य होता था। प्रत्येक सदस्य को एक एक सरकारी विभाग मिला हुआ था। जिस पर वे गवर्नर जनरल तथा परिषद् के आदेशानुसार नियन्त्रण करते थे। परिषद् के सदस्य व्यवस्थापक मंडल के सदस्य होते थे, उसमें बैठते, मत देते, तर्क करते, प्रश्नों का उत्तर देते और अपने विभाग की नीति का समर्थन करते थे किन्तु वे व्यवस्थापक मंडल के प्रति उत्तरदायी नहीं होते थे।

७. व्यवस्थापक मंडल : परिवर्तन काल में

यह १९१९ के संविधान के अनुसार ही १९३७ में चुना गया था पर गवर्नर जनरल ने अपने विशेषाधिकार से उसकी आयु १९४५ तक बढ़ाई थी। इसकी शक्ति भी १९१९ के संविधानानुसार ही सीमित रही क्योंकि सदा परिवर्तन काल ही चलता रहा। १९३५ के संविधान में तीन सूचियां थीं: जिनमें दो तो क्रमशः केन्द्रीय और प्रान्तीय व्यवस्थापक मंडलों के कार्यक्षेत्रों की थीं तथा तीसरी सूची के विषयों पर दोनों अधिनियम बना सकते थे। यदि व्यवस्थापक मंडल किसी शासकीय प्रस्ताव को नहीं मानता था तो गवर्नर जनरल उसे प्रमाणित कर देता था और वह प्रस्ताव अधिनियम बन जाता था।

८. गवर्नर जनरल : संघ योजना में

जैसा ऊपर लिखा जा चुका है १९३५ की संघीय योजना कार्यान्वित नहीं हो सकी थी और परिवर्तन काल में ही अंग्रेजी शासन समाप्त हो गया। किन्तु हम उस योजना का विवरण इस कारण देना चाहते हैं कि स्वतन्त्र भारत के संविधान का आधार यही योजना है। इस के अनुसार केन्द्रीय शासन में महान परिवर्तन होने थे। गवर्नर जरनल की कार्यकारिणी परिषद् के स्थान पर एक मन्त्रिपरिषद् बननी थी। मन्त्री कुछ विषयों में उसे 'मन्त्रणा तथा सहायता' देने के लिये थे। गवर्नर जनरल सम्राट की ओर से भारत का राज्य प्रबन्ध करता। सुरक्षा, विदेशी सम्बन्ध, ईसाई धर्म, कबाइली प्रदेशों का प्रशासन आदि विषय गवर्नर जरनल के रक्षित विषय थे जिन में परामर्श देने के लिये वह तीन परामर्शदाता तक नियुक्त कर सकता था। अर्थात् केन्द्र में द्वैध पद्धति आरम्भ होनी थी। रक्षित विषयों के अतिरिक्त बाकी हस्तान्तरित विषय थे जिन में वह मन्त्रियों के परामर्श पर चलता परन्तु

जहां उसके विशेष उत्तरदायित्वों का प्रश्न आता वह उसकी मन्त्रणा की उपेक्षा कर सकता था। वे विशेष उत्तरदायित्व निम्न थे :

१. भारत की शान्ति व्यवस्था के लिये कोई गम्भीर भय न हो।

२. संघीय सरकार के आर्थिक संतुलन और सम्मान की रक्षा हो।

३. अल्पसंख्यों के विरुद्ध कोई विभेद न हो।

४. भारत में अंग्रेजी और बर्मी माल आने के विरुद्ध प्रतिबन्ध न लगें।

५. देशी राज्यों के अधिकारों तथा उनके नरेशों के सम्मान की रक्षा।

६. अपने विशेषाधिकारों की रक्षा, आदि।

गवर्नर जनरल को अपने उपर्युक्त उत्तरदायित्व पूरे करने के लिये निम्न विशेष शक्तियां भी थीं :

१. वह धन पर अंकुश रखता था अर्थात अपने उत्तरदायित्वों को पूरा करने के लिये जितने धन की आवश्यकता हो उतना वह व्यवस्थापक मंडल के विरोध करने पर भी ले सकता था।

२. अपने विशेष उत्तरदायित्व के सम्बन्ध में व्यवस्थापक सभा या परिषद् की कार्य-प्रणाली के विषयों के नियम बना सकता था, अर्थात उस पर वाद विवाद को रोक सकता था या नियन्त्रित कर सकता था।

३. वह संघीय व्यवस्थापक मंडल को किसी प्रस्ताव अथवा संशोधन पर विचार या वाद विवाद करने से वर्जित कर सकता था।

४. वह व्यवस्थापक मंडल द्वारा अस्वीकृत प्रस्तावों को प्रमाणित कर के अधिनियम का रूप दे सकता था।

५. वह छै मास के लिये विशेष अधिनियम बना सकता था।

९. मंत्रि परिषद् : संघीय

मंत्रिपरिषद् में १० से अधिक मंत्री नहीं हो सकते थे जो उसे अपने गवर्नर जनरल के व्यक्तिगत कार्यक्षेत्र के विषयों के अतिरिक्त बाकी विषयों में सम्मति और सहायता देते थे। मंत्री व्यवस्थापक मंडल की किसी एक सभा के सदस्य होते थे और उन्हें ६ मास तक सदस्य न बनने की अवस्था में पद से हटना पड़ता था [धारा १० (२) —१९३५]।

गवर्नर जनरल स्वयं अपनी इच्छा से मन्त्रियों को चुनता और उनकी बैठक बुलाता, उन से राजभक्ति की शपथ दिलवाता तथा जब तक उसकी इच्छा होती उन्हें पदासीन रखता : [धारा ९ (१) तथा १० (१)]।

अनुदेश पत्र के अनुसार वह मन्त्रियों को ऐसे व्यक्ति से परामर्श कर के चुनता जो कि उसके विचार में व्यवस्थापक-मंडल में स्थायी बहुमत रखने में समर्थ हो तथा उन व्यक्तियों को मन्त्री नियुक्त करता जिनमें यथासम्भव देशी राज्यों और अल्पसंख्यकों के प्रतिनिधि भी हों और जो कि संयुक्त रूप से व्यवस्थापक मंडल का विश्वास प्राप्त करने की स्थिति में हों :

वैसे तो मन्त्री गवर्नर जनरल की इच्छानुसार ही पदासीन रह सकते थे पर साधारणतः वे तब तक अपने पद पर रहते जब तक कि उन्हें व्यवस्थापक मंडल का विश्वास प्राप्त हो अर्थात् वे उत्तरदायी मन्त्री होते।

उनके वेतन आदि भी व्यवस्थापक मंडल स्वीकार करता परन्तु एक मन्त्री के पदकाल में उसका वेतन घटाया बढ़ाया नहीं जा सकता था [धारा १० (३)]।

१०. अन्य पदाधिकारी

१. सम्राट एक प्रधान सेनापति भी नियुक्त करता था [धारा ४ और २३२]।

२. गवर्नर जरनल चाहता तो मन्त्रियों से परामर्श कर के एक आर्थिक परामर्शदाता नियुक्त कर सकता था [धारा १५]।

३. गवर्नर जरनल रक्षित विषयों में परामर्श देने के लिये तीन परामर्श दाता भी रख सकता था पर उनके परामर्श को मानना उसके लिये आवश्यक न था [धारा ११ (२)]।

४. गवर्नर जनरल अपनी इच्छा अनुसार एक महा अभिवक्ता (Advocate General) रख सकता था [धारा १६]।

११. संघीय व्यवस्थापक मंडल की रूपरेखा

संघीय योजना से इस में महान परिवर्तन होना था। एक तो दोनों

सभाओं को बढ़ा दिया जाता, दूसरे उनमें जनता के प्रतिनिधि बढ़ जाते, तीसरे देशी राज्यों के प्रतिनिधि भी रखने का आयोजन था, चौथी बात संघीय व्यवस्थापिका सभा के चुनाव सीधे जनता द्वारा न होकर प्रान्तीय धारा सभाओं द्वारा होने का उपबंध रखा गया था।

धारा १८ (१) के अनुसार संघीय व्यवस्थापक मंडल में निम्न अंग होते :

१. सम्राट (जिसका प्रतीक गवर्नर जरनल था) ;
२. राज्य-परिषद्;
३. संघीय व्यवस्थापिका-सभा;

१२. संघीय राज्य-परिषद्

राज्य-परिषद् में ब्रिटिश भारत के १५६ प्रतिनिधि लेने थे जिन में ६ गवर्नर जनरल द्वारा मनोनीत थे तथा शेष साम्प्रदायिक निर्वाचन वर्गों के आधार पर चुने जाने थे; तथा इस में अहिन्दुओं को पासंग दिया गया था। इनका वितरण इस प्रकार होना था :

प्रान्त	कुल स्थान	जनरल (हिंदु)	हरिजन	सिख	मुसलिम	स्त्रियां
मद्रास	२०	१४	१	:	४	१
बम्बई	१६	१०	१	:	४	१
ंगाल	२०	८	१	:	१०	१
युक्त प्रान्त	२०	११	१	:	७	१
पंजाब	१६	३	०	४	८	१
बिहार	१६	१०	१	:	४	१
मध्य प्रांत	८	६	१	:	१	:
आसाम	५	३	०	:	२	.
सीमा प्रान्त	५	१	०	:	४	:
उड़ीसा	५	४	०	:	१	:
सिंध	५	२	०	:	३	:
ब्रि० बलुचिस्तान	१	०	०	:	१	:
दिल्ली	१	१	०	:	:	:
अजमेर मेरवाड़ा	१	१	०	:	:	:
कुर्ग	१	१	०	:	:	:
जोड़........	१४०	७५	६	४	४६	६

इसके अतिरिक्त दो भारतीय ईसाई, ७ यूरोपियन, १ आंग्ल-भारतीय तथा ६ मनोनीत सदस्य होते थे। इस प्रकार राज्य-परिषद् में १५६ सदस्य होते थे। इस के अतिरिक्त राज्य-परिषद् में देशी राज्यों के प्रतिनिधि भी होते थे जो कि सारे राज्यों के संघ में सम्मिलित होने पर १०४ होते, अन्यथा कम होते।

राज्य-परिषद् एक स्थायी सदन था पर उस के एक-तिहाई सदस्य प्रति तीसरे वर्ष बदलते थे। ध्यान रहे १६१६ की राज्य-परिषद् में केवल ६० सदस्य थे पर अब २६० तक हो सकते थे।

परिषद् अपने सभापति तथा उपसभापति को स्वयम चुनती जो कि परिषद् के सदस्य न रहने पर या त्याग पत्र देने पर या परिषद् के प्रस्ताव द्वारा अपने पद से हट जाते। उन के वेतन व्यवस्थापक मण्डल द्वारा निर्धारित होते थे (धारा २२)।

१३. संघीय व्यवस्थापिका-सभा

इस में संघीय योजना के अनुसार प्रांतों के २५० सदस्य तथा देशी राज्यों के १२५ तक सदस्य हो सकते थे। इसका जीवन-काल पांच वर्ष रखा गया था और १६१६ के संविधान के समान गवर्नर जनरल को इसका जीवन काल बढ़ाने का अधिकार नहीं दिया गया था किन्तु वह इस सभा को अवधि से पूर्व समाप्त कर सकता था। संघीय व्यवस्थापिका सभा को भी अपने अध्यक्ष और उपाध्यक्ष चुनने का अधिकार था और उनके वेतन निर्धारित करने तथा उन्हें पदच्युत करने का भी अधिकार था। संघीय व्यवस्थापिका सभा के सदस्यों का निर्वाचन अप्रत्यक्ष रूप से होना था अर्थात् सीधे जनता द्वारा न चुने जाकर वे जनता द्वारा निर्वाचित प्रांतीय धारा-सभाओं द्वारा चुने जाते (स्वतन्त्र भारत के संविधान में सीधे निर्वाचन का उपबंध है तथा संघीय व्यवस्थापिका-सभा का नाम लोक-सभा रखा गया है)।

संघीय व्यवस्थापिका-सभा में निम्न प्रकार स्थानों का वितरण किया गया था। (इस बार इसमें गवर्नर जनरल द्वारा मनोनीत या शासकीय सदस्य न थे।):

प्रान्त	कुल स्थान	कुल हिन्दू	उनमें हरिजन	सिख	मुस्लिम	भारतीय ईसाई	यूरोपियन	आंग्ल-भारतीय	व्यापारी	जमींदार	मजदूर	स्त्रियां
मद्रास	३७	१९	४	:	८	२	१	१	२	१	१	२
बम्बई	३०	१३	२	:	६	१	१	१	३	१	२	२
बंगाल	३७	१०	३	:	१७	१	१	१	३	१	२	१
युक्त प्रांत	३७	१९	३	:	१२	१	१	१	:	१	१	१
पंजाब	३०	६	१	६	१४	१	१	:	:	१	:	१
बिहार	३०	१६	२	:	९	१	१	:	:	१	१	१
मध्य प्रान्त	१५	९	२	:	३	:	:	:	:	१	१	१
आसाम	१०	४	१	:	३	१	१	:	:	:	१	:
सीमा प्रांत	५	१	:	:	४	:	:	:	:	:	:	:
उड़ीसा	५	४	१	:	१	:	:	:	:	:	:	:
सिंध	५	१	:	:	३	:	१	:	:	:	:	:
ब्रि० बलूचिस्तान	१	:	:	:	१	:	:	:		:	:	:
दिल्ली	२	१	:	:	१	:	:	:	:	:	:	:
अजमेर मेरवाड़ा	१	१	:	:	:	:	:	:	:	:	:	:
कुर्ग	१	१	:	:	:	:	:	:	:	:	:	:
अप्रान्तीय	४	:	:	:	:	:	:	:	३	:	१	:
जोड़.........	२५०	१०५	१९	६	८२	८	८	४	११	७	१०	९

सूचनाः—हरिजनों के स्थान हिन्दुओं के कुल स्थानों में सम्मिलित हैं तथा अतिरिक्त नहीं हैं।

(पाठकों को यह विचार उत्पन्न होगा कि सभा के स्थान प्रान्तों या सम्प्रदायों की जनसंख्या के आधार पर वितरित नहीं किये गये थे अपितु अंग्रेज़ों ने अपनी सुविधा के अनुसार बांटे थे। स्वतन्त्र भारत के संविधान में इस अन्याय को दूर कर के, प्रत्येक राज्य को लोक-सभा में जनसंख्या के आधार पर ही स्थान दिए गये हैं। स्वतन्त्र संविधान में लोक-सभा का निर्वाचन प्रत्यक्ष, सम्मिलित

तथा वयस्क मताधिकार के सिद्धांतों पर होगा। ये सिद्धांत १९३५ के संविधान में नहीं थे। स्वतन्त्र संविधान में पासंग (वजन) भी नहीं होगा तथा हरिजनों के अतिरिक्त किसी जाति के लिए स्थान रक्षण नहीं होगा।)

कोई भी व्यक्ति दोनों सदनों का सदस्य नहीं हो सकता था। यदि वह ६० दिन तक सभा की आज्ञा के बिना उसकी सारी बैठकों से अनुपस्थित होता तो वह सभा उसका स्थान रिक्त घोषित कर सकती थी।

१४. सदनों (Houses) का कार्य

व्यवस्थापक मंडल द्वारा किस प्रकार व्यवस्थापन कार्य होना था इसकी एक झांकी भी यहां दिखाना आवश्यक है। चुनाव समाप्त होने पर गवर्नर जनरल सदनों की बैठकें बुलाता था जो कि एक वर्ष में कम से कम एक बार अवश्य होनी चाहिए। जनतन्त्रवाद के अनुसार वर्ष में एक बार शासन के लिए धनराशि स्वीकृत कराने के लिए सदनों को बुलाना आवश्यक होता है; क्योंकि जनता के प्रतिनिधियों की स्वीकृति के बिना जनता से धन नहीं लिया जा सकता और धन के बिना शासन नहीं चल सकता। किन्तु १९३५ के संविधान में गवर्नर जनरल को स्वयम् धन स्वीकृत करने की शक्ति भी थी। अपने स्थान पर बैठने से पहले प्रत्येक सदस्य सम्राट के प्रति भक्ति की शपथ लेता था (स्वतन्त्र संविधान में अब संविधान के प्रति शपथ ली जाती है)। फिर सभापति आदि चुने जाते थे। यदि कुल सदस्यों की संख्या के छठे भाग सदस्य उपस्थित न हों तो बैठक स्थगित कर दी जाती थी।

सदनों में प्रश्न पूछने, साधारण प्रस्ताव रखने तथा काम रोको प्रस्तावों के पेश करने के अतिरिक्त मुख्य कार्य अधिनियम बनाना होता है जो कि विधेयक (Bill) के रूप में किसी मन्त्री या सदन के सदस्य द्वारा प्रस्तुत होता था। धन संग्रह, धन व्यय या उधार सम्बन्धी विधेयक गवर्नर जनरल की सहमति से सर्वप्रथम व्यवस्थापिका सभा में ही प्रस्तुत होता था। शेष विधेयक दोनों में से किसी सदन में पेश हो सकते थे। एक सदन में स्वीकृत होने के बाद प्रत्येक प्रस्ताव दूसरे सदन में जाता था और वहाँ भी स्वीकृत होने पर वह गवर्नर जनरल के समक्ष पेश होता था। वह सम्राट के नाम

से उसको स्वीकार या अस्वीकार कर सकता था या सम्राट के विचारार्थ रोक सकता था। दोनों सदनों में किसी प्रस्ताव पर मतभेद होने पर गवर्नर जनरल दोनों सदनों की संयुक्त बैठक बुला सकता था और उस प्रस्ताव पर उसमें विचार हो सकता था।

किसी प्रस्ताव पर विस्तृत विचार करने के लिए कोई भी सदन उसे समिति, उपसमिति, स्थायी अथवा अस्थायी समिति, विशेषज्ञ समिति आदि के पास भेज सकता था पर अन्त में वह उसी सदन में आता था। दोनों सदनों और गवर्नर जनरल द्वारा स्वीकृत होने पर ही कोई प्रस्ताव अधिनियम बनता और सूचनापत्र (Gazette) में प्रकाशित होता जिससे कि उस पर न्यायालय कार्य कर सकें।

यदि किसी मन्त्री का कोई प्रस्ताव व्यवस्थापिका सभा में अस्वीकार हो जाये तो प्रायः मन्त्रि-मण्डल को त्यागपत्र देना होता था क्योंकि वे उस सभा के प्रति संयुक्त रूप से उत्तरदायी होते थे। राज्य परिषद् जनता का सदन न होने से उसकी शक्ति प्रायः कम होती थी। वह बिल को केवल दोहराने का कार्य करती जिस से जल्दी में व्यवस्थापिका सभा कोई अनुपयुक्त कार्य न कर सके। देशी राज्यों के नरेशों, विदेशी शक्तियों, कबाइली प्रदेशों या गवर्नर जनरल के विशेषाधिकारों के विषय में वाद विवाद को रोकने का गवर्नर जनरल को अधिकार था। सदनों का कार्य अंग्रेजी में होना था पर उस भाषा से अनभिज्ञ किसी सदस्य को अन्य भाषा प्रयोग करने की अनुमति सभापति द्वारा मिल सकती थी।

यही कार्यप्रणाली प्रांतीय व्यवस्थापक मण्डलों में भी लागू थी। आवश्यक हेर फेर के साथ यही प्रणाली स्वतन्त्र भारत में लागू है।

१५. विषय वितरण

१९३५ के संविधान की सातवीं अनुसूची में व्यवस्थापन के विषयों की ३ सूचियां थीं: संघीय सूची, प्रांतीय सूची तथा समवर्ती सूची। संघीय सूची में वे विषय थे जिन पर केवल केन्द्रीय व्यवस्थापक मण्डल ही कानून बना सकता था। इसी प्रकार प्रांतीय सूची के विषयों पर केवल प्रांत ही कानून बना सकते थे। विवाद होने पर संघीय न्यायालय को निर्णय करना होता था

कि कौन सा विषय किस सूची के अन्तर्गत आता है। वास्तव में संघीय प्रणाली का यही मूल सिद्धांत है। समवर्ती सूची के विषयों पर केन्द्र तथा प्रांत दोनों अधिनियम बना सकते थे किन्तु प्रांतीय कानून उस हद तक प्रभावशून्य होता था जिस हद तक कि यह केन्द्रीय कानून के विपरीत हो।

केन्द्रीय सूची में मुख्यतः रक्षा (सेना आदि), वैदेशिक सम्बन्ध, यातायात, मुद्रा आदि विषय सन्निहित थे। पुलिस, शिक्षा आदि व्यवस्थायें प्रांतों के आधीन थीं।

१६. धन-प्राप्ति के साधन

संविधान में केन्द्रीय तथा प्रांतीय सरकारों के बीच धन प्राप्ति के साधनों का भी वितरण था। इस विषय में केवल दो ही सूचियां थीं। केन्द्रीय सूची में आयात-निर्यात कर, तम्बाकू कर, नमक कर, कृषि-आय के अतिरिक्त अन्य आय पर कर, पूंजी तथा उत्तराधिकार पर कर, बीमा, चैक, हुंडी आदि पर फीस, आदि विषय थे। प्रान्तीय सूची में कृषि-कर, बिक्री कर, मादक तथा शृंगार की वस्तुओं पर कर, मनोरंजन कर आदि विषय थे।

इन सूचियों के अनुसार धन प्राप्त करने पर भी कई प्रांत घाटे में रहते थे। उन्हें केन्द्र की ओर से उनके प्रदेश से प्राप्त आय-कर तथा पटसन-कर का भाग दे दिया जाता था। इस के अतिरिक्त बंगाल तथा सीमा प्रां‍ को आर्थिक सहायता भी देनी पड़ती थी क्योंकि वह दोनों निर्धन प्रांत थे। कभी कभी अन्य छोटे प्रांतों को भी कुछ सहायता दे दी जाती थी। इसके अतिरिक्त प्रांत केन्द्र की ओर से जो कार्य करते थे उसके लिये भी उन्हें धन दिया जाता था। १९४५-४६ में प्रांतों को ४६ करोड़ रुपये दिये गये थे जिन में से १७½ करोड़ केवल बंगाल को मिले थे।

१७. संघीय न्यायालय

जैसा कि ऊपर वर्णन किया जा चुका है केन्द्र तथा प्रांतों के व्यवस्थापक विषयों तथा धन प्राप्ति के विषयों के सम्बन्ध में संविधान में उपबन्ध थे। ऐसी अवस्था में यह प्रश्न उठ सकता था कि यदि केन्द्र अथवा प्रान्त एक दूसरे के विषय को हड़पने की अनधिकार चेष्टा करें तब क्या हो। कई

ऐसे भी कर लगाए जा सकते थे जिन का किसी सूची में स्पष्टतः निर्देश न था, और केन्द्र तथा प्रान्तों में यह विवाद उठ सकता था कि यह कर किस सूची के अन्तर्गत आता था। ऐसे विवादों को सुलझाने के उद्देश्य से ही मुख्यतः संघीय न्यायालय की स्थापना की गई थी। अतः इस का मुख्य कार्य यही था कि यदि संविधान की व्याख्या के सम्बन्ध में केन्द्र का प्रांतों अथवा राज्यों से, राज्यों का प्रान्तों से, प्रान्तों के ही बीच, अथवा राज्यों के ही बीच कोई विवाद हो तो संघीय न्यायालय उनका न्याय करे तथा संविधान का ठीक अर्थ बताये। यह संघीय न्यायालय का 'प्राथमिक क्षेत्र' था।

किसी भी वैधानिक विषय पर गवर्नर जनरल संघीय न्यायालय की सम्मति भी मांग सकता था और सम्मति देने का न्यायालय को अधिकार था। यह उसका 'परामर्श सम्बन्धी कार्य-क्षेत्र' था।

कई बार ऐसा भी हो सकता था कि जनता में से ही कोई व्यक्ति किसी प्रान्तीय या केन्द्रीय अधिनियम का इस आधार पर विरोध करे कि वह कानून निर्माता के कार्य क्षेत्र की सूची से बाहर होने के कारण अनियमित है, तो वह व्यक्ति किसी छोटे न्यायालय में अपना वाद पेश कर सकता था। ऐसे वाद की अन्तिम अपील संघीय न्यायालय को आती। यह इस न्यायालय का 'अपील सम्बन्धी कार्यक्षेत्र' था।

संघीय न्यायालय के पास कोई ऐसी शक्ति नहीं थी कि वह अपने निर्णयों को पूरा करवा सके अतः १९३५ के संविधान में यह उपबंध था कि शासन का प्रत्येक अंग तथा प्रत्येक न्यायालय उस के निर्णय को पूरा करने में सहायता करेगा।

(सूचना: संघीय न्यायालय के विषय में कुछ हेर फेर के साथ यही नियम स्वतन्त्र संविधान में भी हैं।)

१८. केन्द्र के अभिकर्ता (Agent) प्रान्त

संघीय सरकार अपने विषयों पर कार्य करने के लिये प्रत्येक इकाई में अपने कार्यकर्ता रखती थी पर जहाँ ऐसे कार्यकर्ता नहीं होते वहाँ वह प्रान्तीय सरकारों को इस विषय में आज्ञा भी भेज सकती थी। इस प्रकार प्रान्तीय सरकारें एक प्रकार से संघ की एजन्ट थीं जो कि संघीय विषयों में संघ की

आज्ञाओं या अधिनियमों को कार्यान्वित करने का कार्य पूरा करने के लिये वाध्य थीं। ऐसे न्यायालय, जो कि प्रान्तीय सरकार के अधिकार क्षेत्र में थे, संघीय अधिनियमों का ऐसे ही पालन करते थे जैसे कि वे प्रान्तीय अधिनियमों का करते थे।

१६. प्रान्तीय शासन

१९३५ के संविधान ने प्रान्तों का मानो अपना अस्तित्व स्थिर कर दिया था। अब वे केन्द्रीय सरकार के सर्वथा आधीन नहीं रहे थे अपितु उनका अपना कार्यक्षेत्र बन गया था जो कि प्रान्तीय सूची के विषयों तक सीमित था। इसके अतिरिक्त प्रान्तों में कुछ अंश तक स्वराज्य मिल गया था। इसी संविधान के अन्तर्गत प्रथम बार जनता की सरकारें बनी थीं और उन्होंने मार्ग में रोड़े होते हुए भी प्रगति की ओर कुछ पग बढ़ाये थे।

क. गवर्नरः जैसे कि केन्द्र में गवर्नरजरनल विशेषाधिकारों से युक्त मुख्य कार्यपालक था तथा मन्त्रिपरिषद् केवल उसको सहायता तथा परामर्श देने के लिये थी उसी प्रकार प्रान्तों में गवर्नर की अवस्था थी। वह भी प्रान्त का मुख्य कार्यपालक होता था और मन्त्रिपरिषद् उसको सहायता तथा परामर्श देने के हेतु थी। उसको सम्राट नियुक्त करता था और उसके निम्न विशेषाधिकार तथा विशेष उत्तरदायित्व थे :

१. वह कई विषयों में स्वविवेक से कार्य कर सकता था तथा यह भी निर्णय स्वयं ही करता था कि कौन से विषय उसके स्वविवेक के विषयों की सूची में सन्निहित थे।

२. मन्त्रि परिषद् की बैठकों का सभापतित्व करना।

३. जब तक व्यवस्थापक मंडल मन्त्रियों के वेतन नियत न करे तब तक उन्हें नियत करना।

४. मन्त्रियों को चुनना, उनकी बैठकें बुलाना, उनको पदच्युत करना।

५. प्रान्त की शांति की रक्षा।

६. अल्पसंख्यकों के उचित अधिकारों की रक्षा।

७. देशी राज्यों तथा नरेशों की मर्यादा की रक्षा।

८. महा-अधिवक्ता की नियुक्ति आदि ।

९. व्यवस्थापक मंडल के सदनों की बैठकें बुलाना या उनका विघटन करना ।

१०. व्यवस्थापक मंडल में वक्तृता देना ।

११. व्यवस्थापक मण्डल की संयुक्त बैठक बुलाना ।

१२. व्यवस्थापक मंडल द्वारा स्वीकृत प्रस्ताव पर अपनी स्वीकृति देना या न देना या उसे गवर्नर जनरल की अनुमति के लिये रखना ।

१३. आवश्यक व्यय को स्वीकार करना तथा यह निर्णय करना कि कौन सा व्यय आवश्यक है जो कि व्यवस्थापक मंडल द्वारा स्वीकृत होना अपेक्षित नहीं था ।

१४. किसी प्रस्ताव को व्यवस्थापक मंडल में वाद-विवाद से रोकना ।

१५. अपने अध्यादेश या अधिनियम बनाना ।

१६. आवश्यकता पड़ने पर गवर्नर प्रान्त में संविधान का भी अन्त कर के स्वयम् सर्वेसर्वा बन सकता था । यह शक्ति प्रांतों में उस समय काम में ली गई थी जब कि कांग्रेस ने बहुमत होने पर भी मन्त्रिमण्डल तोड़ दिए और संविधान को चलाने का कोई उपाय न रहा । संविधान का अन्त होने पर गवर्नर पूर्णतः गवर्नर जनरल के आधीन हो जाते थे (धारा ९३) ।

१७. गवर्नर जनरल के एजन्ट का कार्य करना ।

१८. पृथक किए हुए प्रदेशों आदि के विषय में सारे अधिकार ।

१९. पुलिस के विषय में कई विशेषाधिकार ।

गवर्नर के उपर्युक्त अधिकारों के होते हुए बेचारे मन्त्रिमण्डल की क्या शक्ति शेष रहती थी यह पाठक सोच सकते हैं ।

ख. प्रांतीय मन्त्रि-परिषदें : प्रान्तीय मन्त्रिमंडल चुनने के लिए वही उपबंध थे जो कि केन्द्र के विषय में लिखे जा चुके हैं। यहां भी मन्त्री संयुक्त रूप से व्यवस्थापक मंडल के प्रथम सदन (व्यवस्थापिका सभा) के प्रति उत्तरदायी थे ।

ज. प्रांतीय व्यवस्थापक मण्डल : प्रान्तीय व्यवस्थापक मण्डल में भी गवर्नर के अतिरिक्त जो कि सम्राट का प्रतिनिधित्व करता था एक या दो सदन होते थे। जिन प्रान्तों में दो सदन अर्थात व्यवस्थापिका-परिषद् तथा व्यवस्थापिका-सभा थे उनके नाम यह थे: बंगाल, मद्रास, बम्बई, युक्त प्रांत, बिहार तथा आसाम। बाकी पांच प्रांतों में केवल एक ही सभा थी तथा परिषद् नहीं थी। दोनों सदनों के चुनाव सीधे जनता द्वारा होते थे पर प्रत्येक वयस्क को मत देने का अधिकार न था। केवल साढ़े तीन करोड़ व्यक्ति मतदाता थे जो कि धनी होते थे। निर्वाचन साम्प्रदायिक निर्वाचन-गणों तथा पासंग आदि के सिद्धांत पर होता था। प्रथम सदन पांच वर्ष के लिए चुना जाता था पर गवर्नर उसके जीवन को जल्दी भी समाप्त कर सकता था। परिषद् के एक तिहाई सदस्य प्रति तीसरे वर्ष बदलते थे। दोनों सदन अपने सभापति तथा उपसभापति को स्वयं चुनते थे। वे मन्त्रियों सभापति, उपसभापति, सदस्यों आदि के वेतन भी नियत करते थे। शेष नियम केन्द्र के समान थे। दोनों सदनों के सदस्यों के स्थान निम्न प्रकार भरे जाते थे :

प्रान्तीय व्यवस्थापिका परिषदें

प्रान्त	कुल स्थान	हिंदू	मुस्लिम	यूरोपियन	भारतीय ईसाई	प्रथम सदन द्वारा	गवर्नर द्वारा
मद्रास	५४ से ५६	३५	७	१	३	:	८ से १०
बम्बई	२९ से ३०	२०	५	१	:	:	३ से ४
बंगाल	६३ से ६५	१०	१७	३	:	२७	६ से ८
युक्त प्रान्त	५८ से ६०	३४	१७	१	:	:	६ से ८
बिहार	२९ से ३०	९	४	१	:	१२	३ से ४
आसाम	२१ से २२	१०	६	२	:	:	३ से ४

प्रान्तीय व्यवस्थापिका सभायें

प्रान्त	कुल स्थान	कुल हिंदू	हरिजन	पिछड़ी जातियां (कबाइली)	सिख	मुस्लिम	ईसाई भारतीय	ईसाई यूरोपियन	आंग्ल भारतीय	व्यापारी	जमींदार	विश्वविद्यालय	श्रम	स्त्रियां हिंदू	स्त्रियां अन्य
मद्रास	२१५	१४६	३०	१	..	२८	८	३	२	६	६	१	६	६	२
बम्बई	१७५	११४	१५	१	..	२९	३	३	२	७	२	१	७	५	१
बंगाल	२५०	७८	३०	..	..	११७	२	११	३	१९	५	२	८	२	३
युक्त प्रांत	२२८	१४०	२०	..	..	६४	२	२	१	३	६	१	३	४	२
पंजाब	१७५	४३	८	..	३१	८५	२	१	१	१	५	१	३	१	३
बिहार	१५२	८६	१५	७	..	३४	१	२	१	४	४	१	३	२	१
मध्य प्रांत	११२	८४	२०	१	..	१४	..	१	१	२	३	१	२	३	..
आसाम	१०८	४७	७	९	..	३४	१	१	..	११	..	..	४	१	..
सीमा प्रांत	५०	९	..	..	३	३६	..	..	..	..	२	..	..	..	..
उड़ीसा	६०	४४	६	५	..	४	१	..	..	१	२	..	१	२	..
सिंध	६०	१८	..	..	..	३३	..	२	..	२	२	..	१	१	१

प्रान्तों में भी अधिनियम बनाने की वही प्रणाली थी जो कि केन्द्र के व्यवस्थापक मंडल के विषय में बताई जा चुकी है।

२०. सदस्यों की योग्यता आदि

प्रान्तीय सदनों के सदस्य बनने के लिये व्यक्ति में निम्न बातें होनी चाहियें :

१. यदि सभा का सदन बनना चाहे तो वह २५ वर्ष से कम न होना चाहिये।

२. यदि परिषद् का सदस्य बनना चाहे तो वह ३० वर्ष का होना चाहिये।

३. धन सम्बन्धी विशेष नियमों के अनुसार भी अर्ह होना चाहिये।

४. किसी सरकारी नौकरी में नहीं होना चाहिये पर मंत्री हो सकता है।

५. पागल या दिवालिया नहीं होना चाहिये।

६. चुनाव के सम्बन्ध में किसी अपराध में दंडित न हुआ हो और चुनाव के सम्बन्ध में कभी नियमानुसार अपने चुनाव व्यय का हिसाब देने में न चूका हो।

७. दो वर्ष से अधिक दंड न भोगा हो या उस बात को ५ वर्ष हो चुके हों।

सदनों के सदस्यों के विशेषाधिकार :

१. वे सदन में कही गई किसी चीज के लिये किसी न्यायालय द्वारा दंडनीय न होंगे।

२. वे सदन के अधिवेशन के एक सप्ताह पहले से लेकर एक सप्ताह बाद तक किसी दिवानी मुकद्दमे के कारण कारागृह में नहीं भेजे जा सकते।

२१. पृथक किये हुए प्रदेश

यह वे प्रदेश थे जिन में अधिकतर आदिमवासी बसते थे। उन निवासियों को आधुनिक संस्कृति के प्रभाव में लाने से एक तो उनकी आत्मीयता का ह्रास होता है; दूसरे वे आधुनिक लोगों के शोषण का शिकार बनते हैं,

अतः उनको विशेषतः सांविधानिक प्रशासन से बाहर रखा गया था जिससे कि वे सीधे गवर्नरों तथा गवर्नर जनरल द्वारा शासित हों। आवश्यकता इस बात की थी कि उनको धीरे धीरे आधुनिक संस्कृति सिखाई जाती जिस से कि वे सदा वैज्ञानिकों तथा इतिहासकारों के लिये पुरातन संग्रहालय न बने रहें। (स्वतन्त्र भारत में भी इन आदिमवासियों के शासन के लिये विशेष उपबंध रखे गये हैं।)

२२. प्रान्तों में स्वराज्य का कार्यकाल

१६३५ के नये संविधान को भारतीयों ने पसन्द नहीं किया तथा पहली अप्रेल १६३७ को, जिस दिन से यह लागू हुआ, देश व्यापी हड़ताल तथा विरोध प्रदर्शन हुए।

इस संविधान के अन्तर्गत प्रान्तीय व्यवस्थापक मंडलों के चुनावों में राष्ट्रसभा ने ११ में से ६ प्रान्तों में बहुमत प्राप्त कर लिये तथा शेष ५ में भी पर्याप्त स्थान जीत लिये। जब राष्ट्रसभा को ६ प्रान्तों में मन्त्रिमंडल बनाने का निमन्त्रण मिला तो उसने यह शर्त रखी कि जब तक गवर्नर यह आश्वासन नहीं देंगे कि वे अपने विशेषाधिकारों का प्रयोग नहीं करेंगे तब तक राष्ट्रसभा मन्त्रिमंडल नहीं बनायेगी। इस पर गवर्नरों ने पहले तो अल्पमत वाले दलों के मन्त्रिमंडल बना लिये किन्तु वे तभी तक चल सकते थे जब तक कि सभाओं के अधिवेशन नहीं बुलाये जावें, अतः अन्त में अप्रत्यक्ष रूप से आश्वासन दे दिये गये। राष्ट्रसभा के मन्त्रिमंडल बनने पर उन्होंने कई सुधार किये तथा अपने दल के राजनैतिक बन्दियों को छोड़ दिया। गवर्नरों ने प्रायः अपने आश्वासन पूरे किये किन्तु रोड़ा प्रायः सरकारी अफसरों की ओर से अड़ता था। मन्त्रिगण उनके सहयोग के बिना अपना कार्य ठीक तरह चला नहीं सकते थे। अफसर सीधे भारत मन्त्री के थे तथा अपनी उन्नति, नियुक्ति, वेतन आदि के लिये उसी के आधीन थे। केवल कार्यक्षेत्र में वे गवर्नर या अंशतः मन्त्रियों के आधीन थे। इस अनुपम परिस्थिति में उन पर मन्त्रियों का पूर्णतः अंकुश नहीं था।

चतुर्थ अध्याय

सांविधानिक वार्ता

१. अवैधानिक शासन तथा असहयोग

१६३६ में विश्वयुद्ध आरम्भ होने पर गवर्नर जनरल ने प्रान्तीय मन्त्रि-मण्डलों या केन्द्रीय व्यवस्थापक मण्डल से बिना पूछे ही भारत की ओर से जर्मनी आदि के विरुद्ध युद्ध की घोषणा कर दी। इस पर राष्ट्रसभा ने अपने मन्त्रि-मण्डलों से जो आठ प्रान्तों में स्थापित थे, त्यागपत्र दिलवा दिये तथा गवर्नरों ने संविधान की धारा ६३ के अनुसार उन प्रान्तों में सांविधानिक शासन का अन्त कर के सारी कार्यशक्ति अपने हाथ में ले ली। उधर केन्द्र में संघीय योजना पूर्ण न होने के कारण १६१६ के संविधान के अनुसार ही कार्य चल रहा था। अतः भारत भर में सांविधानिक शासन समाप्त हो गया। ब्रिटिश संसद् ने भी संविधान में कुछ परिवर्तन करके गवर्नर जनरल की अधिनियम बनाने की शक्ति को बढ़ा दिया। उधर मुस्लिम लीग ने १६४० से पाकिस्तान की मांग आरम्भ कर दी जिसका आशय यह था कि जिन भागों में मुस्लिम बहुमत था उनको आत्मनिर्णय के सिद्धान्त पर भारत से पृथक करके एक नवीन देश पाकिस्तान नाम से बना दिया जाये। यह मांग साम्प्रदायिक निर्वाचनों आदि का तर्कसंगत परिणाम था और अंग्रेजों का इसे समर्थन प्राप्त था। इस मांग ने आगे की भारतीय राजनीति पर बड़ा प्रभाव डाला।

२. क्रिप्स योजना

१९४२ के आरम्भ में भारत की परिस्थिति बड़ी विषम थी। उधर जापान हमारे द्वार पर था, इधर सरकार और जनता में असहयोग था। राष्ट्र सभा ब्रिटेन का इस शर्त पर साथ देने को उद्यत थी कि वह भारत को पूर्ण स्वतन्त्रता दे दे या युद्धोपरान्त देने की घोषणा करे तथा अवैधानिक शासन को समाप्त करे। ब्रिटिश मन्त्रिमण्डल ने अपना एक प्रतिनिधि सर स्टैफोर्ड क्रिप्स भारत भेजा जिसने राजनीतिक दलों के समक्ष कुछ प्रस्ताव रखे। इनके अनुसार युद्ध के पश्चात भारत में साम्प्रदायिक निर्वाचन के आधार पर ही एक संविधान सभा चुनी जानी थी जो भारत संघ का संविधान बनाती। इसमें प्रत्येक प्रान्त और देशी राज्य को यह स्वतन्त्रता थी कि वह उस भारत-संघ में मिले या न मिले। इसका आशय भारत के ५६२ देशी राज्यों तथा कुछ मुस्लिम प्रान्तों को भारत से पृथक होने का अधिकार देना था जिससे कि देश की एकता तथा शक्ति छिन्न भिन्न हो जाये। यह एक धूर्त चाल थी और घातक प्रस्ताव थे। मुसलमानों को इससे पाकिस्तान ही नहीं पर उससे भी अधिक मिलता क्योंकि वे न्याय से केवल सिंध तथा सीमाप्रान्त में ही बहुमत में थे। उधर बंगाल और पंजाब में ऐसी अवस्था थी कि पूर्वी बंगाल तथा पश्चिमी पंजाब में हिन्दू बहुमत था पर पूर्ण प्रान्तों को साथ लेने पर पंजाब तथा बंगाल दोनों प्रान्त थोड़े थोड़े बहुमतों और साम्प्रदायिक निर्वाचनों के कारण पाकिस्तान में जा सकते थे। मुस्लिम लीग भी यही चाहती थी पर इससे राष्ट्र के हित के साथ घोर अन्याय होता तथा देश का नाश हो जाता।

देशी राज्यों के विषय में सदा यही समस्या रही थी कि उनकी जनता भारत में मिलना चाहती थी और जनतन्त्रवाद के लिये आन्दोलन कर रही थी किन्तु निरंकुश नरेश १९३५ की संघीय योजना में सम्मिलित नहीं होते थे और अंग्रेजों के संकेत पर चलते थे। प्रस्तावित संविधान सभा में प्रान्तों के निर्वाचित प्रतिनिधि आते, पर देशी राज्यों की जनता के प्रतिनिधियों के स्थान पर नरेशों के मनोनीत प्रतिनिधि आते जो कि प्रगति में रोडा अटकाते तथा संघ योजना को असफल बनाते। इन कारणों से और कई अन्य कमियों के कारण क्रिप्स योजना भारत को अस्वीकार्य थी। क्रिप्स अपनी योजना को लेकर लौट गया पर भारत में विद्रोह की भावना भड़क उठी। ८ अगस्त १९४२ को

राष्ट्रसभा के सारे नेता पकड़ लिये गये और आगामी मासों में भारत भर में विद्रोह तथा दमन का चक्र चला।

क्रिप्स लीला से एक ही लाभ हुआ कि ब्रिटेन ने आगामी संविधान भारतीयों की निर्वाचित संविधान सभा द्वारा बनवाने का सिद्धान्त मान लिया, किन्तु वह अधिराज्यपद से अधिक कुछ भी देने के लिये तैयार न था। उधर राष्ट्रसभा पूर्ण स्वतन्त्रता मांग रही थी।

३. वेवल प्रयास : राष्ट्रीय सरकार का प्रश्न

युद्ध के अन्त में १५ जून १९४५ को राष्ट्रसभा के नेता छोड़ दिये गये और वायसराय लार्ड वेवल ने शिमला में एक सम्मेलन किया जिसमें राष्ट्रसभा तथा मुस्लिम लीग के नेताओं को आमन्त्रित किया। उस सम्मेलन में केन्द्र में एक राष्ट्रीय सरकार बनाने के प्रश्न पर विचार किया गया जिसमें लीग तथा राष्ट्र सभा के बराबर प्रतिनिधि एवं कुछ अन्य जातियों के प्रतिनिधि लेने का प्रस्ताव था। यह बहुत अनुचित तो था ही क्योंकि मुस्लिम जनसंख्या में १।४ हैं, अतः उन्हें ३।४ अमुस्लिमों के बराबर प्रतिनिधित्व देना अन्याय था। इसके अतिरिक्त राष्ट्रसभा यह दावा करती थी कि वह हिन्दू, मुसलमान, सिख, पारसी, ईसाई सबकी प्रतिनिधि है अतः वह अपने प्रतिनिधियों में सबको रखना चाहती थी। यद्यपि राष्ट्रसभा साम्प्रदायिक दल नहीं थी फिर भी राष्ट्रसभा उपर्युक्त अनुचित शर्त भी मान ही गई, किन्तु लीग इस से भी संतुष्ठ नहीं हुई। वह वास्तव में अपने आप को मुसलमानों की एकमात्र प्रतिनिधि और राष्ट्रसभा को हिन्दु संस्था सिद्ध करना चाहती थी, अतः उस ने यह शर्त रख दी कि राष्ट्रसभा अपने प्रतिनिधियों में कोई मुसलमान न रखे। राष्ट्रसभा ने अपने प्रतिनिधियों में एक राष्ट्रीय मुस्लिम को रखना चाहा पर लीग ने उसे न माना और इस पर सारी वार्ता भंग हो गई। साम्प्रदायिक विशेषाधिकारों की नीति अब पराकाष्ठा तक पहुंच गई थी।

४. नये निर्वाचन

अब यह देखने के लिये कि राष्ट्रसभा तथा लीग में से कौन किस की प्रतिनिधि है, प्रान्तीय सभाओं के निर्वाचनों की आज्ञा दी गई। यद्यपि यह निर्वाचन दस वर्ष पश्चात हुए थे पर परिणाम वही रहा। क्यों कि

साम्प्रदायिक मताधिकार था अतः लीग को पाकिस्तान के नाम पर अधिकांश मुस्लिम स्थान मिल गये। उधर राष्ट्रसभा को कुछ मुस्लिम स्थान तथा लगभग सारे हिन्दु स्थान मिल गये।

५. ब्रिटेन में श्रम सरकार की स्थापना तथा भारत को स्वतन्त्रता का वचन

इधर भारत में चुनाव हुए पर उस से अधिक महत्वपूर्ण चुनाव ब्रिटेन में हुए जिनके फलस्वरूप वहां रूढिवादी दल के स्थान पर श्रमदल की सरकार बन गई। इस सरकार की नीति भारत के प्रति उदार थी और अन्तराष्ट्रीय परिस्थितियों ने भी उसे बाध्य कर दिया कि वह अब साम्राज्य का मोह त्याग दे। सर्वप्रथम श्रम सरकार ने संसद का एक शिष्ट मण्डल भारत की परिस्थितियों का अध्ययन करने के लिये भेजा और उसके यह रिपोर्ट देने पर कि भारत में स्वातन्त्र्य के भाव पूर्णतः जागृत हो चुके हैं प्रधान मन्त्री एटली ने लार्ड पैथिक लारंस, सर स्टेफोर्ड क्रिप्स तथा सर एलक्जेंडर के एक प्रतिनिधि मण्डल को भारतीय दलों से वार्ता करने के लिये भारत भेजने की घोषणा की। उन्हें पर्याप्त अधिकार प्राप्त थे। प्रधान मन्त्री ने १५ मार्च १६४६ की ऐतिहासिक घोषणा में कहा था कि:

"मेरे सहयोगी भारत को यथासम्भव शीघ्रातिशीघ्र पूर्णतः स्वतन्त्रता प्राप्त करने के कार्य में सहायता करने के निमित्त अपना अधिकाधिक प्रयत्न करने की इच्छा से भारत जा रहे हैं। वर्तमान शासन के स्थान पर किस प्रकार का शासन बने, यह तो भारत को ही निर्णय करना है, किन्तु उसके यह निर्णय करने के लिये व्यवस्था स्थापित करने में सहायता देना ही हमारी आकांक्षा है।

"मुझे आशा है कि भारतवासी ब्रिटिश राष्ट्र मण्डल में ही रहने का निर्णय करेंगे। मुझे विश्वास है कि उन्हें इसमें बहुत लाभ दिखेगा।... किन्तु यदि भारत इस प्रकार का निश्चय करे तो वह अपनी स्वतन्त्र इच्छा से ही करेगा। ब्रिटिश राष्ट्र मण्डल तथा साम्राज्य बाह्य दवाब की शृंखलाओं से जुड़ा हुआ नहीं हैं। यदि वह स्वतन्त्र रहने का भी निर्णय करे तो हमारे विचार में उसे ऐसा करने का अधिकार है। हमारा यह कार्य होगा कि

हम उस परिवर्तन को यथासम्भव साध्य तथा संघर्षरहित बनाने में सहायता दें।"

६. मंत्री प्रतिनिधि मंडल का प्रथम सुझाव

उपर्युक्त शब्दों में सचाई थी। भारत में आकर प्रतिनिधि मण्डल ने पहले तो सारे राजनैतिक दलों तथा व्यक्तियों के विचार सुने। फिर यह निश्चय किया कि शिमला में एक सम्मेलन किया जाये जिस में यह सब सिद्धान्त विचारार्थ रखने का संकेत था:

"ब्रिटिश भारत का भावी सांविधानिक ढांचा इस प्रकार का हो :

क. संघीय सरकार निम्न विषयों को संभाले : सुरक्षा, विदेशी नीति तथा संचार (Communication)।

ख. प्रान्तों के दो वर्ग हों, एक तो मुख्यतः मुस्लिम प्रान्तों का और दूसरा मुख्यतः हिन्दू प्रान्तों का, जो ऐसे अन्य विषयों को संभालें जो कि उस वर्ग के प्रान्त सम्मलित रूप से रखना चाहें। बाकी विषय प्रान्तीय सरकारें संभालें तथा उनको शेष सार्वभौम अधिकार प्राप्त हों।

ग. यह विचार है कि देशी राज्य इस ढाँचे में उनसे तय होने वाली शर्तों पर उचित स्थान पायेंगे।"

२८ अप्रेल १९४६ को राष्ट्र सभा के तत्कालीन प्रधान मौलाना आज़ाद ने लार्ड पैथिक लौरेंस को यह उत्तर दिया :

"मैं आपके २७ अप्रेल के पत्र के लिये धन्यवाद देता हूँ। मैंने राष्ट्रसभा की कार्यकारिणी के अपने सहयोगों से आप के प्रस्तावों के विषय में विचार विमर्श किया है और उन्होंने मुझे आपको यह सूचित करने के लिये कहा है कि वे भारत के भविष्य के विषय में मुस्लिम लीग या किसी अन्य संस्था से, किसी भी बात पर, पूर्णतः विचार करने के लिये सदा तैयार हैं। किन्तु मैं यह कहना आवश्यक समझता हूँ कि जिन मूल सिद्धान्तों की आपने चर्चा की है उन पर कुछ स्पष्टीकरण तथा व्याख्या की आवश्यकता है जिससे कि समझने में कोई त्रुटि न हो।

"जैसा आप को विदित है हमने स्वशासित इकाइयों के एक संघ की योजना स्वीकार की है। यह आवश्यक है कि ऐसा संघ कुछ आवश्यक विषयों को संभाले जिनमें सुरक्षा और तत्संबन्धी विषय अधिक महत्वपूर्ण हैं। यह संघ जीवित होना चाहिये तथा इसके पास कार्यपालिका और व्यवस्थापिका की व्यवस्था होनी चाहिये। इन विषयों के लिये धन चाहिये एवं उसे अपने अधिकार से यह धन संग्रह करने की भी शक्ति होनी चाहिये। इन शक्तियों और कार्यों के बिना यह निर्बल तथा असंयुक्त होगा जिससे सुरक्षा और प्रगति को हानि होगी। अतः विदेश विभाग, सुरक्षा तथा संचार के अतिरिक्त यह भी विषय होने चाहिये : धन, मुद्रा, आयात-निर्यात तथा ऐसे विषय जो ध्यान से सोचने पर इन से घनिष्ट रूप में सम्बन्धित पाये जायें।

"आप का मुख्यतः हिन्दू तथा मुख्यतः मुस्लिम प्रान्तों का उल्लेख स्पष्ट नहीं है। मुख्यतः मुस्लिम प्रान्त तो केवल सीमाप्रान्त, सिन्ध तथा बलूचिस्तान ही हैं। बगाल और पंजाब में मुसलमानों का केवल बहुमत है। हम संघ के अन्तर्गत प्रांतों के वर्ग बनाना बुरा समझते हैं विशेषतः धार्मिक या साम्प्रदायिक आधार पर। यह भी दिखता है कि आपने किसी वर्ग विशेष में सम्मिलित होने या न होने के विषय में कोई स्वतन्त्रता नहीं दी है। यह जरा भी आवश्यक नहीं है कि कोई प्रान्त किसी वर्ग विशेष में मिलना चाहे। किसी अवस्था में यह सर्वथा गलत होगा कि किसी प्रान्त को अपनी इच्छा के विरुद्ध चलने के लिये बाध्य किया जाये। यद्यपि हम इस बात से सहमत हैं कि प्रांतों को शेष विषयों में पूर्ण सत्ता मिलनी चाहिये, हमने यह भी कहा है कि प्रान्तों को इस बात के लिये स्वतन्त्र रखा जाये कि वे अपनी इच्छा से संघ को अधिक विषय अर्पित कर सकें। संघ के अन्दर कोई उपसंघ बनने से संघीय केन्द्र की शक्ति कम होगी और यह वैसे भी गलत होगा। अतः हम इस प्रकार के विकास को नहीं चाहते।

"भारतीय राज्यों के विषय में हम यह स्पष्ट कर देना चाहते हैं कि हम यह आवश्यक समझते हैं कि वे उपर्युक्त सामान्य विषयों के सम्बन्ध में संघ के भाग होने चाहियें। वे किस प्रकार संघ में आयेंगे इस पर बाद में पूरी तरह सोचा जा सकता है।

"आपने कुछ मूल सिद्धांतों के विषय में लिखा है पर आधारभूत प्रश्न की, जो हमारे सामने है—अर्थात् पूर्ण स्वतन्त्रता और इसके परिणाम

स्वरूप भारत से अंग्रेजी सेना का निकालना—उसकी कहीं चर्चा नहीं है। इसी आधार पर हम भारत के भविष्य या किसी अन्तरिम प्रबन्ध पर विचार कर सकते हैं।"

तत्पश्चात इस पत्र में राष्ट्रसभा ने अपने चार प्रतिनिधि मौलाना आजाद, पं० नेहरू, सरदार पटेल तथा खान अब्दुल गफ्फार खां के नाम लिखे थे। उपर्युक्त पत्र से यह प्रकट है कि राष्ट्रसभा निर्बल संघ केन्द्र नहीं चाहती थी।

मुस्लिम लीग ने अपने चार मुसलमान प्रतिनिधियों के नाम लिखते हुये अपना एक प्रस्ताव भेजा जिसमें यह मांगे की गई थीं कि :

"बंगाल, आसाम, पंजाब, सीमा प्रांत, सिंध तथा बलूचिस्तान को मिलाकर एक सार्वभौम-सत्ता-प्राप्त स्वतन्त्र पाकिस्तान बनाया जाये तथा हिन्दुस्तान एवं पाकिस्तान के संविधान बनाने के लिये वहां के निवासियों की दो भिन्न भिन्न संविधान सभायें बनें।

यह मांगे पूर्णतः अनुचित थीं क्यों कि आसाम, आधा पंजाब एवं आधा बंगाल हिन्दू बाहुल्य प्रदेश थे तथा सीमाप्रांत और पंजाब के व्यवस्थापक मंडलों में भी लीग का बहुमत नहीं था। सीमाप्रांत में तो राष्ट्रसभा का मंत्रिमण्डल था और पंजाब में एकता दल (Unionist Party) का शासन था।

७. शिमला सम्मेलन

५ मई १९४६ को शिमला सम्मेलन में अंग्रेजों ने यह बात मान ली कि वार्ता का आधार पूर्ण स्वतन्त्रता होगा और ब्रिटेन तथा भारत के सम्बन्ध संविधान सभा निश्चित करेगी। इस कारण राष्ट्रसभा के अध्यक्ष ने ६ मई के पत्र में लिखा :

"संविधान सभा स्वतन्त्र भारतीय राष्ट्र की इच्छा की प्रतिनिधि होगी तथा उसे पूरी करेगी। वह किसी पूर्व प्रबन्ध से नहीं बंधेगी।

किंतु संविधान बनने में पर्याप्त समय लगता, उस समय तक अंग्रेजी अवैधानिक शासन सह्य नहीं हो सकता था तथा वह संविधान निर्माण में बाधा भी बन सकता था अतः राष्ट्रसभा ने लिखा कि 'इसके पूर्व एक अन्तरिम सरकार (Interim) बननी चाहिये जो यथासम्भव स्वतन्त्र भारत

की सरकार के समान कार्य करे तथा परिवर्तन काल के लिये सारे प्रबन्ध करे।" सम्मेलन में प्रांतीय वर्गों के लिये व्यवस्थापक मंडल और कार्यपालिका बनाने के विषय में भी बात हुई थी उसका विरोध करते हुये प्रधान ने लिखा "इस का अर्थ होगा उपसंघों का निर्माण, यदि अधिक नहीं, और हमने आपको पहले ही बता दिया है कि हम इसको स्वीकार नहीं कर सकते। इसका परिणाम यह होगा कि व्यवस्थापिका तथा कार्यपालिका प्रबन्ध के तीन स्तर बन जायेंगे जो अप्रगतिशील तथा असंयुक्त होंगे जिससे निरन्तर संघर्ष होगा। किसी अन्य देश में ऐसा प्रबन्ध नहीं सुना।"

देश के बटवारे के विषय में लीग के प्रस्ताव पर राष्ट्रसभा के प्रधान ने लिखा था कि 'सम्मेलन को भारत विभाजन के किसी प्रस्ताव पर विचार करने का अधिकार नहीं है। यदि विभाजन होना है तो विद्यमान शासकों के बिना ही संविधान सभा यह निर्णय करेगी।"

लीग और राष्ट्रसभा के या हिन्दू और मुसलमानों के समान संख्या में सदस्य लेने के 'समता' प्रस्ताव को लीग ने सरकार एवं व्यवस्थापक मण्डल दोनों में लागू करना चाहा था। यह सर्वथा अन्यायपूर्ण था कि १।४ जनसंख्या वाली जाति ३।४ की बराबरी करे। इसका विरोध करते हुये राष्ट्रसभा ने लिखा था "हम यह अनुभव करते हैं कि प्रत्येक वर्ग और जाति के मस्तिष्क से संदेह और आशंका निकालने के लिये सब कुछ सम्भव प्रयत्न करने चाहिये पर इस के लिये किसी अवास्तविक मार्ग को नहीं अपनाना चाहिये जो कि जनतन्त्रवाद के मूल सिद्धान्त के विरुद्ध जाये, क्यों कि हम जनतन्त्रवाद पर ही अपना संविधान बनाने की आशा करते हैं।"

८. मंत्री प्रतिनिधि मंडल की नवमसूत्री योजना

८ मई को प्रतिनिधि मण्डल ने दोनों दलों को प्रसन्न करने के लिये एक नवम सूत्री योजना बनाई जो इस प्रकार थी:

१. एक अखिल भारतीय संघीय सरकार व्यवस्थापक--मण्डल सहित होगी जो वैदेशिक नीति, सुरक्षा, संचार एवं मूल अधिकारों को संभालेगी और उसे इन विषयों के लिये धन संग्रह करने को आवश्यक शक्ति होगी।

२. शेष सारी शक्ति प्रान्तों में निहित होंगी।

३. प्रान्तों के वर्ग बन सकते हैं तथा वे वर्ग यह निर्णय करेंगे कि कौन से प्रान्तीय विषय सामान्य रूप से वर्गों में निहित हों।

४. वर्ग अपनी कार्यपालिका तथा व्यवस्थापक मण्डल बना सकते हैं।

५. संघ के व्यवस्थापक मंडल में मुस्लिम बहुमत प्रान्तों और हिन्दू प्रान्तों के बराबर प्रातिनिधि होंगे चाहे वर्ग बने हों यह नहीं। देशी राज्यों के भी प्रतिनिधि साथ होंगे।

६. संघ की सरकार भी व्यवस्थापक मण्डल के समान संतुलन वाली ही होगी।

७. दस दस वर्ष बाद कोई भी प्रान्त संविधान में संशोधन की मांग कर सकता है। इस के लिये पहली संविधान सभा के समान आधार पर ही दूसरी संविधान सभा बनेगी।

८. उपर्युक्त आधार पर संविधान निर्माण करने वाली सभा निम्न प्रकार बनेगी:

क. प्रत्येक प्रान्तीय धारा सभा से प्रतिनिधि चुने जायेंगे जो कि प्रत्येक दल की शक्ति के अनुसार उसकी संख्या का १० वाँ भाग होंगे।

ख. ब्रिटिश भारत के प्रतिनिधियों के अनुपात से राज्यों के प्रतिनिधि भी जनसंख्या के आधार पर बुलाये जायेंगे।

ग. इस प्रकार बनी हुई संविधान सभा यथा सम्भव शीघ्र ही नई देहली बैठेगी।

घ. प्रारम्भिक बैठक में कार्यक्रम बनाने के बाद यह तीन भागों में विभाजित हो जायेगी, एक हिन्दू बहुमत प्रान्तों के लिये दूसरे मुस्लिम बहुमत प्रान्तों के लिये और तीसरे देशी राज्यों के लिये।

ङ. प्रथम दो भाग फिर पृथकतः समवेत होकर प्रान्तीय संविधानों का या उनकी इच्छा हो तो वर्गीय संविधान का निर्णय करेंगे।

च. जब यह हो चुकेगा तब किसी प्रान्त को यह छूट होगी कि वह अपने पुराने वर्ग में से हट कर नये में चला जाये या अलग रहे।

छ. तत्पश्चात तीनों भाग एक साथ मिलकर उपर्युक्त १ से ७ कण्डिकाओं के मान्य आधार पर संघ का संविधान बनायेंगे।

ज. साम्प्रदायिक प्रश्न पर प्रभाव डालने वाला कोई बड़ा प्रश्न संघीय संविधान सभा में तब तक स्वीकृत न माना जायेगा जब तक कि दोनों मुख्य जातियों के बहुमत उसे स्वीकार न करें।

६. वायसराय शीघ्र ही उपर्युक्त संविधान-सभा का निर्माण करेगा।

ए—भारत की प्रतिक्रिया

उपर्युक्त योजना में लीग को वर्गीकरण के बहाने पाकिस्तान मिल जाता और निर्बल केन्द्र में भी वे पूर्णतः शक्तिशाली होते क्यों कि उन की इच्छा के बिना कुछ नहीं हो सकता था [देखिये ८ (ज)] तथा उन्हें बाकी जातियों के बराबर स्थान मिल जाते जो कि १६३५ के संविधान के पासंग (वजन) से भी अधिक अन्यायपूर्ण था। इसके अतिरिक्त ऊपर लिखित नियम बनाने का अर्थ भारत की संविधान सभा को स्वतन्त्रतापूर्वक कार्य करने से रोकना था। इतने पर भी लीग वाले प्रसन्न नहीं थे वे चाहते थे कि प्रान्तों को वर्गों से निकलने की स्वतन्त्रता न हो और केन्द्र जितना निर्बल किया जा सके उतना बने जिस से कि अन्त में वह समाप्त ही हो जाये। राष्ट्रसभा के प्रधान मौलाना आजाद ने ६ मई को निम्न लिखित पत्र लिखा :

"........अपने पिछले पत्रों में मैंने शक्तिशाली जीवित संघ की आवश्यकता पर बल दिया था। मैंने यह भी लिखा था कि हम प्रस्तावित प्रणाली से प्रान्तों के वर्ग या उपसंघ बनाने को स्वीकार नहीं करते तथा व्यवस्थापक मण्डलों या कार्यपालिका में सर्वथा असम वर्गों में समता करने के सर्वथा विरुद्ध हैं। हम प्रान्तों के या अन्य इकाइयों के सहयोग के मार्ग में नहीं आना चाहते परन्तु यह पूर्ण स्वतन्त्रता से ही होना चाहिये।

"हम यह मानते हैं कि आप के रखे हुये प्रस्ताव संविधान सभा की स्वतन्त्र इच्छा को सीमित करने के अभिप्राय से बनाये गये हैं। हम नहीं समझते कि ऐसा कैसे हो सकता है।......कोई निर्णय जो अभी इस मामले पर किया जाये वह हो सकता है कि उन निर्णयों के विपरीत हो जो कि हम या संविधान सभा अन्य मामलों पर करना चाहें। केवल एक ही उचित मार्ग हमें दिखता है कि एक संविधान सभा बने जिसे अल्पसंख्यकों के अधिकारों की रक्षा के लिये कुछ प्रतिबन्धों के अतिरिक्त

अपना संविधान बनाने की सर्वांश में स्वतन्त्रता हो। अतएव हम इस बात से सहमत हो सकते हैं कि कोई बड़ा साम्प्रदायिक प्रश्न सम्बन्धित दलों की सहमति से या जहां इस प्रकार का समझौता न हो सके वहां पंच निर्णय द्वारा निबटे।

"आप के भेजे हुए प्रस्तावों से यह भी प्रतीत होता है कि भिन्न भिन्न वर्गों के लिये दो या तीन भिन्न भिन्न संविधान बनें और वे संविधान उन असंयुक्त वर्गों पर आश्रित एक कृत्रिम सामान्य ढांचे द्वारा मिलाये जायें।

"आरम्भ में प्रत्येक प्रान्त को एक विशेष वर्ग में मिलने के लिये अनिवार्यता है चाहे वह मिलना चाहे या नहीं। सीमाप्रान्त को जो कि स्पष्टतः राष्ट्र सभाई प्रान्त है कांग्रेस के विरोधी किसी वर्ग में मिलने को क्यों बाध्य किया जाये।"

आगे राष्ट्र सभा के प्रधान ने लिखा था :

"अब मैं आपके स्मरण पत्र के कुछ विषयों पर विचार करूंगा तथा उनके विषय में कुछ अपने सुझाव रखूंगा" :

संख्या १ : हम ने यह देखा है कि आप ने संघ को अपने विषयों के लिये धन प्राप्त करने की आवश्यक शक्ति दी है। हम समझते हैं कि यह स्पष्ट हो जाना चाहिये कि संघ को अपने अधिकार से कर उगाहने की शक्ति होगी। इस के अतिरिक्त मुद्रा और आयात निर्यात भी संघीय विषयों में सम्मिलित होने ही चाहियें, तथा अन्य विषय भी जो कि ध्यान से सोचने पर इन से घनिष्ट रूप से सम्बधित पाये जायें। एक अन्य आवश्यक तथा अनिवार्य संघीय विषय भी है वह है 'योजना निर्माण'। योजना का कार्य ठीक तरह केन्द्र में ही हो सकता है, यद्यपि प्रान्त एवं इकाइयां अपने अपने प्रदेशों में इसको कार्यान्वित करेंगे।

संघ को यह भी शक्ति होनी चाहिये कि संविधान के असफल होने पर या गम्भीर सार्वजनिक संकट की स्थिति में वह आवश्यक कार्यवाही कर सके।

संख्या ५ व ६ : हम कार्यपालिका और व्यवस्थापिका में असम वर्गों के बीच प्रस्तावित समता के सर्वथा विरुद्ध हैं। यह अन्यायपूर्ण

है तथा संघर्ष उत्पन्न करेगी। ऐसे उपबन्ध में संघर्ष का बीज है और स्वतन्त्र विकास के लिये नाशकारी है। यदि इस विषय पर या अन्य ऐसे किसी विषय पर समझौता नहीं हो तो हम इसे पंच निर्णय पर छोड़ने के लिए उद्यत हैं।

संख्या ७ : हम यह सुझाव मानने के लिये तैयार हैं कि संविधान पर दस वर्ष बाद पुनर्विचार का उपबन्ध हो।......पर यह भी कहा गया है कि पुनर्विचार करने के लिये इसी संविधान सभा के समान आधार वाली ही संस्था हो। अब तो विशेष परिस्थिति के कारण ऐसा हो रहा है। हमें आशा है कि भारत का संविधान वयस्क मताधिकार पर आधारित होगा। दस वर्ष पश्चात का भारत किसी गम्भीर प्रश्न पर वयस्क मताधिकार से कम किसी प्रकार से विचार कर के संतुष्ट न होगा।

संख्या ८—क : हम यह सुझाव रखना चाहते हैं कि न्यायपूर्ण और उचित निर्वाचन का तरीका जो सब दलों के लिये न्यायपूर्ण है वह आनुपातिक प्रतिनिधित्व का है जिस से प्रत्येक को एक मत देने का अधिकार हो। यह याद रखना चाहिये कि प्रान्तीय धारा सभाओं में इस समय के निर्वाचन के आधार के कारण अल्पसंख्यकों का पलड़ा बहुत झुका हुआ है।

$\frac{1}{10}$ का अनुपात भी बहुत कम है। इस से संविधान सभा में कदाचित २०० से अधिक सदस्य नहीं होंगे। हम चाहते हैं कि प्रान्तीय धारा सभाओं के $\frac{1}{5}$ सदस्य संविधानसभा में आयें।

संख्या ८—ख : यह अस्पष्ट है पर इस समय हम इसको नहीं लेते।

संख्या ८—घ, ङ, च, छ : मैंने इन के विषय में पहले ही लिख दिया है। हमारे विचार में इन वर्गों का निर्माण तथा प्रस्तावित कार्य प्रणाली दोनों ही असंगत एवं अवांछनीय हैं। यदि प्रान्त चाहें तो हम वर्गीकरण को अनुचित नहीं बताते। पर यह विषय संविधान सभा द्वारा निर्णय करने के लिये छोड़ देना चाहिये। संविधान का निर्णय और निर्माण संघ से आरम्भ होना चाहिये। इस में प्रान्तों और अन्य इकाइयों के लिये कुछ सामान्य उपबन्ध होने चाहियें। प्रान्त इनको बढ़ा सकते हैं।

संख्या ८ (ज) : आज की परिस्थिति में हम इस प्रकार की चीज मानने के लिये उद्यत हैं। समझौता न होने पर पंच-निर्णय होना चाहिये।

९ मई को सम्मेलन की बैठक में राष्ट्रसभा की ओर से पंडित नेहरू ने प्रस्ताव रखा कि दोनो दलों के झगड़े निपटाने के लिये एक पंच चुनना चाहिये। लीग ने उस समय तो इस प्रस्ताव को स्वीकार कर लिया परन्तु दूसरे ही दिन उससे इन्कार कर दिया।

१०. लीग और राष्ट्रसभा के सुझाव

१२ मई को फिर लीग ने अपने नवीन सुझाव भेजे। राष्ट्रसभा ने उनका उत्तर दिया तथा अपने सुझाव भी रखे। हम पाठकों की सुविधा के लिये लीग के सुझाव और राष्ट्रसभा का उत्तर नीचे साथ साथ देते हैं। इन के पश्चात १६ मई को मन्त्री प्रतिनिधिमण्डल ने अपने अंतिम सुझाव रखे थे।

मुस्लिम लीग के सुझाव

१. छै मुस्लिम प्रांत (पंजाब, सीमा प्रांत, बलूचिस्तान, सिंध, बंगाल तथा आसाम) एक वर्ग में एकत्रित कर दिये जायें जो विदेशी नीति, सुरक्षा तथा संघ के लिये आवश्यक संचार के अतिरिक्त सब विषयों को संभालेंगे। इन तीन विषयों पर हिन्दू प्रांतों और मुस्लिम प्रांतों की संविधान सभाएं साथ बैठकर विचार करेंगी।

राष्ट्रसभा का उत्तर

१. उचित प्रणाली यह है कि एक ही संविधान सभा सारे भारत के लिए बने और बाद में यदि सम्बन्धित प्रान्त चाहे तो वर्ग बना सकते हैं। पर यह प्रान्तों पर छोड़ देना चाहिये कि यदि वे वर्ग में कार्य करना चाहें तो उन्हें ऐसा करने की तथा इसके लिए अपना संविधान बनाने की स्वतन्त्रता है।

किसी अवस्था में भी कथित वर्ग में आसाम को कोई स्थान नहीं है तथा, निर्वाचनों से जैसे प्रकट है, सीमाप्रांत भी इस प्रस्ताव के विरुद्ध है।

२. उपर्युक्त ६ मुस्लिम प्रांतों के लिये पृथक संविधान सभा होगी जो कि वर्ग और प्रांतों के संविधान बनायेगी और यह निर्णय करेगी कि कौन से विषय प्रांतीय हों तथा कौन से केन्द्रीय (पाकिस्तान संघ के) होंगे। शेष सार्वभौमिक सत्ता प्रान्तों में निहित होगी।

२. हम केन्द्रीय विषयों के अतिरिक्त अन्य शेष सत्ता प्रान्तों में रखने को तैयार हैं। वे उसका अपनी इच्छानुसार प्रयोग कर सकते हैं तथा वर्ग भी बना सकते हैं। ऐसे वर्ग की अन्तिम रूपरेखा क्या होगी यह अभी निश्चित नहीं हो सकता। यह बात सम्बन्धित प्रान्तों के प्रतिनिधियों पर छोड़ देनी चाहिये।

३. संविधान सभा के लिये प्रतिनिधियों के निर्वाचन की प्रणाली ऐसी होगी कि पाकिस्तान वर्ग के प्रत्येक प्रान्त की भिन्न-भिन्न जातियों को अपनी जनसंख्या के अनुपात से उचित प्रतिमिधित्व मिले।

३. हम ने यह सुझाया है कि निर्वाचन की सर्वोत्तम प्रणाली 'प्रत्येक के लिये एक मत' के आधार पर होनी चाहिये। इससे प्रत्येक जाति को व्यवस्थापिका सभाओं में इस समय के प्रतिनिधित्व के अनुपात से स्थान मिल सकेंगे। हमें जनसंख्या के आधार पर चुनाव में भी कोई विशेष आपत्ति नहीं है पर प्रान्तों में वजन होने से इसमें कठिनाई होगी। जो सिद्धान्त मान्य होगा वह सब प्रान्तों में लागू होगा।

४. प्रान्तों और पाकिस्तान संघीय सरकार का संविधान बनाने के पश्चात् कोई भी प्रान्त बाहर निकल सकता है किन्तु उस प्रान्त की जनता की सम्मति लेनी होगी कि वे बाहर निकलना चाहते हैं या नहीं।

४. किसी प्रांत के लिये बाहर निकलने की आवश्यकता ही नहीं है। क्योंकि वर्ग में सम्मिलित होने से पहले उसकी सहमति आवश्यक है।

५. संयुक्त संविधान सभा में यह निर्णय होगा कि संघ का व्यवस्थापक मण्डल होना चाहिये या

५. हम इसे आवश्यक समझते हैं कि संघ के लिये व्यवस्थापक मंडल हो तथा उसे कर द्वारा अपना धन

नहीं। संघ को धन देने की प्रणाली भी तभी निश्चित होनी चाहिये, पर उसे कर लगाने की तो अनुमति होनी ही नहीं चाहिये।

संग्रह करने की शक्ति हो।

६. संघीय कार्यपालिका में तथा यदि व्यवस्थापक मण्डल बने तो उस में भी दोनों प्रांतीय वर्गों को प्रतिनिधित्व में समता होनी चाहिये।

७. ऐसी कोई मुख्य बात जो साम्प्रदायिक प्रश्न पर प्रभाव डालती हो, वह संयुक्त संविधान सभा में स्वीकृत न समझी जायेगी जब तक कि दोनों वर्गों के प्रतिनिधि पृथक-पृथक इसे न मानें।

६ और ७. हम संघीय कार्यपालिका या व्यवस्थापक मण्डल में दोनों वर्गों को प्रतिनिधित्व की समता देने के सर्वथा विरुद्ध हैं। हम समझते हैं कि प्रत्येक अल्पसंख्यक की इस उपबंध से पूर्ण रक्षा हो जाती है कि कोई भी महत्वपूर्ण साम्प्रदायिक बात तब तक स्वीकृति नहीं समझी जायेगी जब तक कि सम्बन्धित जातियों के प्रतिनिधियों का बहुमत उसे स्वीकार न कर ले। हम ने अधिक विस्तृत सिद्धान्त रखा है जो अन्य जातियों पर भी लागू होता है।

८. किसी भी विवादयुक्त प्रश्न पर चाहे वह कार्यपालिका सम्बन्धी, प्रशासन सम्बन्धी, या व्यवस्थापिका सम्बन्धी हो केवल तीन चौथाई के बहुमत से ही निर्णय हो सकेगा।

८. यह इतना व्यापक सुझाव है कि कोई भी सरकार या व्यवस्थापक मंडल कार्य ही नहीं कर सकता। एक बार साम्प्रदायिक प्रश्नों का संरक्षण करने के पश्चात अन्य विवादास्पद प्रश्नों के लिये संरक्षण की कोई आवश्यकता नहीं है। इस से तो प्रत्येक निहित स्वार्थ की रक्षा होगी तथा प्रगति असंभव हो जायेगी। हम इसे नहीं मानते।

९. वर्गीय तथा प्रान्तीय संविधानों में मूल अधिकारों तथा भिन्न भिन्न सम्प्रदायों के धार्मिक, सांस्कृ-

९. हमारा सुझाव है कि इन अधिकारों का उचित स्थान अखिल भारतीय संघ के संविधान में है।

तिक तथा अन्य मामलों के लिये उपबंध होंगे।	सारे भारत में मूल अधिकारों के विषय में समता होनी चाहिये।
१०. संघ के संविधान में ऐसा उपबंध होना चाहिये कि कोई प्रान्त १० वर्ष बाद अपनी व्यवस्थापिका सभा के बहुमत से संविधान को दोहराने की मांग कर सकता है तथा संघ से पृथक हो सकता है।	१०. संघ के संविधान में दोहराने का तो उपबंध होगा ही, अपितु इस पर पूर्णतः पुनर्विचार करने का भी उपबंध हो सकता है। यद्यपि पृथक होने का अधिकार निहित है पर हम इस का उल्लेख नहीं करेंगे क्यों कि हम इस भावना को प्रोत्साहन नहीं देना चाहते।

इसके साथ साथ राष्ट्रसभा ने अपनी ओर से ठोस सुझाव भी रखे किन्तु वे भी समझौते का आधार न बन सके।

११. मंत्री प्रतिनिधिमंडल की अन्तिम वर्गीकरण योजना

१२ मई को शिमला में लीग तथा राष्ट्रसभा के बीच सुझावों का विनिमय होने के बाद तंग होकर प्रतिनिधिमंडल ने यह घोषणा कर दी कि दोनों दलों में समझौता न होने के कारण शिमला सम्मेलन भंग कर दिया गया है तथा प्रतिनिधिमंडल तत्काल देहली लौटेगा जहां वह अपना अन्तिम निर्णय करके उस की घोषणा करेगा। यह प्रतिनिधिमंडल योजना १६ मई १९४६ को प्रकाशित की गई जिस में दोनों दलों को प्रसन्न करने के लिये मध्यवर्ती मार्ग चुना गया था। राष्ट्रसभा तथा लीग दोनों ने इसे मान लिया था किन्तु अन्त में लीग ने संविधान सभा बनने पर उस से असहयोग कर दिया। अब हम प्रतिनिधि मंडल योजना के कुछ अंशों को नीचे देते हैं।

ब्रिटिश मन्त्री प्रतिनिधिमण्डल एवं वायसराय महोदय का १६ मई १९४६ का वक्तव्य।

"१. गत १५ मार्च को, भारत को प्रतिनिधि मण्डल भेजने से कुछ ही पहले, श्रीयुत एटली, ब्रिटिश प्रधान मन्त्री, ने यह शब्द प्रयोग किये थे :

'मेरे सहयोगी भारत को यथासम्भव शीघ्रातिशीघ्र तथा पूर्णतः स्वतन्त्रता प्राप्त करने में सहायता देने के निमित्त अपना अधिकाधिक प्रयत्न करने की इच्छा से भारत जा रहे हैं। वर्तमान शासन के स्थान पर किस प्रकार की सरकार बने यह तो भारत को ही निर्णय करना है, किन्तु उसे वह निर्णय करने के लिये व्यवस्था स्थापित करने में सहायता देना ही हमारी आकांक्षा है।......

मैं आशा करता हूँ कि भारतीय ब्रिटिश राष्ट्रमण्डल में ही रहने का निर्णय करेंगे। मुझे विश्वास है कि उन्हें इस में बहुत लाभ दिखेगा।...

किन्तु यदि भारत इस प्रकार निर्णय करे तो अपनी स्वतन्त्र इच्छानुसार ही करेगा। ब्रिटिश राष्ट्रमण्डल और साम्राज्य वाह्य दबाव की श्रृंखलाओं से जुड़ा हुआ नहीं है। यह स्वतन्त्र राष्ट्रों का स्वतन्त्र संगठन है। यदि इसके विपरीत भारत ने स्वतन्त्र रहने का निश्चय किया तो हमारे विचार में उसे ऐसा करने का अधिकार है। हमारा यह कार्य होगा कि उस परिवर्तन को यथासम्भव सरल तथा संघर्ष रहित बनाने में सहायता दें।'

२. इन ऐतिहासिक शब्दों का भार लेकर हमने, मन्त्री प्रतिनिधिमण्डल और वायसराय ने, भारत के विभाजन या एकता के आधारमूल पश्न पर दोनों मुख्य राजनैतिक दलों को समझौते पर पहुँचाने के लिये अधिकतम प्रयत्न किया है। नई दिल्ली में लम्बे विचार विनिमय के उपरान्त हम शिमला में राष्ट्रसभा तथा मुस्लिम लीग को एक सम्मेलन में साथ लाने में सफल हुये। वहां पर भावों का पूर्ण विनिमय हुआ तथा दोनों दल समझौते पर पहुंचने के लिये बहुत रियायतें करने के लिये तत्पर थे, किन्तु अन्त में दोनों दलों के बीच शेष खाई को पाटना असंभव सिद्ध हुआ तथा कोई समझौता नहीं हो सका। क्योंकि कोई समझौता नहीं हो सकता है, अतः हम अपना कर्त्तव्य समझते हैं कि नये संविधान के शीघ्र निर्माण की बात पक्की करने के लिये हम जो उत्तमोत्तम व्यवस्था समझते हैं उसे प्रस्तुत करें। यह वक्तव्य ब्रिटिश सरकार की पूर्ण स्वीकृति से दिया जाता है।

३. हम ने एतदानुसार यह निश्चय किया है कि अविलम्ब ऐसी

व्यवस्था करनी चाहिये कि जिस से स्वयं भारतीय ही भारत का भावी संविधान निश्चित कर सकें और जब तक नवीन संविधान निर्मित न हो सके तब तक ब्रिटिश भारत की शासन व्यवस्था चलाने के निमित्त तत्काल एक अन्तरिम सरकार बना दी जाये। हमने जनता के बड़े दलों के समान ही छोटे दलों के साथ न्याय करने का प्रयत्न किया है तथा ऐसी व्यवस्था की सिफारिश करने का प्रयत्न किया है कि जो भारत के भावी शासन की व्यवहारिक प्रणाली सुझायेगी एवं सामाजिक, राजनैतिक तथा आर्थिक क्षेत्र में प्रगति करने का अच्छा अवसर और सुरक्षा के लिये दृढ़ आधार प्रदान करेगी।

४. प्रतिनिधि मण्डल के समक्ष जो विस्तृत वक्तव्य दिये गये हैं उन का इस वक्तव्य में सिंहावलोकन करने की कोई इच्छा नहीं है, किन्तु यह उचित है कि हम यह कहें कि इन में भारत की एकता के लिये, मुस्लिम लीग के समर्थकों के अतिरिक्त, लगभग सब ओर से सर्वतोमुखी इच्छा प्रगट की गई है।

५. किन्तु यह विचार हमें भारत विभाजन की सम्भावना को निष्पक्ष होकर एवं भली प्रकार से जाँचने से नहीं रोक सका है क्योंकि हम मुसलमानों की सच्ची तथा भीषण चिन्तावृत्ति से बहुत प्रभावित हुए हैं कि कहीं वे सदा के लिये हिन्दू बहुमत शासन के अधीन न हो जायें। यह भावना मुस्लिमों में इतनी दृढ़ तथा विस्तृत हो गई है कि वह केवल संरक्षणों से नहीं मिट सकती। यदि भारत में आन्तरिक शान्ति रहनी है तो वह ऐसे उपायों से ही हो सकती है जिन से मुसलमानों को अपनी संस्कृति, धर्म और आर्थिक तथा अन्य हितों के लिये आवश्यक मामलों में नियन्त्रण का विश्वास हो सके।

बड़ा पाकिस्तान असम्भव

६. हम ने इस कारण पहले मुस्लिम लीग द्वारा मांगे हुए पृथक तथा सम्पूर्ण-प्रभुत्व-संपन्न पाकिस्तान राज्य के प्रश्न पर विचार किया। ऐसे पाकिस्तान में दो प्रदेश सम्मिलित होते, एक उत्तर पश्चिम में अर्थात पंजाब, सिंध, सीमाप्रान्त तथा ब्रिटिश बलूचिस्तान और दूसरा उत्तर पूर्व में अर्थात बंगाल तथा आसाम। लीग बाद में सीमाओं को ठीक करने के विषय में सोचने के लिये तैयार थी पर उसने इस पर हठ किया कि पाकिस्तान

के सिद्धांत को पहले मानना चाहिये। पाकिस्तान के पृथक राज्य के लिये युक्ति का यह आधार था कि प्रथम तो मुस्लिम बहुमत को अपनी इच्छानुसार अपने शासन की प्रणाली निश्चित करने का अधिकार है, और दूसरे पाकिस्तान को प्रशासन सम्बन्धी तथा आर्थिक दृष्टि से कार्य योग्य बनाने के लिये ऐसे बहुत से प्रदेश भी उसमें मिलाने चाहियें कि जिन में मुस्लिम अल्पसंख्या में हैं।

उल्लिखित छै प्रान्तों से बने पाकिस्तान में अमुस्लिम अल्पसंख्यक अत्यधिक होंगे जैसे कि निम्न आंकड़ों से प्रकट होता है (यह आंकड़े १९४१ की जनसंख्या के आधार पर हैं):

उत्तर पश्चिमी प्रदेश	मुस्लिम	अमुस्लिम
पंजाब	१,६२,१७,२४२	१,२२,०१,५७७
सीमाप्रान्त	२७,८८,७९७	२,४९,२७०
सिंध	३२,०८,३२५	१३,२६,६८३
बलूचिस्तान	४,३८,९३०	६२,७०१
	२२६,५३,२९४	१३८,४०,२३१
	(६२.०७ प्रतिशत)	(३७.९३ प्रतिशत)

उत्तर पूर्वी प्रदेश	मुस्लिम	अमुस्लिम
बंगाल	३,३०,०५,४३४	२,७३,०१,०९१
आसाम	३४,४२,४७९	६७,६२,२५४
	३,६४,४७,९१३	३,४०,६३,३४५
	(५१.६९ प्रतिशत)	(४८.३१ प्रतिशत)

शेष ब्रिटिश भारत में मुस्लिम अल्पसंख्यक २ करोड़ के लगभग हैं जो कि १८ करोड़ ८० लाख जन संख्या में बिखरे हुए हैं।

इन अंकों से यह प्रकट है कि मुस्लिम लीग द्वारा मांगा हुआ पृथक सम्पूर्ण प्रभुत्व संपन्न पाकिस्तान राज्य बनने से साम्प्रदायिक अल्पसंख्यकों की समस्या हल नहीं होती, और न ही ऐसे पाकिस्तान में आसाम तथा पंजाब तथा बंगाल के वे जिले जिनमें जनता मुख्यतः अमुस्लिम

है सम्मिलित करना न्याययुक्त है। प्रत्येक युक्ति जो कि पाकिस्तान के पक्ष में दी जा सकती है वही अमुस्लिम प्रदेशों को पाकिस्तान से पृथक रखने के लिये दी जा सकती है। यह विषय सिखों की अवस्था पर विशेष प्रभाव डालता है।

७. छोटा पाकिस्तान भी नहीं : अतः हमने यह विचार किया कि क्या एक छोटा पाकिस्तान जो मुस्लिम बहुमत के प्रदेशों तक सीमित हो समझौते का सम्भवतः आधार बन सकता है। मुस्लिम लीग ऐसे पाकिस्तान को सर्वथा अव्यवहारिक समझती है क्योंकि इस से निम्न प्रदेश पाकिस्तान से निकल जाते हैं :

अ. पंजाब में सारा अम्बाला तथा जलंधर का डिवीजन

ब. सिलहट जिले के अतिरिक्त सारा आसाम

ज. पश्चिमी बंगाल का भाग जिस में कलकत्ता सम्मिलित है।

(कलकत्ते में मुस्लिम जनसंख्या केवल २३.६ प्रतिशत है।)

हमारा भी यह विश्वास है कि कोई भी ऐसा मार्ग, जिससे पंजाब और बंगाल का पूर्णतः विभाजन हो, जैसा कि इसमें होता, इन प्रान्तों के निवासियों के बहुत बड़े भाग की इच्छा तथा हितों के विपरीत होगा। बंगाल और पंजाब की अपनी अपनी भाषा, इतिहास तथा परम्परायें हैं। इसके अतिरिक्त पंजाब के बटवारे से सिखों का अवश्य विभाजन हो जाता तथा वे सीमा के दोनों ओर पर्याप्त संख्या में रह जाते। अतएव हम विवश हो कर इस परिणाम पर पहुंचे हैं कि न छोटे न बड़े सम्पूर्ण प्रभुत्व सम्पन्न पाकिस्तान से साम्प्रदायिक गुत्थी सुलझ सकती है।

८. पाकिस्तान से अन्य हानियां : उपरोक्त युक्तियों के महान बल के अतिरिक्त महत्वपूर्ण प्रशासन सम्बन्धी, आर्थिक तथा सैनिक विचार भी हैं। भारत के यातायात, डाक तथा तार की सारी व्यवस्था संयुक्त भारत के आधार पर बनी है। उन्हें खंडित करने से भारत के दोनों भागों को गंभीर हानि होगी। संयुक्त सुरक्षा व्यवस्था के लिये तो युक्ति और भी प्रबल है, भारतीय सेना सारे भारत की रक्षा के लिये ही बनाई गई है और

उस के दो खंड करने से भारतीय सेना की उच्च कार्यकुशलता तथा परम्परा को घातक धक्का लगेगा एवं भयानक परिणाम होंगे। भारतीय जल और वायु सेनाओं की शक्ति बहुत कम हो जायेगी। प्रस्तावित पाकिस्तान के दो भागों में बहुत ही सुभेद्य सीमायें हैं और गहराई के युद्ध (Defence in Depth) में रक्षार्थ पाकिस्तान का क्षेत्रफल काफी नहीं होगा।

९. एक महत्वपूर्ण विचार यह भी है कि खंडित भारत के साथ मिलने में देशी राज्यों को भी अधिक कठिनाई होगी।

१०. अन्त में एक भौगोलिक तथ्य भी है कि प्रस्तावित पाकिस्तान राज्य के दो भाग लगभग ७०० मील दूर हैं और युद्ध एवं शांति दोनों में उनके बीच संचार (Communications) हिन्दुस्तान की सद्भावना पर निर्भर होगा।

११. अतएव हम ब्रिटिश सरकार को यह सिफारिश नहीं कर सकते कि जो अधिकार इस समय ब्रिटिश हाथों में हैं वह दो सर्वथा पृथक सम्पूर्ण प्रभुत्व सम्पन्न राज्यों को सौंप दिए जायें।

❀ ❀ ❀

१४. देशी राज्य स्वतन्त्र होंगे : अपनी सिफारिशें प्रस्तुत करने से पहले हम देशी राज्यों के ब्रिटिश भारत के सम्बन्ध को लेते हैं। यह बिल्कुल स्पष्ट है कि भारत के स्वतन्त्र होने के पश्चात, चाहे ब्रिटिश राष्ट्रमण्डल के अन्तर्गत चाहे बाहर, जो सम्बन्ध अब तक देशी नरेशों तथा ब्रिटिश सम्राट में थे वे न रह सकेंगे। प्रभुसत्ता न ही ब्रिटिश सम्राट रखेगा और न नये शासन को ही हस्तांतरित की जाएगी। यह तथ्य उन्होंने पूर्णतः मान लिया है जो कि राज्यों की ओर से हम से मिले थे। उन्होंने इसके साथ ही हमें आश्वासन भी दिया है कि राज्य भारत के नए विकास में सहयोग देने को तत्पर तथा उसके इच्छुक हैं। यह सहयोग किस रूप में होगा यह नवीन सांविधानिक रूपरेखा बनाते समय विचार विनिमय का विषय है तथा यह किसी प्रकार आवश्यक नहीं है कि यह सहयोग सारे राज्यों के लिए एक रूप में हो। अत: हमने निम्न कंडिकाओं में जितना विस्तृत विवरण ब्रिटिश भारत के प्रांतों का लिखा है उतना राज्यों का नहीं।

१५. नई योजना का आधार : अब हम वह हल बताते हैं जो कि हमारे विचार में सारे दलों के दावों के प्रति न्यायपूर्ण होगा और साथ साथ सारे भारत का एक स्थायी तथा व्यवहारिक संविधान बनाने के लिए संभवतः समुचित होगा।

हम सिफारिश करते हैं कि संविधान निम्नलिखित आधार पर बने :

(१) एक भारतीय संघ होना चाहिए जिसमें ब्रिटिश भारत और राज्य हों तथा वह निम्न विषयों को संभाले, सुरक्षा, विदेशी नीति तथा संचार, और उसे इन विषयों के लिए आवश्यक धन प्राप्त करने की शक्ति होनी चाहिए।

(२) संघ के लिए एक कार्यपालिका तथा एक व्यवस्थापक मण्डल होना चाहिए जो ब्रिटिश भारत तथा देशी राज्यों के प्रतिनिधियों से बनेंगे। कोई प्रश्न जो महान साम्प्रदायिक महत्व का हो उस को निश्चित करने के लिए व्यवस्थापक-मंडल में दोनों बड़े सम्प्रदायों में से प्रत्येक के उपस्थित तथा मत देने वाले सदस्यों के बहुमत की और उपस्थित तथा मत देने वाले कुल सदस्यों के बहुमत की आवश्यकता होनी चाहिए।

(३) संघीय विषयों के अतिरिक्त सारे विषय और शेष अधिकार प्रांतों में निहित होने चाहिएं।

(४) उन अधिकारों और विषयों के अतिरिक्त जो कि वे संघ को अर्पित करेंगे शेष सब विषय तथा अधिकार राज्यों के पास रहेंगे।

(५) प्रान्तों की स्वतन्त्रता : प्रान्त वर्ग बनाने के लिए स्वतन्त्र होने चाहियें जिनमें कार्यपालिका तथा व्यवस्थापक मण्डल हों तथा प्रत्येक वर्ग सामान्य रूप से रखने के विषयों का निर्णय कर सके [१९ (४) और (५) कंडिका से तुलना करिये।]

(६) संघ तथा वर्गों के संविधान में एक उपबन्ध होना चाहिए जिस से दस दस वर्ष के बाद कोई प्रांत, अपनी व्यवस्थापिका सभा के बहुमत से संविधान में परिवर्तन की मांग कर सके।

१६. हमारा यह उद्देश्य नहीं है कि उपयुक्त कार्यक्रम के अनुसार

संविधान का विस्तृत विवरण रखें, अपितु हमारा उद्देश्य ऐसी रूपरेखा बनाने का है जिससे कि भारतीय भारत के लिए संविधान बना सकें।

यह सिफारिशें करना भी हमारे लिए इस कारण आवश्यक हो गया है कि बिना इस के दो बड़ी जातियों को संविधान निर्मात्री सभा में लाने की आशा नहीं रही थी।

१७. अब हम संविधान निर्माण के लिए व्यवस्था की चर्चा करते हैं, जिसे अब स्थापित करना चाहिए, जिससे कि नया संविधान बनना सम्भव हो सके।

१८ संविधान सभा में प्रतिनिधित्व : एक नयी वैधानिक व्यवस्था निश्चित करने के लिए एक सभा बनाने में यह समस्या है कि सारी जनता का सम्भवतः विस्तृत तथा ठीक प्रतिनिधित्व किस प्रकार प्राप्त किया जाये। सब से सन्तोषजनक उपाय तो स्पष्टतया वयस्क मताधिकार पर चुनाव होता किन्तु ऐसी चेष्टा करने से नये संविधान के निर्माण में सर्वथा अस्वीकार्य विलम्ब होगा। व्यवहारिक तरीका यही है कि अभी चुनी हुई प्रान्तीय व्यवस्थापिका सभाओं से निर्वाचन संस्थाओं का काम लिया जाये। किन्तु उनकी बनावट में दो बातें हैं जो इसमें कठिनाई उत्पन्न करती हैं। एक तो प्रांतीय सभाओं की सदस्य संख्या प्रत्येक प्रांत की जनसंख्या से अनुपात नही खाती। उदाहरणार्थ १ करोड़ की जन संख्या वाले आसाम में १०८ सदस्यों की धारा सभा है पर ६ गुनी जनसंख्या वाले बंगाल में केवल २५० सदस्यों की सभा है। दूसरे साम्प्रदायिक पंचाट द्वारा अल्पसंख्यकों को दिए हुए वजन के कारण प्रत्येक प्रांतीय व्यवस्थापिका सभा में सम्प्रदायों की संख्या उनकी प्रांत में जनसंख्या के अनुपात के अनुसार नहीं है यथा मुसलमानों के लिये बंगाल धारा सभा में ४८ प्रतिशत स्थान हैं यद्यपि वे प्रांत की जनसंख्या के ५५ प्रतिशत हैं। इन बातों के ठीक करने के भिन्न भिन्न उपायों पर बहुत ध्यान से विचार करने पर हम इस परिणाम पर पहुँचे हैं कि अधिकतम न्यायपूर्ण और व्यवहारिक योजना यह है कि :

(अ) प्रत्येक प्रांत को उसकी जनसंख्या के अनुपात से स्थान दिए जायें, लगभग १० लाख के पीछे एक, यह वयस्क मताधिकार के निकटतम योजना है।

(ब) प्रांत को मिले स्थान प्रत्येक बड़ी जाति में उसकी संख्या के अनुपात से बांटे जायेंगे।

(ज) यह उपबन्ध हो कि प्रांत में प्रत्येक जाति के लिए नियत प्रतिनिधि उसकी व्यवस्थापिका सभा के उसी जाति के सदस्यों द्वारा निर्वाचित हों।

हमारे विचार में इस प्रस्ताव के लिए यह पर्याप्त है कि केवल हिन्दू, मुस्लिम तथा सिख तीन ही बड़ी जातियां मानी जायें और 'व्यापक' जाति में मुस्लिम तथा सिखों के अतिरिक्त सब आ जायें। क्यों कि अन्य जातियों को प्रांतीय व्यवस्थापक मण्डलों में प्राप्त विशेष स्थानाधिकार (वजन) न रहेगा अतः हमने २०वीं कंडिका में उनके हितों के विषय में पूर्ण प्रतिनिधित्व देने का प्रबन्ध किया है।

१६. (१) अतएव हमारा यह प्रस्ताव है कि प्रत्येक प्रान्तीय व्यवस्थापिका सभा द्वारा निम्नलिखित संख्या में प्रतिनिधि निर्वाचित होंगे, सभा का प्रत्येक भाग व्यापक, मुस्लिम या सिक्ख अपने अपने प्रतिनिधि अनुपात से 'एकल संक्राम्य मताधिकार' की प्रणाली से चुनेगा :

प्रतिनिधित्व का क्रम

'अ' शाखा

प्रान्त	व्यापक	मुस्लिम	योग
मद्रास	४५	४	४६
बम्बई	१६	२	२१
युक्तप्रान्त	४७	८	५५
बिहार	३१	५	३६
मध्यप्रान्त	१६	१	१७
उड़ीसा	६	०	६
कुल योग......	१६७	२०	१८७

'ब' शाखा

प्रान्त	व्यापक	मुस्लिम	सिक्ख	जोड़
पंजाब	८	१६	४	२८
सीमाप्रान्त	०	३	०	३
सिंध	१	३	०	४
कुल जोड़......	६	२२	४	३५

'ज' शाखा

प्रान्त	व्यापक	मुस्लिम	जोड़
बंगाल	२७	३३	६०
आसाम	७	३	१०
कुल जोड़...	३४	३६	७०

ब्रिटिश भारत का जोड़......२९२

देशी राज्यों का जोड़............९३ (अधिकतम)

महायोग···३८५

नोट:—चीफ कमिश्नरों के प्रांतों के लिए इस प्रकार प्रतिनिधित्व होगा कि केन्द्रीय व्यवस्थापक मंडल में दिल्ली तथा अजमेर मेरवाड़ा के प्रतिनिधि 'अ' शाखा में मिल जायेंगे और उसी शाखा में कुर्ग व्यवस्थापिका परिषद् का एक प्रतिनिधि आ जायेगा। 'ब' शाखा में एक ब्रिटिश बलूचिस्तान का प्रतिनिधि जोड़ दिया जायेगा।

(२) राज्यों को प्रतिनिधित्व : हमारी यह इच्छा है कि अन्तिम रूप संविधान सभा में राज्यों को उचित प्रतिनिधित्व दिया जाये जो कि ब्रिटिश भारत के लिये स्वीकृत जनसंख्या के हिसाब से ९३ स्थान से अधिक नहीं होगा। उन्हें भेजने की प्रणाली विचार विमर्श से तय की जानी होगी। प्रारम्भिक अवस्था में राज्यों का प्रतिनिधित्व 'वार्ता समिति' करेगी।

(३) इस प्रकार से चुने हुए प्रतिनिधि यथासंभव शीघ्र ही नई देहली में अपनी बैठक करेंगे।

(४) एक प्रारंभिक बैठक होगी जिसमें कार्यक्रम की रूपरेखा निश्चित होगी, एक सभापति और अन्य पदाधिकारी चुने जायेंगे तथा एक परामर्श दात्री समिति (देखिये नीचे कंडिका २०) बैठाई जायेगी जो कि इन विषयों पर परामर्श देगी:—

नागरिक अधिकार, अल्पसंख्यक, कबायली तथा पृथक किये हुए प्रदेश।

तत्पश्चात प्रान्तीय प्रतिनिधि इस कंडिका की उपकंडिका (१) में लिखित 'अ' 'ब' तथा 'ज' शाखाओं में बट जायेंगे [कंडिका १५ (५) से तुलना करें]।

(५) यह शाखायें अपनी अपनी शाखा के प्रान्तों के लिये प्रांतीय संविधान बनाएंगी तथा यह निश्चित करेंगी कि कोई वर्गीय संविधान बनाया जाये या नहीं और यदि बनाया जाये तो वर्ग क्या क्या प्रान्तीय विषय संभालें, निम्नलिखित उपकंडिका (८) के उपबंधों के अनुसार प्रान्तों को वर्गों में से निकलने की स्वतन्त्रता होगी।

(६) शाखाओं तथा देशी राज्यों के प्रतिनिधि संघीय संविधान बनाने के लिये फिर समवेत होंगे।

(७) उपर्युक्त कंडिका १५ के उपबंधों में परिवर्तन सम्बन्धी या कोई बड़े साम्प्रदायिक प्रश्न सम्बन्धी प्रस्ताव संविधान सभा में दोनों जातियों के प्रतिनिधियों के उपस्थित तथा मत देने वाले सदस्यों के बहुमतों से ही स्वीकृत होगा। सभापति यह निर्णय करेगा कि कौन सा प्रस्ताव बड़े साम्प्रदायिक प्रश्न से सम्बन्धित है तथा यदि किसी जाति के प्रतिनिधि बहुमत से प्रार्थना करेंगे तो सभापति अपना निर्णय करने से पूर्व संघीय न्यायालय से परामर्श भी करेगा।

(८) ज्यों ही नवीन संविधान की व्यवस्था कार्यान्वित होंगी त्यों ही प्रान्तों को अपने वर्ग से निकलने का अधिकार होगा। नये संविधान के अन्तर्गत प्रथम निर्वाचन के पश्चात् प्रान्तीय व्यवस्थापिका सभा यह निर्णय करेगी।

२०. नागरिक अधिकार, अल्पसंख्यकों और कबाइली तथा पृथक

कृत प्रदेशों सम्बन्धी परामर्श समिति में प्रभावित हितों का प्रतिनिधित्व होगा और उनका कार्य यह होगा कि वे संघीय संविधान सभा को मूलाधिकारों की सूची, अल्पसंख्यकों के संरक्षण के लिये धारायें, तथा कबाइली एवं पृथक कृत प्रदेशों की शासन व्यवस्था के लिये योजना के विषय में परामर्श दें तथा यह भी बतायें कि ये अधिकार प्रान्तीय, वर्गीय या संघीय किस संविधान में रखने चाहिये।

२१. वायसराय अब प्रांतीय व्यवस्थापक मंडलों से निवेदन करेगा कि अपने अपने प्रतिनिधि चुनना आरम्भ करें तथा राज्यों को कहेगा कि एक वार्ता समिति बनायें।

आशा की जाती है कि कार्य की विषमता जितनी जल्दी होने देगी उतनी शीघ्रता से ही संविधान बनेगा तथा अंतरिम काल यथासंभव छोटा होगा।

२२. शक्ति हस्तान्तरित करने के कार्य से उत्पन्न प्रश्नों पर आवश्यक बातें तय करने के लिये यह आवश्यक होगा कि संघीय संविधान सभा और ब्रिटेन में एक संधि हो।

२३. अन्तरिम सरकार : जब तक संविधान निर्माण का कार्य चले तब तक भारत का प्रशासन तो चलाना ही होगा। अतः हम मुख्य राजनैतिक दलों के समर्थन से एक अन्तिरिम सरकार बनाने के प्रश्न को बहुत महत्व देते हैं।............वायसराय ने पहले ही इसके लिये वार्ता आरम्भ करदी है तथा वह शीघ्र ही ऐसी अन्तरिम सरकार बनाने की आशा करते हैं कि जिस में युद्ध विभाग सहित सारे विभाग जनता के विश्वस्त नेता संभालेंगे। ब्रिटिश सरकार उसे पूर्ण सहयोग देगी।"

१२. योजना की त्रुटियां

उपर्युक्त योजना बहुत सोच समझ कर बनाई गई थी तथा उसमें जनतन्त्रवाद के सिद्धांतों की कुछ झलक अवश्य थी पर उसमें कई त्रुटियां भी थीं जिस कारण वह पूर्णतः सफल न हो सकी। हम इस योजना पर कंडिकाओं के क्रमानुसार टिप्पणी करेंगे :

अ. राज्यों की समस्या : १४वीं कंडिका में राज्यों को भारतीय संघ से पृथक रहने की जो स्वतन्त्रता दी गई थी वह कठिनाई उत्पन्न कर सकती थी। राष्ट्रसभा चाहती थी कि राज्यों के प्रतिनिधि भी प्रान्तों के समान जनता द्वारा निर्वाचित हों।

१५ वा कंडिका की उपकंडिका (२) : चाहे यह शर्त राष्ट्रसभा ने मान ली थी पर यह जनतंत्रवाद के सिद्धांत के सर्वथा विरुद्ध थी तथा एक सम्प्रदाय को प्रगति में बाधा डालने की अनुमति देती थी।

ब. यूरोपियन सदस्यों का प्रश्न : १९ वीं कंडिका में प्रतिनिधि मंडल से कुछ त्रुटियां रह गई थीं। एक तो यह कि आसाम और बंगाल की धारा सभाओं में ३४ यूरोपियन सदस्य थे जो कि 'व्यापक' सदस्यों के साथ मिल कर ७ प्रतिनिधि संविधान सभा में भेज सकते थे। यद्यपि प्रान्त में उनकी कुल जनसंख्या २१,००० थी। इसका अर्थ यह होता कि १८ वीं कंडिका की भावना के विरुद्ध 'व्यापक' सदस्यों में कुछ मुसलमानों का समर्थन करने वाले प्रतिनिधि आ जाते। यह याद रखने योग्य है कि 'ज' शाखा में व्यापक और मुसलमान प्रतिनिधियों की संख्या में केवल दो का अन्तर था, अतः वहां सात सदस्यों से ही बहुमत में बहुत अन्तर हो जाता। राष्ट्रसभा के आपत्ति उठाने पर प्रतिनिधि मंडल ने अपनी त्रुटि मान ली और यूरोपियन सदस्यों से यह घोषणा करवादी कि वे मत नहीं देंगे तथा अपने प्रतिनिधि संविधान सभा में नहीं भेजेंगे। इस से यह त्रुटि दूर हुई।

इसी कंडिका में कुर्ग तथा बलूचिस्तान के प्रतिनिधियों के निर्वाचन के बारे में राष्ट्रसभा ने कुछ आपत्ति की थी कि निर्वाचन ऐसा हो जिससे जनता के प्रतिनिधि आयें।

ज. वर्गीकरण, अनिवार्य या नहीं : सबसे अधिक झगड़े का प्रश्न वर्गीकरण का था जो इस योजना से और भी उलझन में पड़ गया। राष्ट्र सभा के प्रधान ने २० मई १९४६ के पत्र में निम्न आलोचना करके इस प्रश्न को स्पष्ट किया था :

"संविधान के आधारों के विषय में आपकी सिफारिशों की कंडिका १५ में लिखा है कि 'प्रान्त वर्ग बनाने के लिये स्वतन्त्र होने चाहियें जिन में कार्य पालिका तथा व्यवस्थापक मंडल हों तथा प्रत्येक वर्ग सामान्य रूप से रखने के

विषयों का निर्णय कर सकें [कंडिका १५ की उपकंडिका (५)]।' इससे जरा पहले आप लिखते हैं कि, 'संघीय विषयों के अतिरिक्त सारे विषय तथा शेष अधिकार प्रान्तों में निहित होने चाहियें [कंडिका १५ (३)]।' किन्तु बाद में आप लिखते हैं [देखिये कंडिका १९ की उपकंडिका (४) तथा (५)] कि 'संविधान सभा में प्रान्तों के प्रतिनिधि तीन शाखाओं में बट जायेंगे तथा वे शाखायें अपनी अपनी शाखा के प्रान्तों के लिये प्रान्तीय संविधान बनायेंगी तथा यह निश्चित करेंगी कि कोई वर्गीय संविधान बनाया जाये या नहीं।' इन दो पृथक पृथक उपबंधों में एक महान अन्तर दिखता है। आधारभूत उपबंधों में तो प्रान्तों को पूर्ण स्वतन्त्रता दी गई है कि वे जो चाहें करें, पर बाद में इस मामले में कुछ अनिवार्यता प्रतीत होती है जो कि उस स्वतन्त्रता का हनन करती है। यह ठीक है कि बाद में एक प्रान्त वर्ग में से निकल सकता है किन्तु यह स्पष्ट नहीं है कि एक प्रान्त के उसके प्रतिनिधियों को अपनी इच्छा के विरुद्ध कुछ भी करने के लिये कैसे दबाया जा सकता है। कोई प्रान्तीय व्यवस्थापिका सभा अपने प्रतिनिधियों को कदाचित यह आदेश दे सकती है कि वे किसी वर्ग में या किसी विशेष वर्ग या शाखा में प्रवेश न करें। 'ब' तथा 'ज' शाखायें बनने से यह स्पष्ट है कि एक ही प्रांत शाखा में प्रमुख रहेगा, शाखा 'ब' में पंजाब और शाखा 'ज' में बंगाल। यह सम्भव है कि ये प्रमुख प्रान्त सिंध, सीमाप्रान्त या आसाम की इच्छाओं के सर्वथा विपरीत संविधान बना दें। ये कदाचित निर्वाचन के ऐसे नियम बनादें कि प्रान्तों के बाहर निकलने के उपबंध को भी व्यर्थ कर दें। ऐसी तो आपकी इच्छा नहीं हो सकती क्योंकि यह बात योजना के मूल सिद्धांतों तथा नीति के विरुद्ध होगी।"

गांधी जी ने इस योजना का यह अर्थ निकाला कि वर्गीकरण अनिवार्य नहीं है। इस के उत्तर में प्रतिनिधि मंडल ने एक और वक्तव्य निकाल कर २५ मई को स्पष्ट किया कि उनकी इच्छा अनिवार्य वर्गीकरण की ही थी। इस पर महात्मा गांधी ने कहा कि "प्रतिनिधिमंडल विधिनिर्माता तथा न्यायालय दोनों नहीं बन सकता। योजना का अर्थ निकालने का अधिकार उन्हें नहीं है, यह कार्य कोई न्यायालय ही कर सकता है।" राष्ट्रसभा ने इसका यही अर्थ माना कि प्रान्तों को वर्ग में जाने या न जाने की स्वतन्त्रता है तथा इसी अर्थ को मान कर वे संविधान सभा में जाकर कार्य करने के लिये तैयार हो गये।

१३. संविधान सभा तथा अंतरिम सरकार

राष्ट्रसभा ने एक और प्रश्न संविधान सभा की सम्पूर्ण प्रभुता का उठाया था कि वह जैसे चाहे संविधान बना सकती है तथा कंडिका १६ (७) के दोनों जातियों के बहुमत वाले उपबंध पर चलते हुये सभा इस समस्त योजना को भी बदल सकती है। राष्ट्र सभा के प्रधान ने लिखा था "हम जनता और संविधान सभा के सदस्यों के पास आपकी सिफारिशों की त्रुटियों को दूर करने के सुझाव लेकर जायेंगे।"

इस के उत्तर में २२ मई १९४६ के पत्र में भारत मन्त्री ने लिखा था कि "एक बार संविधान सभा बनकर इस आधार पर कार्य आरम्भ कर देगी तो स्वभावतः हमारी कोई इच्छा नहीं है कि उसके कार्य में हस्तक्षेप करें या उस के निर्णयों का विरोध करें। जब संविधान सभा अपना कार्य पूरा कर लेगी तब ब्रिटिश सरकार संसद में आवश्यक प्रस्ताव रखेगी, जिससे कि भारतीय जनता को प्रभुता अर्पित कर दी जाये। केवल दो ही शर्तें होंगी जो कदाचित विवादास्पद नहीं हैं अर्थात अल्पसंख्यकों के लिये उचित संरक्षण तथा ब्रिटेन से शक्ति हस्तांतरित करने के विषय में संधि करने की इच्छा।" यह आश्वासन राष्ट्रसभा को प्रसन्नता उत्पन्न करने वाला था, पर मुस्लिम लीग संविधान सभा की प्रभुता से चिढ़ गई।

अन्त में २३ वीं कंडिका की अन्तरिम सरकार के विषय में भयंकर विवाद चला। पहले तो राष्ट्रसभा ने यह आश्वासन मांगा कि यह सरकार पूर्ण अधिकारों वाली होगी तथा दूसरे यह एक दम बन जायेगी। पहले आश्वासन के विषय में वायसराय ने कहा कि "उसकी वैधानिक स्थिति तो १९३५ के संविधान के अनुसार ही होगी परन्तु मैं उसके कार्य में हस्तक्षेप न करूंगा।" समय के प्रश्न पर कई मास व्यतीत हो गये तथा राष्ट्रसभा अधीर हो उठी। उसका यह मत था कि संविधान बनने में तो समय लगेगा और कई रोड़े भी अटकेंगे, अतः वास्तविक लाभ तो राष्ट्रीय सरकार बनने से ही हो सकता है, संविधान तो दूर की चीज है।

१४. सिक्खों तथा मुसलमानों की प्रतिक्रिया

उधर मुस्लिम लीग को वायसराय ने यह संकेत दिया कि वह अंतरिम सरकार में केवल १२ सदस्य लेने का प्रयत्न करेगा जिन में ५ लीग के, ५ राष्ट्र

सभा के (वही समता के आधार पर), एक ईसाई तथा एक सिख होंगे। इस लोभ में लीग ने १६ मई की योजना को यह कह कर स्वीकार कर लिया कि "हम पाकिस्तान बनाने की सम्भावना पर इसे मानते हैं तथा संविधान सभा में सम्मिलित होकर यह ध्यान रखेंगे कि प्रांतों तथा वर्गों को संघ से निकलने का अधिकार तथा अवसर है।" उन्होंने यह भी कहा कि वे जब आवश्यक समझेंगे संविधान सभा से निकल सकते हैं। उधर सिखों में इस योजना से असन्तोष हुआ क्यों कि उनके लिये मुसलमानों के समान संरक्षण नहीं रखे गये थे और उनको सबल पाकिस्तानी वर्ग में डाल दिया गया था। पर उनकी आपत्तियों की अवहेलना कर दी गई।

१५. अन्तरिम सरकार के निर्माण विषयक वार्ता

अब अन्तरिम सरकार के लिये वार्ता आरम्भ हुई। वायसराय ने १६४५ के शिमला सम्मेलन के आधार पर यह योजना रखी कि अन्तरिम सरकार में ५ राष्ट्रसभा के हिन्दू तथा ५ मुस्लिम लीग के मुसलमान, एक सिख तथा एक ईसाई लिया जाये और इसके अतिरिक्त यह भी नियम हो कि किसी बड़े साम्प्रदायिक निर्णय के लिये दोनों जातियों का बहुमत आवश्यक हो।

बदली हुई परिस्थितियों में यह प्रस्ताव अस्वीकार्य था। इसमें हरिजनों को एक स्थान पृथक न देकर हिंदुओं को और भी हानि पहुंचाई गई थी। समता का सिद्धांत तो बुरा था ही, समता के साथ साथ दोनों जातियों के बहुमत से प्रस्ताव स्वीकृत होने का नियम बुरा था। "दोनों मिल कर अन्तरिम सरकार का कार्य सर्वथा असम्भव कर देते तथा गतिरोध अवश्य होता" (राष्ट्र सभा का १३ जून का पत्र)। राष्ट्र सभा ने १२ के स्थान पर १५ सदस्यों का एक मन्त्रिमण्डल बनाने का सुझाव रखा क्यों कि इस से कम में सुचारु रूप से काम चलना असंभव था। राष्ट्रसभा अपना एक मुसलमान अवश्य रखना चाहती थी।

इस के अतिरिक्त विभागों के वितरण पर भी समझौता नहीं होता था। फिर लीग ने जो नाम दिये उनमें एक ऐसा व्यक्ति था जो कि राष्ट्रसभा के प्रांत, सीमाप्रान्त का निवासी था तथा निर्वाचन में पराजित हो गया था। राष्ट्रसभा ने उस पर आपत्ति की तो वायसराय ने उत्तर में कहा "किसी दल को दूसरे दल के नामों पर आपत्ति करने का अधिकार नहीं है।" फिर वायसराय ने ६ राष्ट्रसभा तथा ५ लीग के तथा ३ अन्य सदस्य लेकर मन्त्रिमण्डल बनाना

चाहा। इस में भी उसका उद्देश्य समता का था क्यों कि राष्ट्रसभा को ५ हिंदू और १ हरिजन रखने की अनुमति दी गई थी। वे मुसलमान नहीं रख सकते थे। यदि समता मान ली जाती तो लीग स्वतन्त्र भारत के प्रत्येक मंत्रिमण्डल में भी समता का दावा करती और जनतन्त्रवाद नष्ट हो जाता। सिद्धांतानुसार तो केवल राष्ट्रसभा को ही मन्त्रिमण्डल बनाने का अधिकार था क्यों कि व्यवस्थापिका सभा में उसका बहुमत था। यदि विरोधी दल को लिया भी जाये तो समता कैसी। इसके अतिरिक्त राष्ट्रसभा चाहती थी कि पारसियों और अन्य छोटी जातियों को भी स्थान मिले तथा हरिजनों को कम से कम दो स्थान मिलें। लीग के प्रस्तावानुसार बहुसंख्यक हिंदू जाति को अल्पसंख्यक बनाने का प्रयत्न किया गया था जो घोर अनर्थ था। यदि वायसराय के अनुसार किसी दल को दूसरे दलों के नामों पर आपत्ति करने का अधिकार नहीं था तो लीग को राष्ट्रसभा के मुसलमान पर भी आपत्ति नहीं हो सकती थी। इन कारणों से बहुत समय तक पत्र व्यवहार होता रहा परन्तु मन्त्रिमण्डल नहीं बन सका।

१६. राष्ट्रीय सरकार की स्थापना

राष्ट्रसभा ने २५ जून १९४६ के पत्र में १६ मई की योजना को अपने अर्थ के अनुसार मान लिया पर बिना राष्ट्रीय मुसलमान के अथवा समता के आधार पर अन्तरिम सरकार नहीं बनाई। अन्त में लीग से तंग आकर वायसराय ने राष्ट्र सभा के नये प्रधान पं० नेहरू को अन्तरिम सरकार बनाने का कार्य सौंप दिया। पं० नेहरू ने लीग को अपनी ओर से अन्तरिम सरकार में आमंत्रित किया पर उन्होंने उस निमंत्रण को ठुकरा दिया तो पं० नेहरू ने नवम्बर १९४६ में एक सरकार बनाली जिस में उन्होंने राष्ट्रसभा के हिंदू, हरिजन तथा मुसलमान के अतिरिक्त दो बाहर के मुसलमानों को भी ले लिया तथा दो तीन मुसलमानों के स्थान रिक्त भी छोड़ दिये। इन के साथ साथ एक पारसी, एक ईसाई और एक सिख भी लिया गया।

१७. लीग वालों के उपद्रव

इस पर लीग ने प्रबल विरोध आरंभ कर दिया तथा पूर्वी बंगाल के नवाखाली जिले में अमुस्लिमों की हत्या, उनका माल जलाना, उनकी स्त्रियों पर अमानुषिक अत्याचार आदि आरम्भ कर दिये। उधर संविधान सभा के निर्वाचन हो चुके

थे और उसकी प्रथम बैठक नई दिल्ली में ६ दिसम्बर १९४६ को होनी निश्चित हुई थी पर लीग ने उसमें भाग न लेने की घोषणा कर दी। दिसम्बर के आरम्भ में ब्रिटिश सरकार ने राष्ट्रसभा तथा लीग के नेताओं को एक बार ब्रिटेन बुलाकर समझौता करने की अन्तिम चेष्टा की पर यह भी असफल रही। लीग असहयोग पर अड़ी रही तथा देश भर में उपद्रव करने की तैयारी करती रही।

१८. संविधान सभा का उद्घाटन

९ दिसम्बर १९४६ को संविधान सभा का बड़ी धूम धाम से उद्घाटन हुआ। लीगी सदस्य अनुपस्थित थे। सदस्यों ने देशभक्ति की शपथ ली तथा डा० राजेन्द्र प्रसाद को अपना अध्यक्ष चुना। पहले राष्ट्रसभा ने इस आशा में कि शायद लीग सहयोग करना आरम्भ करदे, धीरे धीरे कार्य आरम्भ कर दिया। २१ दिसम्बर १९४६ को देशी राज्य वार्ता समिति से बात चीत करने के लिये ६ सदस्यों की एक वार्ता समिति बनाई गई क्यों कि राज्यों के लिये रिक्त छोड़े हुये ९३ स्थान भरना आवश्यक था। उसको बात करने के लिये निम्न विषय सौंपे गये :

(अ) १६ मई १९४६ की प्रतिनिधिमंडल योजनानुसार राज्यों के लिये निश्चित अधिकतम ९३ स्थानों का राज्यों में बटवारा, तथा

(ब) संविधान सभा में राज्यों के प्रतिनिधि भेजने की प्रणाली निश्चित करना।

जब लीग के आने की आशा ही नहीं रही तब संविधान सभा ने जनवरी १९४७ के अन्त में अन्य कई समितियां नियुक्त की जिनके नाम तथा कार्यक्षेत्र निम्न लिखित थे :

१. २४ जनवरी १९४७ को नियुक्त अल्पसंख्यकों तथा मूलाधिकारियों पर परामर्श देने वाली समिति जिसके लिये प्रतिनिधि मण्डल की योजना की २० वीं कंडिका में उपबंध था। इस समिति के नेता सरदार बल्लभ भाई पटेल थे तथा इसमें ५५ सदस्य थे।

इस समिति ने निम्नलिखित उप-समितियाँ नियुक्त कीं :—

(१) अल्पसंख्यक उपसमिति (२६ सदस्य)।

(२) मूलाधिकार उप-समिति (१२ सदस्य)।

(३) तीन उप-समितियाँ जो भारत के विभिन्न भागों में आदिम-जातीय लोगों के विषय में पड़ताल करने के लिये नियुक्त हुई थीं।

२. २५ जनवरी १६४७ को नियुक्त संघीय अधिकार समिति जिसका कार्य यह निश्चित करना था कि संघ को दिये हुये तीन विषयों में तथा धन प्राप्त करने के अधिकारों में क्या क्या निहित है।

३. एक समिति २५ जनवरी १६४७ को नियुक्त हुई थी जो सभा का कार्यक्रम निश्चित करने के लिये थी।

———

पांचवां अध्याय

भारत विभाजन और स्वराज्य

१. अवधि नियत

मुस्लिम लीग और राष्ट्रसभा के असहयोग से ब्रिटिश सरकार चिंतित हो गई और अन्त में भारत को स्वतन्त्रता देने के लिए ३० जून १९४८ अन्तिम तिथि निश्चित करदी गई।

२० जनवरी १९४७ को लोकसभा में बोलते हुए ब्रिटिश प्रधान मन्त्री श्री क्लेमेंट एटली ने कहा :

"१. बहुत समय से ब्रिटिश सरकार की यह नीति रही है कि भारत में उत्तरदायी शासन की स्थापना करदी जाय। इसी नीति के अनुसार भारतीयों को अधिकाधिक दायित्व सौंपा जाता रहा है और आज नागरिक शासन तथा सेनाओं की बागडोर वहुत हद तक भारतीय असैनिक व सैनिक अफसरों के ही हाथ में है। वैधानिक क्षेत्र में भी, १९१९ तथा १९३५ में ब्रिटिश संसद द्वारा पास किए गए संविधानों द्वारा काफी राजनैतिक अधिकार भारतीयों को दिये गये थे। १९४० में संयुक्त सरकार ने इस सिद्धांत को मान लिया कि पूर्ण स्वतन्त्रता द्वारा भारतीयों को अपना संविधान स्वयं बनाना चाहिए और १९४२ के प्रस्ताव में तो उन्होंने उन्हें युद्ध के पश्चात इस कार्य के लिए एक संविधान सभा की स्थापना करने के लिए आमन्त्रित भी कर दिया।

२. सम्राट की सरकार की धारणा है कि यह नीति सर्वोचित और प्रजातन्त्रवादी सिद्धांतों के अनुकूल है। जब से उन्होंने शासन भार सम्हाला है इसकी पूर्त्ति के लिए भरसक प्रयत्न किया है। प्रधान मन्त्री के पिछले १५ मार्च के वक्तव्य द्वारा, जिसे संसद तथा देश में अनुमोदन प्राप्त हुआ था, यह स्पष्ट कर दिया गया था कि भारत की भावी स्थिति तथा संविधान के सम्बन्ध में निश्चय करना भारतीयों का ही कार्य है और सम्राट की सरकार के मतानुसार अब वह समय आ गया है जब भारत सरकार का दायित्व भारतीयों ही के हाथों में सौंप दिया जाय।

३. भारत भेजे जाने वाले मन्त्री प्रतिनिधि मण्डल ने पिछले वर्ष भारतीय नेताओं से विचार विनिमय करने में तीन मास से अधिक समय व्यतीत किया जिससे कि भावी संविधान की रूपरेखा आपस में तय की जा सके और शक्ति सौंपने का कार्य सुगमता तथा शीघ्रतापूर्वक सम्पन्न हो सके। जब मन्त्री प्रतिनिधि मण्डल को यह विश्वास हो गया कि उनके पहल किए बिना कोई समझौता हो ही नहीं सकता, तभी उन्होंने अपने प्रस्ताव पेश किये।

४. यह प्रस्ताव पिछली मई में जनता के सम्मुख प्रस्तुत किए गए थे। इनके अनुसार यह निश्चय किया गया था कि भारत का भावी संविधान वर्णित ढंगों से स्थापित संविधान सभा द्वारा बनाया जाय और इस सभा में सब भारतीयों एवं बृटिश भारत तथा देशी राज्यों के प्रतिनिधि सम्मिलित हों।

५. प्रतिनिधि मण्डल के लौट आने के बाद से केन्द्र में बहुसंख्यक जातियों के राजनैतिक नेताओं की एक अन्तःकालीन सरकार स्थापित करदी गई है जिसे वर्तमान संविधान के अन्तर्गत विशाल अधिकार प्राप्त हैं। सब प्रान्तों में व्यवस्थापिका सभाओं के प्रति उत्तरदायी भारतीय सरकारें ही शासन कर रही हैं।

६. सम्राट की सरकार के लिए यह खेद का विषय है, कि अभी तक भारतीय दलों में मतभेद है जिनके कारण संविधान सभा के सुचारु कार्य में बाधाएं उपस्थित हो रही हैं—जिसके लिए सभा की स्थापना हुई थी। इस योजना का सार यह है कि यह सभा पूर्णरूप से प्रतिनिधित्व करने वाली होनी चाहिए।

जून १६४८ तक शक्ति सौंप दी जायगी

७. सम्राट की सरकार की यह इच्छा है कि मंत्रीप्रतिनिधि मण्डल की योजना के अनुसार, भारत के विभिन्न दलों की स्वीकृति से बनाए गए संविधान द्वारा निश्चित अधिकारियों को अपना दायित्व सौंप दिया जाय। किंतु दुर्भाग्यवश ऐसे संविधान तथा अधिकारियों का अस्तित्व में आजाना इस समय सम्भव नहीं मालूम होता। वर्तमान अनिश्चित स्थिति विपद की आशंकों से परे नहीं है और ऐसी स्थिति अनिश्चित समय तक रहने भी नहीं दी जा सकती। सम्राट की सरकार स्पष्टरूप से अपने इस निश्चय को सूचित कर देना चाहती है कि वह जून १६४८ तक उत्तरदायी भारतीयों के हाथ में शक्ति सौंप देने के कार्य को सम्पन्न कर देगी।

विभाजन की सम्भावना

८. महीनों के कठिन परिश्रम के बाद मन्त्री प्रतिनिधि मण्डल संविधान निर्माण की बहुत हद तक स्वीकृत परिपाटि ढूंढ लेने में सफल हुआ था। यह उनके पिछली मई के कथनों में स्पष्ट कर दिया गया था। सम्राट की सरकार ने तब यह स्वीकार कर लिया था कि वे पूर्ण प्रतिनिधित्व प्राप्त संविधान सभा द्वारा इन प्रस्तावों के अनुसार बनाये गए संविधानों की संसद में सिफारिश करेगी। किन्तु यदि उपरोक्त ७वें पैरे में निश्चित की गयी तिथि तक सब प्रकार से प्रतिनिधित्व पूर्ण सभा द्वारा ऐसा संविधान न बनाया जा सका, तो सम्राट की सरकार को यह विचार करना पड़ेगा कि ब्रिटिश भारत की केन्द्रीय सरकार को, या विभक्त करके वर्तमान प्रांतीय सरकारों को अथवा किसी ऐसे ढंग से जो सर्वोचित तथा भारतीयों के लिए सर्वाधिक लाभपूर्ण हो, सत्ता सौंपी जाय।

९. यद्यपि जून १६४८ तक पूर्ण दायित्व सौंपा जाना शायद सम्भव न हो सके तब भी उसके लिए आवश्यक तैयारियां तो पहले से ही होनी चाहियें। यह आवश्यक है कि नागरिक अधिकारियों की कार्यक्षमता का मापदण्ड उतना ही ऊंचा रखा जाय जितना अब तक रहा है तथा भारत की रक्षा का कार्य सुचारु रूप से हो। किन्तु यह निश्चित है कि ज्यों-ज्यों दायित्व सौंपने का कार्य आगे बढ़ता जायगा १९३५ के भारत शासन अधिनियम की शर्तों को निभाना अधिकाधिक कठिन होता जायगा। निश्चित समय पर पूर्ण रूप से दायित्व सौंपने का उपबन्ध लागू हो जायगा।

देशी रियासतें और सम्राट

१०. जैसा कि मंत्री प्रतितिधिमण्डल द्वारा साफ साफ बताया गया था, सम्राट की सरकार अपनी प्रभुशक्ति के अंतर्गत भारतीय रियासतों को ब्रिटिश भारत की किसी भी सरकार के सुपुर्द नहीं करना चाहती। अन्तिम रूप से दायित्व सौंपने से पहले सम्राट की प्रभुशक्ति का अन्त कर देने की कोई इच्छा नहीं है किन्तु यह विचार किया जा रहा है कि इस अन्तरिम काल में व्यक्तिगत रूप से सम्राट हर देशी रियासत से पारस्परिक परामर्श द्वारा अपने सम्बन्ध स्थिर कर लें।"

११. दायित्व तथा तत्सम्बन्धी समझौतों के लिए सम्राट की सरकार उन दलों के प्रतिनिधियों से बातचीत करेगी जिनको वह दायित्व सौंपने का निश्चय करेगी।"

२. लीग भी मन्त्रिमण्डल में

इस घोषणा से अंग्रेजों की सच्चाई प्रकट होने के अतिरिक्त भारतीय दलों में शीघ्रता की भावना उत्पन्न हो गई जिस का बड़ा भारी प्रभाव हुआ। प्रथम तो लीग प्रयत्न कर करा कर केन्द्रीय मन्त्रिमण्डल में आ गयी जिस से कि तत्कालीन सरकार को ३० जून १९४८ को शक्ति मिल गई तो लीग उससे वंचित न रहे। किन्तु मन्त्रिमण्डल में उन्होंने रोड़े अटकाने आरम्भ कर दिए जिससे राष्ट्र सभा दुखी हो गई तथा शासन-व्यवस्था बिगड़ गयी।

दूसरे लीग ने संविधान सभा से बाहर रहने में ही लाभ समझा क्यों कि उसे आशा थी कि संविधान सभा पूर्णरूपेण प्रतिनिधि नहीं होगी तो उसका बनाया हुआ संविधान मुस्लिम प्रदेशों पर लागू न होगा तथा इसी प्रकार उसे पाकिस्तान मिल जायेगा। किन्तु यह छोटा या लँगड़ा पाकिस्तान ही हो सकता था जिस में आसाम, पूर्वी पंजाब तथा पश्चिमी बंगाल नहीं आ सकते थे। अब हठधर्म के कारण लीग इस के लिए भी तय्यार थी।

३. पुनः लीगी उपद्रव तथा प्रान्तीय विभाजनों की मांग

तीसरे लीग ने पश्चिमी पंजाब में भी हिन्दू विरोधी उपद्रवों का श्री-गणेश कर दिया जिससे हजारों हिन्दू मारे गए तथा शेष "मुस्लिम प्रदेश" को

खाली करके भागने लगे। इन उपद्रवों में पंजाब की मुसलमान सरकार सहायता करती थी और ऐसी ही परिस्थिति पूर्वी बंगाल में थी। आखिर पंजाब के हिन्दुओं तथा सिखों ने पंजाब विभाजन की मांग आरम्भ कर दी जिससे कि आधे प्रान्त में तो उनको सरकार बन कर उनका संरक्षण कर सके। हिन्दू महासभा के नेता श्री श्यामप्रसाद मुखर्जी आदि ने बंगाल विभाजन की भी मांग आरम्भ कर दी।

४. राष्ट्रसभा द्वारा पाकिस्तान स्वीकार

राष्ट्रसभा ने बदली हुई परिस्थितियों में यह अच्छी प्रकार से अनुभव कर लिया कि मुस्लिम लीग के साथ अब या स्वतन्त्र भारत में निर्वाह हो ही नहीं सकता तथा ३० जून १९४८ तक तो लीग देश भर की शांति व्यवस्था को नष्ट-भ्रष्ट कर देगी। प्रतिनिधि मण्डल की वर्गीकरण योजना से अब देश भर को भय होने लगा क्यों कि यह प्रकट हो गया कि मुस्लिम वर्गों में अमुस्लिमों के लिए कोई स्थान नहीं है। अतः राष्ट्रसभा ने मुस्लिम प्रदेशों को भारत से पृथक करने की स्वीकृति देदी तथा मुस्लिम लीग ने भी छोटा पाकिस्तान मान लिया।

५. ब्रिटिश सरकार की भारत विभाजन घोषणा

ब्रिटिश सरकार ने भी यह सोच कर कि भारत में होने वाले रक्तपात का उत्तरदायित्व अपने ऊपर लेना उचित न होगा, ३ जून को घोषणा कर दी कि भारत का विभाजन होगा तथा ३० जून १९४८ के स्थान पर कुछ मास में ही भारत में दो अधिराज्य बना दिये जायेंगे। भारत विभाजन के साथ साथ पंजाब तथा बंगाल का भी विभाजन करने का निश्चय किया गया। दोनों दलों ने निपटारे के लिये यह योजना मान ली क्योंकि लीग तो पाकिस्तान पाकर प्रसन्न थी चाहे वह छोटा ही था तथा राष्ट्रसभा इसलिए प्रसन्न थी कि उसके पास ८० प्रतिशत भारत रह जाता था। ३ जून १९४७ की घोषणा को इतनी शीघ्रता से कार्यान्वित किया गया कि १५ अगस्त १९४७ तक भारत में दो स्वतन्त्र अधिराज्य बन गये। ३ जून की घोषणा के अंश नीचे दिये जाते हैं।

"१. २० जनवरी १९४७ को बादशाह की सरकार ने अपनी यह इच्छा घोषित की थी कि वह ब्रिटिश भारत में अपने अधिकारों को जून १९४८ तक

भारतीयों को हस्तान्तरित कर देगी। उन्हें आशा थी प्रमुख दलों के लिये यह सम्भव हो सकेगा कि वे प्रतिनिधि मण्डल की १६ मई १९४६ की योजना को कार्यान्वित करने में पारस्परिक सहयोग करें तथा भारत के लिये एक संविधान बनायें। यह आशा पूर्ण नहीं हुई है।

२. मद्रास, बम्बई, युक्त प्रांत, बिहार, मध्य प्रांत, आसाम, उड़ीसा, सीमा प्रांत के बहु संख्यक प्रतिनिधि तथा दिल्ली; अजमेर मेरवाड़ तथा कुर्ग के प्रतिनिधि एक नया संविधान बनाने के कार्य में प्रगति कर चुके हैं। दूसरी ओर मुस्लिम लीग दल ने जिसमें ब्रिटिश बिलूचिस्तान का प्रतिनिधि तथा बंगाल, पंजाब और सिंध के बहुसंख्यक प्रतिनिधि सम्मिलित हैं संविधान सभा में भाग न लेने का निर्णय किया है।

३........भारतीय राजनैतिक दलों में समझौता न होने के कारण बादशाह की सरकार ने भारत के राजनैतिक नेताओं से खूब विचार विनिमय कर के इसके लिये निम्न योजना बनाई है............।

४. बादशाह की सरकार की यह इच्छा है कि वर्तमान संविधान सभा के कार्य को बीच में न रोका जाये। अब क्यों कि निम्न वर्णित प्रांतों के लिये उपबंध कर दिये जाते हैं, अतः ब्रिटिश सरकार को विश्वास है कि इस घटना के परिणाम स्वरूप संविधान सभा में संलग्न प्रांतों के मुस्लिम लीगी प्रतिनिधि भी अब इसमें अपना उपयुक्त भाग ले सकेंगे। साथ ही यह भी स्पष्ट है कि इस संविधान सभा द्वारा निर्मित संविधान देश के उन भागों पर लागू नहीं हो सकता जो कि इसे स्वीकार करने के इच्छुक नहीं हैं। बादशाह की सरकार को संतोष हो गया कि निम्नांकित प्रणाली उन प्रदेशों की इच्छा जानने की उत्त-मोत्तम क्रियात्मक परिपाटी है कि वे अपना संविधान—

(अ) वर्तमान संविधान सभा से बनवायेंगे, या

(ब) किसी नवीन तथा पृथक संविधान सभा से बनवायेंगे जिस में कि वर्तमान सभा में भाग न लेने के इच्छुक प्रदेशों के प्रतिनिधि होंगे।

जब यह हो चुकेगा, तब यह निश्चय करना संभव होगा कि किस प्राधिकारी या प्राधिकारियों को सत्ता हस्तान्तरित की जानी चाहिये।

५. बंगाल और पंजाब की व्यवस्थापिका सभाओं को पृथक पृथक कहा जायेगा कि वे यूरोपियन सदस्यों रहित दो भागों में एकत्रित हों। एक भाग मुस्लिम बहुल जिलों का तथा दूसरा शेष प्रांत का प्रतिनिधि होगा। जनसंख्या के विषय में १९४१ के संख्या के अंक माने जावेंगे। मुस्लिम बहुल जिले इस घोषणा की अनुसूची में दिये हैं।

अनुसूची में वर्णित जिले

१. पंजाब में :—लाहौर श्रेणी के : गुजरावाला, गुरुदासपुर, लाहौर, शेखूपुरा, स्यालकोट।

रावलपिंडी श्रेणी के : अटक, गुजरात, झेलम, मियांवाली, रावलपिंडी शाहपुर।

मुलतान श्रेणी के : डेरा गाजी खां, झंग, लायलपुर, मिंटगुमरी, मुलतान, मुजफ्फर गढ़।

(२) बंगाल में:—

चटगांव श्रेणी के : चटगांव, नवाखाली, तिप्परा।

ढाका श्रेणी के : बकरगंज, ढाका, फरीदपुर, मैननसिंह।

प्रादेशिक श्रेणी के : जैसोर, मुर्शीदावाद, नादिया।

राजशाही श्रेणी के : बोगरा, दिनजपुर, मालदा, पबना, रंगपुर, राजशाही।

६. प्रत्येक व्यवस्थापिका सभा के दो भागों के सदस्य यह मत देने के अधिकारी होंगे कि प्रांत विभाजित हो या न हो। यदि किसी भाग ने केवल बहुमत से विभाजन का निर्णय किया तो विभाजन हो जायेगा तथा तदनुसार व्यवस्था की जायेगी।

❀ ❀ ❀ ❀

८. विभाजन का निर्णय होने पर व्यवस्थापिका का प्रत्येक भाग अपने प्रदेशों की ओर से यह निर्णय करेगा कि उपर्युक्त कंडिका ४ में उल्लिखित किस मार्ग पर चलें।

९. सीमा आयोग : ....यह अल्पकाल के लिये केवल एक प्रारम्भिक कार्य है क्यों कि यह स्पष्ट है कि इन प्रांतों के अंतिम विभाजन के लिये सीमा विषक प्रश्नों के विस्तृत अनुसंधान की आवश्यकता होगी, तथा ज्यों ही किसी प्रांत के लिये विभाजन का निर्णय हो जावेगा त्यों ही एक सीमा आयोग

गवर्नर जनरल द्वारा नियुक्त किया जायेगा जिस के सदस्यों तथा कार्यक्षेत्र के विषय में सम्बन्धित व्यक्तियों से परामर्श कर लिया जायेगा। इसको निदेश दिया जायेगा कि पंजाब के दो भागों में मुस्लिम तथा अमुस्लिम बहुल प्रदेशों की सीमा निर्धारित करे। इसको अन्य परिस्थितियों को भी ध्यान में रखने का निदेश होगा। बंगाल सीमा आयोग को भी ऐसे ही निदेश होंगे। जब तक सीमा आयोग का निर्णय कार्यान्वित न हो तब तक अनुसूची में निर्दिष्ट प्रांतीय सीमायें प्रयुक्त होंगी।

१०. **सिंध** : सिंध की व्यवस्थापिका सभा भी यूरोपियन सदस्यों रहित एक विशेष बैठक में कंडिका चार के विषय में अपना निर्णय करेगी।

११. सीमाप्रांत की स्थिति विशेष है। इस प्रांत के तीन में से दो प्रतिनिधि वर्तमान संविधान सभा में इस समय भाग ले रहे हैं। किन्तु भौगोलिक स्थिति को ध्यान में रखते हुए तथा अन्य कारणों से यह स्पष्ट है कि यदि सारा पंजाब या उसका एक भाग वर्तमान संविधान सभा में न मिलने का निर्णय करे तो सीमा प्रान्त को अपनी स्थिति पर पुनर्विचार करने का अवसर देना आवश्यक होगा। तदनुसार वहां की धारा सभा के निर्वाचकों का मत लिया जायेगा कि वे कंडिका ४ में निर्दिष्ट किस मार्ग पर चलना चाहते हैं।

१२. ब्रिटिश बलूचिस्तान में भी उस प्रांत का मत जानने के लिये गवर्नर जनरल कोई मार्ग निकालेगा।

१३. **आसाम** : यद्यपि आसाम हिन्दू बहुल प्रांत हैं तथापि सिलहट का जिला, जो बंगाल से स्पर्श करता है, मुख्यतः मुस्लिम है।.........यदि बंगाल विभाजन का निर्णय हो जाता है तो सिलहट में मत लिए जायेंगे कि वह आसाम में रहे या पूर्वी बंगाल में मिल जाए। यदि बंगाल में मिलने का निश्चय हुआ तो उसके लिए भी बंगाल तथा पंजाब के समान एक सीमा आयोग बनेगा जो सिलहट तथा स्पर्श करने वाले अन्य जिलों के मुस्लिम भागों को पृथक करेगा तथा वे पूर्वी बंगाल में मिला दिए जायेंगे। शेष आसाम वर्तमान संविधान सभा में भाग लेता रहेगा।

दोनों संविधान सभाओं में प्रतिनिधित्व

१४. यदि यह निर्णय हो जाए कि बंगाल और पंजाब विभाजित होंगे तो प्रतिनिधि मण्डल योजना के अनुसार उनके प्रतिनिधियों को १० लाख के

पीछे १ के क्रम से पुनः चुनना आवश्यक होगा। यदि सिलहट पूर्वी बंगाल में मिलने का निर्णय करले तो उसके विजय में भी इसी प्रकार निर्वाचन होंगे। प्रत्येक प्रदेश को निम्न संख्या में प्रतिनिधि चुनने का अधिकार होगा :

प्रान्त	व्यापक	मुस्लिम	सिख	योग
सिलहट जिला	१	२	:	३
पश्चिमी बंगाल	१५	४	:	१६
पूर्वी बंगाल	१२	२६	:	४१
पश्चिमी पंजाब	३	१२	२	१७
पूर्वी पंजाब	६	४	२	१२

शासन व्यवस्था

१६. विभाजन का निर्णय होने पर यथासम्भव शीघ्रातिशीघ्र विभाजन के प्रशासन विषयक परिणामों के विषय में

(अ) केन्द्रीय सरकार द्वारा संभाले हुए विषयों पर, जिन में सुरक्षा, धन, यातायात भी हैं, दोनों उत्तराधिकारी सरकारों के बीच,

(ब) सत्ता हस्तान्तरित करने से सम्बद्ध विषयों पर उत्तराधिकारी सरकारों तथा बादशाह की सरकार के बीच,

(ज) विभाजित होने वाले प्रान्तों के विषय में प्रान्तीय विषयों की व्यवस्था के लिये यथा सम्पत्ति और ऋण, पुलिस तथा अन्य सेवाओं, उच्च न्यायालय, प्रान्तीय संस्थाओं आदि के विभाजन के लिये, वार्ता प्रारम्भ करनी होगी।

देशी राज्य

१८. बादशाह की सरकार यह स्पष्ट कर देना चाहती है कि उपरोक्त विनिश्चय केवल ब्रिटिश भारत के विषय में हैं तथा उन से देशी राज्यों के विषय में प्रतिनिधि मंडल द्वारा घोषित नीति में कोई अन्तर न आयेगा।

तत्काल सत्ता हस्तान्तरित होगी

२०. मुख्य राजनैतिक दलों ने बार बार यह इच्छा प्रकट की है कि सत्ता हस्तांतरित करने का कार्य शीघ्रातिशीघ्र होना चाहिये। बादशाह की सरकार को इस इच्छा से पूर्ण सहानुभूति है तथा वे ३० जून १९४८ से पहले भी शीघ्र ही स्वतन्त्र भारत की सरकार या सरकारें बनाने के लिये तैयार हैं। इस इच्छा को पूरी करने की अत्यन्त सुविधाजनक तथा एकमात्र व्यवहारिक प्रणाली के अनुसार ब्रिटिश सरकार का विचार है कि वह इस घोषणा के अनुसार विभाजन का निर्णय होने पर वर्तमान अधिवेशन में ही विधेयक रखेगी जिससे कि इसी वर्ष एक या दो सरकारों को, जैसे भी निर्णय हो, इस वर्ष के अंत तक अधिराज्य पद के आधार पर सत्ता हस्तांतरित कर दी जाये। इस से संविधान सभाओं का यह अधिकार नहीं छिनेगा कि वह उचित समय पर यह निश्चित करें कि जिस प्रदेश पर उसका अधिकार है वह ब्रिटिश राष्ट्र मंडल में रहेगा या नहीं।"

६. पाकिस्तान सम्बन्धी आंकड़े

उपर्युक्त घोषणा के पश्चात सिलहट, पश्चिमी पंजाब, पूर्वी बंगाल, सिंध तथा ब्रिटिश बलूचिस्तान ने घोषणा के अनुसार अपना निर्णय किया तथा वे सब पाकिस्तान में मिलने के पक्ष में थे।

सीमाप्रान्त राष्ट्रसभा का प्रान्त था किन्तु अपनी भौगोलिक स्थिति के कारण उनके लिए भारत में मिलना असम्भव था। अतः उन्हों ने मांग की कि उनसे जनमत-गणना में यह पूछा जाए कि वे पाकिस्तान में मिलना चाहते हैं अथवा स्वतन्त्र होना चाहते हैं। पर ब्रिटिश सरकार ने केवल उनसे यही पूछा कि 'आप पाकिस्तान में मिलना चाहते हैं या भारत में।' इसके विरोध स्वरूप राष्ट्रसभा के समर्थकों ने जनमत-गणना में भाग नहीं लिया। अतः सीमाप्रांत का निर्णय भी पाकिस्तान के पक्ष में ही माना गया, यद्यपि वहां अधिकांश मत दाताओं ने जनमत-गणना में भाग नहीं लिया था।

अन्त में गवर्नर जनरल ने पाकिस्तानी प्रदेश के लिए एक पृथक संविधान सभा बनवादी तथा विभाजन कार्य आरम्भ हो गया। जो भाग पाकिस्तान में चले गए उनका क्षेत्रफल तथा जन संख्या निम्न प्रकार हैं:—

	क्षेत्रफल	कुल जनसंख्या	मुस्लिम	अमुस्लिम
पूर्वी पाकिस्तान (पूर्वी बंगाल तथा सिलहट)	५६,००६ वर्गमील	४,५१ लाख	३,०६ लाख	१४५ लाख
पश्चिमी पाकिस्तान	१,८०,६२० वर्गमील	२,५० लाख	१,८० लाख	७० लाख
योग...........	२,३६,६२६ वर्गमील	७,०१ लाख	४,८६ लाख	२,१५ लाख

सीमा आयोगों ने इस में साधारण से परिवर्तन किए थे।

विभाजन का निर्णय होते ही एक विभाजन कार्यालय खोला गया तथा प्रत्येक विभाग के लिए विभाजन विशेषज्ञ समितियां नियुक्त हुईं और उनके ऊपर एक मन्त्रिमण्डल की 'विशेष समिति' भी बनाई गई। इन समितियों ने अत्यधिक द्रुतगति से भारत विभाजन कर डाला।

७. भारतीय स्वतन्त्रता अधिनियम

१८ जुलाई १९४७ को बादशाह ने संसद द्वारा स्वीकृत अधिनियम पर हस्ताक्षर कर दिए जिसका उद्देश्य "भारत में दो स्वतन्त्र अधिराज्यों को स्थापित करना" था। इस में लिखा था :

धारा १. नये अधिराज्य : (१) १५ अगस्त १९४७ से भारत में दो स्वतन्त्र अधिराज्य स्थापित होंगे जो भारत तथा पाकिस्तान कहलायेंगे।

(२) कथित अधिराज्य इस अधिनियम में 'नवीन अधिराज्य' के नाम से पुकारे जायेंगे तथा कथित १५ अगस्त को 'नियुक्त दिवस' के नाम से पुकारा जाएगा।

धारा २. नवीन अधिराज्यों के प्रदेश : (१) इस धारा की उपधाराओं (३) तथा (४) के अन्तर्गत भारत के राज्यक्षेत्र में वे प्रदेश सम्मिलित होंगे जो कि नियुक्त दिवस के पहले ब्रिटिश भारत में सम्मिलित थे किन्तु वे

प्रदेश नहीं होंगे जो कि इस धार की उपधारा (२) के अनुसार पाकिस्तान के प्रदेश होंगे।

(२) इस धारा की उपधारा (३) तथा (४) के अन्तर्गत पाकिस्तान के निम्न लिखित प्रदेश होंगे।

(अ) वे प्रदेश जो आगामी दो धाराओं के अनुसार नियुक्त दिवस को पूर्वी बंगाल और पश्चिमी पंजाब में सम्मिलित किए जायेंगे।

(ब) वे प्रदेश जो इस अधिनियम की स्वीकृति के समय सिंध प्रांत तथा ब्रिटिश बलूचिस्तान के चीफ कमिश्नरी प्रान्तों में निहित हैं, तथा

(ज) यदि नियुक्त दिवस के पहले गवर्नर जनरल यह घोषणा कर दे कि सीमाप्रान्त में हुए जनमत संग्रह में बहुमत पाकिस्तान संविधान सभा में भाग लेने के पक्ष में है तो वे प्रदेश जो उस प्रांत में निहित हैं।

(३) इस धारा का अर्थ यह नहीं होगा कि किसी प्रदेश को किसी नवीन अधिराज्य में मिलना या उससे पृथक होना वर्जित है, किन्तु

(अ) कोई प्रदेश जो उपधारा (१) या (२) में वर्णित प्रदेशों में सम्मिलित नहीं है वह उस सम्बन्धित अधिराज्य की इच्छा के बिना उस में सम्मिलित नहीं हो सकता।

(ब) कोई प्रदेश जो उपधारा (१) के प्रदेश या उपधारा (२) के प्रदेश मेंसम्मिलित हैं या जो 'नियुक्त दिवस' के पश्चात उसमें सम्मिलित कर लिया गया है वह उस अधिराज्य की इच्छा के बिना उससे पृथक नहीं किया जा सकता।

(४) उपधारा (३) के उपबन्धों की व्यापकता के विपरीत न होते हुए इस धारा का यह भी अर्थ नहीं लगाया जाएगा कि देशी राज्यों का किसी नवीन अधिराज्य में मिलना वर्जित है।

धारा ३. बंगाल तथा आसाम :

(१) नियुक्त दिवस से :

(अ) १९३५ के भारतीय संविधान के अन्तर्गत जो बंगाल प्रांत है उसका अस्तित्व नहीं रहेगा, तथा

(ब) इस के स्थान पर दो नए प्रांत बन जायेंगे जो कि पूर्वी बंगाल तथा पश्चिमी बंगाल कहलायेंगे।

(२) यदि 'नियुक्त दिवस' से पहले गवर्नर जनरल यह घोषणा करदे की सिलहट जिले में हुये जनमत संग्रह में बहुमत सिलहट को पूर्वी बंगाल का भाग बनाने के पक्ष में है तो उस दिन से आसाम प्रान्त का एक भाग इस धारा की उपधारा (३) के अनुसार पूर्वी बंगाल के नवीन प्रान्त का भाग बन जायेगा।

(३) उल्लिखित नवीन प्रान्तों की सीमायें, तथा उपधारा (२) में उल्लिखित अवस्था होने पर आसाम की सीमायें वे होंगी जो कि गवर्नर जनरल द्वारा नियुक्त सीमा निर्णायक आयोग के निर्णय से निश्चित हों, किन्तु तब तक:

(अ) इस अधिनियम के प्रथम अनुसूची में लिखित बंगाल के जिले, तथा उपधारा (२) वाली अवस्था होने पर आसाम का सिलहट जिला पूर्वी बंगाल के नये प्रान्त में समझा जायेगा।

(ब) बंगाल प्रान्त के शेष प्रदेश नवीन पश्चिमी बंगाल में समाविष्ट समझे जायेंगे।

(ज) उपधारा (२) की अवस्था होने पर सिलहट आसाम प्रान्त में से निकल जायेगा।

(४) इस धारा में निर्णय का अर्थ है सीमा आयोग के अध्यक्ष का निर्णय जो कि वह अन्त में अपनी रिपोर्ट में गवर्नर जरनल को प्रस्तुत करे।

सूचना: प्रथम अनुसूची में उल्लिखित जिले ये थे: चटगांव, नवाखाली, तिप्परा, बकरगंज, ढाका, फरीदपुर, मैमनसिंह, जेसोर, मुरशीदाबाद, नादिया, बोगरा, दिनाजपुर, मालदा, पबना, राजशाही, रंगपुर।

धारा ४. पंजाब:

१. नियुक्त दिवस से:

(अ) १९३५ के भारतीय शासन अधिनियम के कथित पंजाब प्रान्त का अस्तित्व नहीं रहेगा।

(ब) दो नये प्रान्त बना दिये जायेंगे जो पूर्वी पंजाब तथा पश्चिमी पंजाब कहलायेंगे।

(२) कथित नये प्रान्तों की सीमायें वे होंगी जो कि गवर्नर जनरल ारा नियुक्त सीमा आयोग के निर्णय से निश्चित हों, किन्तु इस निर्णय तक

(अ) इस अधिनियम के द्वितीय अनुसूची में उल्लिखित जिले नवीन पश्चिमी पंजाब के प्रदेश समझे जायेंगे।

(ब) पंजाब प्रान्त के शेष जिले नवीन पूर्वी पंजाब प्रान्त के प्रदेश समझे जायेंगे।

(३) इस धारा में निर्णय का अर्थ है सीमा समिति के अध्यक्ष का नर्णय जो कि वह कार्य के अन्त में अपनी रिपोर्ट में गवर्नर जनरल को स्तुत करे।

द्वितीय अनुसूची में निम्न जिले वर्णित थे : गुजरांवाला, गुरदासपुर, ाहौर, शेखुपुरा, सयालकोट, अटक, गुजरात, झेलम, मियांवाली, शाहपुर, रा गांजीखां, झंग, लायलपुर, मिंटगुमरी, मुलतान तथा मुज्जफरगढ़।

धारा ५ : नवीन अधिराज्य का गवर्नर जरनल : प्रत्येक नवीन ाधिराज्य के लिये एक गवर्नर जरनल होगा जो कि बादशाह द्वारा नियुक्त ोगा तथा उस अधिराज्य के शासन के हेतु बादशाह का प्रतिनिधि होगा।

किन्तु जब तक किसी अधिराज्य का व्यवस्थापक मण्डल इसके विप- ीत उपबंध न करे तब तक एक ही व्यक्ति दोनों अधिराज्यों का गवर्नर जनरल ह सकता है।

धारा ६ : नये उपनिवेशों के व्यवस्थापक मंडल (१) दोनों वीन अधिराज्यों के व्यवस्थापक मंडलों को अपने अधिराज्य के लिये अधि- ायम बनाने की पूर्ण शक्ति होगी तथा वे प्रदेश के बाहर प्रभाव रखने वाले ाधिनियम भी बना सकते हैं।

(२) किसी नवीन अधिराज्य के व्यवस्थापक मंडलों द्वारा निर्मित कसी अधिनियम का कोई उपबंध इस कारण अनियमित या प्रभावहीन

नहीं होगा कि वह ब्रिटेन के किसी अधिनियम के विरुद्ध है या इस अधि-नियम या किसी ब्रिटिश संसद् के किसी अन्य वर्तमान या भावी अधिनियम के विरुद्ध है या ऐसे किसी अधिनियमके अन्तर्गत बने हुए किसी नियम, उपनियम या आज्ञा के विरुद्ध है और प्रत्येक अधिराज्य के व्यवस्थापक मण्डल में भी शक्ति होगी कि वह ऐसे किसी अधिनियम, नियम, उपनियम, या आज्ञा को रद्द कर सकता है जहां तक कि वह उस अधिराज्य पर लागू हो।

(३) प्रत्येक नवीन अधिराज्य के गवर्नर जनरल को पूर्ण अधिकार होगा कि वह बादशाह के नाम से उस अधिराज्य के व्यवस्थापक मण्डल के किसी अधिनियम की स्वीकृति दे सकता है तथा किसी अधिनियम का वह भाग, जो कि अधिनियमों को बादशाह द्वारा अस्वीकृत करने या उन्हें बादशाह की स्वीकृति के लिये रखने या बादशाह की स्वीकृति मिलने तक उनको रोकने के सम्बन्ध में हो, किसी नवीन अधिराज्य के व्यवस्थापक मण्डल के अधिनियमों पर लागू नहीं होगा।

(४) ब्रिटिश संसद् का कोई अधिनियम जो 'नियुक्त दिवस' को या तत्पश्चात स्वीकृत हो, किसी नवीन अधिराज्य पर लागू नहीं होगा और न लागू समझा ही जायेगा जब तक कि उस अधिराज्य के किसी अधिनियम द्वारा वह उस पर लागू न किया जाये।

(५) कोई ऐसी राज-आज्ञा जो नियुक्त दिवस के पश्चात या उसी दिन दी गई हो तथा ऐसे अधिनियम के अन्तर्गत हो जो कि नियुक्त दिवस से पहले स्वीकृत हुआ हो तथा कोई भी आज्ञा, नियम या अन्य पत्र जो ऐसे अधिनियम के अन्तर्गत किसी ब्रिटिश मन्त्री द्वारा या उसकी आज्ञा द्वारा बनाया गया हो नवीन अधिराज्यों पर उनके अधिनियम के रूप में लागू नहीं होंगे और न ही लागू समझे जायेंगे।

(६) इस धारा की उपधारा (१) में उल्लिखित शक्ति में उपनिवेशों के भावी व्यवस्थापक मण्डलों की भावी शक्ति को सीमित करने के लिए अधि-नियम बनाने की शक्ति सम्मिलित है।

धारा ७. नवीन अधिराज्यों के बनने के परिणाम : (१) नियुक्त दिवस से :

(अ) ब्रिटेन में बादशाह की सरकार का उन प्रदेशों के विषय में कोई उत्तरदायित्व नहीं होगा जो कि नियुक्त दिवस से पहले ब्रिटिश भारत में थे।

(ब) देशी राज्यों पर बादशाह का प्रभुत्व समाप्त हो जायेगा तथा इसके साथ सारी संधियां और समझौते जो इस समय बादशाह और भारतीय नरेशों के बीच उनके राज्यों के विषय में हैं, बादशाह के सारे कर्तव्य जो कि देशी राज्यों या उनके नरेशों के प्रति हैं, तथा बादशाह की सारी शक्ति, अधिकार या कार्य-क्षेत्र जो किसी संधि, परम्परा, सनद द्वारा या अन्यथा देशी राज्यों के विषय में बादशाह को मिले हुए हैं वे भी समाप्त हो जायेंगे तथा

(ज) सारी संधियां तथा समझौते जो इस समय बादशाह तथा कबाइली प्रदेशों में अधिकार वाले किसी व्यक्ति के बीच हैं वे भी समाप्त हो जावेंगे तथा बादशाह के कबाइली प्रदेशों से सम्बन्ध में तथा ऐसे व्यक्ति के प्रति सारे कर्तव्य, एवं बादशाह की सारी शक्ति, अधिकार या कार्यक्षेत्र जो किसी संधि, परम्परा, सनद द्वारा या अन्यथा कबाइली प्रदेशों के सम्बन्ध में सम्राट को प्राप्त हैं, वे भी समाप्त हो जावेंगे।

किन्तु इस उपधारा की कंडिका (ब) तथा (ज) के आदेशों के उपरांत भी संचार, यातायात, आयात-निर्यात, डाक व तार तथा इसी प्रकार के अन्य विषयों पर जो भी समझौते हैं उन के उपबन्धों पर तब तक यथासम्भव कार्य होता रहेगा जब तक कि उन आदेशों को एक ओर से देशी नरेश या कबाइली प्रदेशों के अधिकारी अथवा दूसरी ओर से अधिराज्य या प्रांत या उसका कोई भाग रद्द करने की घोषणा न करदे या बाद के समझौतों से वे रद्द न हो जायें।

(२) ब्रिटिश संसद की ओर से सहमति दी जाती है कि बादशाह की उपाधियों और नाम में से 'भारतीय सम्राट' शब्द निकाल दिए जायें तथा बादशाह इस विषय में घोषणा कर सकता है।

धारा ८. नवीन अधिराज्यों के शासन के लिए अल्पकालीन उपबंध : (१) प्रत्येक नवीन अधिराज्य के लिए व्यवस्थापक मण्डल की शक्ति का प्रयोग प्रथम तो उस अधिराज्य की संविधान सभा करेगी तथा इस अधिनियम में अधिराज्य के व्यवस्थापक मण्डल का अर्थ भी यही लगाया जायेगा।

(२) इस धारा की उपधारा (१) के अनुसार अधिराज्य की संविधान सभा जो उपबन्ध बनाए उसकी अनुपस्थिति में प्रत्येक अधिराज्य का शासन यथासंभव १९३५ के भारतीय शासन अधिनियम के अनुसार होगा, तथा उस अधिनियम के उपबन्ध इस अधिनियम के उपबन्धों के अन्तर्गत एवं उन परिवर्तनों, संशोधनों एवं पूरकों के अन्तर्गत जो कि आगामी धारा के अनुसार गवर्नर जनरल की आज्ञाओं से हों, लागू होंगे।

किन्तु :

(अ) कथित उपबन्ध दोनों अधिराज्यों पर पृथक पृथक लागू होंगे तथा इस उपधारा का यह अर्थ न होगा कि नियुक्त दिवस के पश्चात या उस दिन कोई भी केन्द्रीय शासन या व्यवस्थापक मण्डल दोनों के लिए सामान्य रहे।

(ब) इस उपधारा का यह अर्थ नहीं होगा कि नियुक्त दिवस को या तदन्तर ब्रिटिश बादशाह की सरकार का नवीन अधिराज्यों या किसी प्रांत या उनके किसी भाग पर कोई नियन्त्रण रहे।

(ज) नियुक्त दिवस से वे उपबन्ध जिन के अनुसार गवर्नर जनरल या किसी गवर्नर को अपनी इच्छानुसार कार्य करने या निर्णय करने की अनुमति थी समाप्त हो जायेंगे।

(द) नियुक्त दिवस से कोई भी प्रांतीय विधेयक १९३५ के भारतीय शासन अधिनियम के अन्तर्गत बादशाह की सहमति के लिए नहीं रोका जायेगा तथा बादशाह द्वारा उसके अन्तर्गत कोई भी प्रांतीय विधेयक अस्वीकृत नहीं किया जायेगा।

(इ) इस धारा की उपधारा (१) में वर्णित शक्तियों के अतिरिक्त संविधान के अन्तर्गत भारतीय या संघीय व्यवस्थापक मण्डल की सारी शक्ति भी संविधान सभा में निहित होगी।

३. भारतीय शासन अधिनियम १९३५ का कोई उपबन्ध जो कि इस धारा की उपधारा (२) के अनुसार किसी अधिराज्य पर लागू होता है या उसमें वर्णित कोई आज्ञायें जो कि उस अधिराज्य के व्यवस्थापक मण्डल की शक्ति को सीमित करते हों उस अधिराज्य के व्यवस्थापक मण्डल के अधिनियम के समान प्रभावशील होंगे जब तक कि इस धारा की उपधारा (२) के अनुसार उस उपनिवेश की संविधान सभा कोई उपबन्ध न बनाए।

धारा ६. इस अधिनियम को लागू करने के लिए आज्ञायें :

(१) गवर्नर जनरल आज्ञा देकर निम्न उद्देश्यों से ऐसा उपबंध बना सकता है जो कि उसे आवश्यक या सुविधाजनक दिखता हो :

(अ) इस अधिनियम के उपबन्धों को कार्यान्वित करने के लिए;

(ब) नये अधिराज्यों में सपरिषद् गवर्नर जनरल की तथा उन प्रान्तों की जो समाप्त होंगे शक्तियों, अधिकारों, सम्पत्ति, कर्तव्य, ऋणों, आदि को विभाजित करने के लिए;

(ज) नये अधिराज्यों में लागू होने के लिये १९३५ के भारतीय शासन अधिनियम तथा उसके अन्तर्गत राज-आज्ञाओं, नियमों तथा अन्य पत्रों को संशोधित करने, घटाने, बढाने या अनुकूल बनाने के लिये;

(द) इस अधिनियम के उपबंधों के अनुसार परिवर्तन के सम्बन्ध में कठिनाइयों को दूर करने के लिये;

(इ) १९३५ के भारत शासन अधिनियम की नवम अनुसूची के अतिरिक्त किसी अन्य प्रकार से इस अधिनियम की स्वीकृति के पश्चात् तथा नियुक्त दिवस से पहले सपरिषद् गवर्नर जनरल का का कार्य चलाने के लिये;

(फ) नियुक्ति दिवस से पहले दोनों अधिराज्यों की ओर से संधियां तथा अन्य कार्य करवाने के लिये;

(ग) नये दो या अधिक प्रान्तों के वे कार्य नये अधिराज्यों की ओर से करवाने के लिये जो कि पहले पुराने प्रांतों या ब्रिटिश भारत की ओर से किये जाते थे;

(ह) रिजर्व बैंक सम्बन्धी किसी मामले को या मुद्रा व्यवस्था को नियमित करने के लिये; तथा।

(ई) उपर्युक्त विषयों पर जिस हद तक यह आवश्यक या सुविधाजनक दिखाई दे, उस हद तक नये अधिराज्यों में किसी व्यवस्थापक मंडल, न्यायालय या अधिकारी की शक्तियों, कार्यक्षेत्रों या व्यवस्था में परिवर्तन करने के लिये।

(२) समाप्त होने वाले प्रांतों के गवर्नर इस धारा के अधिकारों का अपने अपने प्रान्त में प्रयोग कर सकेंगे।

(३) यह धारा ३ जून १९४७ से कार्यान्वित हुई समझी जायेगी। इसके अतिरिक्त उस अधिनियम में सेवाओं, सेना, अदन तथा भारत से ब्रिटिश सेना के निष्क्रमण के विषय में उपबंध थे।

८. स्वतन्त्रता अधिनियम के परिणाम

१. इस अधिनियम को बनाकर संसद ने अपनी ३ जून की घोषणा को पूरा किया था। इस में भारत का विभाजन सर्वथा साम्प्रदायिक आधार पर हुआ और आसाम, पूर्वी पंजाब तथा पश्चिमी बंगाल भारत को प्राप्त हो गये।

२. दोनों राज्यों को अधिराज्य पद मिल गया अर्थात् ब्रिटेन की संसद को भारत तथा पाकिस्तान के लिये कोई अधिनियम बनाने का अधिकार नहीं रहा। हमें यह भी अधिकार हो गया कि हम जब चाहें पूर्ण स्वतन्त्र हो जायें।

३. केन्द्र में दोनों सदन विघटित होगये तथा संविधान सभा ही व्यवस्थापक मंडल बन गई।

४. गवर्नरों और गवर्नर जनरल के विशेषाधिकार समाप्त हो गये।

५. भारत सम्राट अन्य अधिराज्यों के समान भारत का भी बादशाह ही रह गया।

६. देशी राज्य स्वतन्त्र हो गये तथा कबाइली भी संधिमुक्त हो गये।

७. १५ अगस्त तक आवश्यकतानुसार शासन कार्य चलाने के लिये गवर्नर जनरल को पूर्ण अधिकार मिल गये तथा उसने जुलाई में ही दोनों देशों की भिन्न भिन्न सरकारें बना दीं जिससे कि वे विभाजन समझौते के लिये वार्ता कर सकें।

८. भारत से अंग्रेजी अफसर आदि त्यागपत्र देकर ब्रिटेन या पाकिस्तान जाने लगे।

९. राष्ट्रसभा के मंत्रिमण्डल ने कुछ अधिकारियों के अतिरिक्त शेष सारे बड़े पदाधिकारी भारतीय ही नियुक्त कर दिये।

१९४७ के भारतीय स्वतन्त्रता अधिनियम के अन्तर्गत गवर्नर जनरल ने कई आज्ञायें निकालीं और इस प्रकार अनुकूल बनाया हुआ तथा संशोधित १९३५ का भारत शासन अधिनियम लगभग २ वर्ष तक भारत के संविधान का काम देता रहा। इन दो वर्षों के काल में भारत अधिराज्य ही रहा, किन्तु अन्त में भारत द्वारा यह इच्छा प्रकट करने पर कि भारत बादशाह को नहीं मानना चाहता, ब्रिटिश राष्ट्र मंडल ने एक नई व्यवस्था बनाई, जिससे कि भारत को जनतन्त्रात्मक गणराज्य घोषित होने के पश्चात भी राष्ट्रमंडल का सदस्य रहने दिया गया।

कामनवैल्थ के देशों के प्रधान मन्त्रियों ने, जिनमें कि भारत के प्रधान मन्त्री माननीय श्री जवाहरलाल नेहरू भी थे, लंदन में समवेत होकर २७ अप्रैल १९४९ को जो घोषणा की थी, वह इस प्रकार है:—

"यूनाइटेड किंगडम, कनाडा, आस्ट्रेलिया, न्यूजीलैंड, दक्षिण अफ्रीका, भारत, पाकिस्तान और लंका की सरकारों ने, जिनके देश ब्रिटिश कामनवैल्थ आफ नेशन्स के सदस्य होने के नाते आपस में संयुक्त हैं और ताज के प्रति, जो उनकी स्वतन्त्रतामय संयुक्ति का प्रतीक भी है, समान रूप से निष्ठा रखते हैं, भारत में शीघ्र होने वाले संवैधानिक परिवर्तनों पर विचार किया है।

"भारत सरकार ने कामनवैल्थ की दूसरी सरकारों को भारतीय जनता के इस अभिप्राय की सूचना दे दी है कि नये संविधान के आधीन, जो स्वीकृत होने वाला है, भारत सम्पूर्ण प्रभुत्व सम्पन्न स्वतन्त्र गणराज्य हो जायेगा। किन्तु भारत सरकार ने यह घोषित किया है और इस बात की पुष्टि की है कि भारत चाहता है कि वह कामनवैल्थ का सदस्य बना रहे और यह कि उसे यह स्वीकार है कि ब्रिटिश बादशाह कामनवैल्थ के स्वतन्त्र सदस्य राष्ट्रों के पारस्परिक स्वतन्त्र सम्बन्ध के प्रतीक हैं और इस नाते वह कामनवैल्थ के प्रधान हैं।

"कामनवैल्थ के अन्य देशों की सरकारें, जिन की सदस्यता का आधार इस के द्वारा परिवर्तित नहीं होगा, यह स्वीकार करती हैं और इस निश्चय को मान्यता प्रदान करती हैं कि प्रस्तुत घोषणा के शब्दानुसार भारत की कामन-वैल्थ की सदस्यता बनी रहेगी।

तदनुसार यूनाइटेड किंगडम, कनाडा, आस्ट्रेलिया, न्यूजीलैंड, दक्षिणी अफ्रीका, भारत, पाकिस्तान और लंका एतद्द्वारा घोषणा करते हैं कि कामनवैल्थ आफ नेशन्स के स्वतन्त्र तथा समान सदस्य होने के नाते वे परस्पर संयुक्त रहेंगे और शांति, स्वतन्त्रता तथा समुन्नति के हेतु आपस में अबाध रूपसे सहयोग करते रहेंगे।"

इस घोषणा का अनुमोदन संविधान सभा ने प्रस्ताव द्वारा किया किन्तु इसे संविधान का भाग नहीं बनाया गया।

९. संविधान-निर्माण

जैसा कि पहले वर्णन किया जा चुका है ९ दिसम्बर १९४६ को भारतीय संविधान सभा का जन्म हुआ था। उस समय यह सभा मन्त्री प्रतिनिधि-मण्डल योजना के अनुसार बनी थी, अतः वह सम्पूर्ण-प्रभुत्व-सम्पन्न नहीं थी। उसे कथित योजना की कार्यप्रणाली के अनुसार कार्य करना था। पर मुस्लिम लीग ने इस सभा में सहयोग देने से इंकार कर दिया तथा भारत और पाकिस्तान के लिये पृथक पृथक संविधान सभाओं की मांग की। अंत में भारत विभाजन की घोषणा होने पर, भारतीय स्वतन्त्रता अधिनियम के अनुसार भारतीय संविधान सभा एक सम्पूर्ण प्रभुत्व सम्पन्न

निकाय बन गई और १४ अगस्त १९४७ को रात्रि के १२ बजे संविधान सभा ने भारत का शासन अपने हाथ में ग्रहण कर लिया।

सम्पूर्ण प्रभुत्व-सम्पन्न संविधान सभा के अधिवेशन में एक लक्ष्य-मूलक प्रस्ताव पारित हुआ, जिसमें बताया गया कि सभा ऐसा संविधान बनायेगी :

"जिसमें सम्पूर्ण प्रभुत्वसम्पन्न स्वतन्त्र भारत की और इसके अंगभूत भागों की तथा इसके शासन के अंगों की शक्ति और अधिकार जनता से प्राप्त होंगे; और

जिसमें भारत के सब लोगों के लिये सामाजिक, आर्थिक और राजनैतिक न्याय की; प्रतिष्ठा तथा अवसर की और कानून की दृष्टि में समानता की; विचार, अभिव्यक्ति, विश्वास, धर्म, उपासना, आजीविका और कारोबार की स्वतन्त्रता की; कानून तथा सदाचार के आधीन रहते हुए प्रत्याभूति दी जायेगी और निश्चय से प्राप्ति करायी जायेगी; और

जिसमें अल्पसंख्यकों, अनुन्नत आदिमजातियों के क्षेत्रों, और दलित तथा अन्य अनुन्नत वर्गों के लिये पर्याप्त संरक्षण की व्यवस्था की जायेगी; और

जिसमें लोकतंत्र के राज्यक्षेत्र की एकता की, और जल, थल तथा नभ में इसके प्रभुता के अधिकारों की, न्यायानुसार और सभ्य राष्ट्रों के कानून के अनुसार रक्षा की जायेगी; और यह प्राचीन देश संसार में अपना अधिकारपूर्ण तथा सम्मानित स्थान प्राप्त करता हुआ, विश्व में शांति, विकास तथा मानव कल्याण की उन्नति में स्वेच्छा से अपना भाग प्रदान करेगा।"

इस प्रस्ताव के आधार पर स्वतन्त्र भारत का संविधान बनाया गया। पहले संविधान की रूपरेखा निश्चित करने के लिये निम्न समितियाँ नियुक्त की गईं (जिनमें से कुछ का उल्लेख पहले किया जा चुका है) :

(१) संघ संविधान समिति

(२) प्रांतीय संविधान समिति

(३) अल्पसंख्यक तथा मूलाधिकार संबंधी परामर्शदात्री समिति
(४) मुख्य आयुक्तों और संघ तथा राज्यों में वित्तीय संबन्धों की समितियाँ

(५) आदिमजातीय क्षेत्र परामर्शदात्री समिति

इन समितियों ने उपसमितियाँ भी नियुक्त कीं और अंत में अपने प्रतिवेदन पेश किये जिन पर सभा ने विचार किया।

इस प्रकार संविधान के सिद्धान्त निश्चित कर दिये गये और उन्हें कानून का रूप देने के लिये एक 'मस्विदा समिति' नियुक्त हुई जिसने 'संविधान का मस्विदा' तैयार किया।

तत्पश्चात संविधान सभा ने 'संविधान के मस्विदे' पर खंडशः विचार किया तथा कई परिवर्तन किये। अंत में २६ नवम्बर १९४९ को संविधान अंतिम रूप से स्वीकृत हो गया और २६ जनवरी १९५० से लागू हो गया।

याद रहे २६ जनवरी १९३० के दिन भारत ने 'स्वतन्त्रता प्राप्ति' तथा 'अंग्रेजों से सम्बन्ध-विच्छेद' करने की प्रतिज्ञा की थी जो प्रतिवर्ष २६ जनवरी को दोहराई जाती थी। इस कारण १९५० में २६ जनवरी को ही भारत को 'गणराज्य' घोषित किया गया।

छठा अध्याय

देशी राज्यों की समस्या का समाधान

१. संघ में प्रवेश

स्वतन्त्रता का आश्वासन मिलने पर तथा अंग्रेजों का संरक्षण हटते ही देशी नरेशों का रुख भी बदल गया। अब वे समझने लगे कि उन्हें भारत से मैत्री आवश्यक है तथा इसके बिना उनकी रक्षा नहीं हो सकती, अतः वे भारत में मिलने के लिये उत्सुक हो उठे।

भारत में २० के लगभग बड़े देशी राज्य थे जिन की जनसंख्या ६करोड़ से ऊपर थी अर्थात वे इस योग्य थे कि उन्हें संविधान सभा में पृथक रूप से प्रतिनिधित्व मिल सके। शेष ५३५ छोटे छोटे देशी राज्य थे जिन की जनसंख्या और आय इतनी कम थी कि वे प्रगति नहीं कर सकते थे तथा जनता के लिए कुशल शासन प्रबन्ध की व्यवस्था नहीं कर सकते थे। उन सब को पहले तो भारतीय संघ में सम्मिलित करने का प्रश्न था, तत्पश्चात भारत सरकार चाहती थी कि छोटे छोटे राज्यों को या तो भारत के किसी प्रान्त में विलीन करके उनके नरेशों को पैन्शन दे दी जाये या छोटे छोटे निकटवर्ती राज्यों को मिलाकर बड़े बड़े राज्य संघ बना दिये जायें, जिससे कि प्रशासन

सुचारू रूप से चल सके। इसके अतिरिक्त राज्यों में जनतंत्र प्रणाली भी लागू करना आवश्यक था जिससे कि वहां निरंकुशता के नीचे पिसी हुई जनता भी स्वतंत्रता का उपभोग कर सके।

भारत सरकार के राज्य विभाग के मन्त्री सरदार पटेल ने साम, दाम, दंड, भेद की नीति से पहले तो सारे नरेशों को भारतीय संघ में सम्मलित किया। १५ अगस्त १६४७ तक केवल काश्मीर, हैदराबाद और जूनागढ़ के अतिरिक्त लगभग सभी राज्य संघ में प्रवेश कर चुके थे। नीचे उस प्रवेश पत्र का अनुवाद दिया गया है जो भारत में मिलने के लिये भिन्न भिन्न देशी नरेशों ने लिखा था।

प्रवेश पत्र

क्योंकि १६४७ के भारतीय स्वतन्त्रता अधिनियम में यह उपबन्ध है कि १५ अगस्त से भारत नामक एक स्वतन्त्र अधिराज्य स्थापित होगा तथा उस पर गवर्नर जनरल द्वारा किये गये संशोधनों तथा परिवर्तनों आदि सहित १६३५ का भारतीय शासन अधिनियम लागू होगा;

और क्योंकि गवर्नर जनरल द्वारा इस प्रकार संशोधित १६३५ के भारतीय शासन अधिनियम में यह उपबन्ध है कि कोई भारतीय राज्य उस के नरेश द्वारा प्रवेश-पत्र लिखने पर भारत अधिराज्य में प्रवेश कर सकता है:

अतएव अब···राज्य का नरेश मैं···अपने कथित राज्य में तथा उस पर अपनी प्रभुता के अधिकार से यह अपना प्रवेश पत्र लिखता हूँ तथा

१. मैं एतद्द्वारा यह घोषित करता हूँ कि मैं भारत अधिराज्य में इस इच्छा से प्रवेश करता हूँ कि भारत का गवर्नर जनरल, अधिराज्य का व्यवस्थापक मण्डल, संघीय न्यायालय, तथा अधिराज्य की ओर से कोई अन्य अधिराज्य प्राधिकारी इस मेरे प्रवेश-पत्र की शक्ति से, किन्तु इसकी शर्तों के अनुसार, केवल अधिराज्य की ओर से······राज्य (जिसे आगे से 'यह राज्य' कहा जायेगा) के सम्बन्ध में उन कृत्यों का प्रयोग कर सकते हैं जो कि १५ अगस्त १६४७ को भारत में लागू १६३५ के भारतीय शासन अधिनियम द्वारा उन में निहित हों; तथा मैं यह भी घोषणा करता हूँ कि भारत सरकार, किसी प्रतिनिधि या प्रतिनिधियों द्वारा

या वह जिस प्रकार उचित समझे उस प्रकार, इस राज्य के दंड विधान या सम्पत्ति विधान सम्बन्धी शक्तियों, अधिकारों और कार्यक्षेत्र का प्रयोग कर सकती है जो कि किसी समय राज्यों के सम्बन्ध में बादशाह के प्रतिनिधि द्वारा बादशाह की ओर से प्रयुक्त होते थे।

२. मैं इस पत्र द्वारा अपने ऊपर यह दायित्व लेता हूं कि इस राज्य में इस प्रवेश पत्र द्वारा १६३५ के शासन अधिनियम के उपबन्ध जिस हद तक लागू होते हैं, उस हद तक उन्हें मैं इस राज्य में कार्यान्वित कराऊंगा।

३. कंडिका १ के उपबन्धों पर विपरीत प्रभाव न पड़ते हुए मैं स्वीकार करता हूं कि इस के साथ नत्थी अनुसूची में वर्णित विषयों पर अधिराज्य का व्यवस्थापक-मंडल इस राज्य के लिये विधि बना सकता है।

४. मैं यह घोषणा करता हूँ कि मैं भारत अधिराज्य में इस आश्वासन पर सम्मिलित होता हूं कि यदि इस राज्य के नरेश तथा गवर्नर जनरल में ऐसी कोई संधि होती है जिससे कि इस राज्य के सम्बन्ध में भारत के व्यवस्थापक-मंडल के किसी अधिनियम की पूर्ती इस राज्य का नरेश करेगा तो वह संधि इस पत्र का भाग समझी जायगी और उसका तदनुसार अर्थ लगाया जायेगा तथा प्रभाव होगा।

५. मेरे इस प्रवेश पत्र की शर्तें अधिनियम या भारतीय स्वतन्त्रा अधिनियम के किसी संशोधन से परिवर्तित नहीं होगी, जब तक मैं इस पत्र के पूरक दूसरे पत्र द्वारा उस संशोधन को न मान लूं।

६. इस प्रवेश पत्र से किसी प्रकार भारत के व्यवस्थापक-मण्डल को यह अधिकार प्राप्त नहीं होगा कि वह इस राज्य के लिये किसी कार्य के निमित्त भूमि पर बलात-अधिकार करने का कोई अधिनियम बना सके, किन्तु मैं यह दायित्व अपने ऊपर लेता हूं कि यदि अधिराज्य के किसी अधिनियम के निमत्त जो कि इस राज्य पर लागू होता हो, किसी भूमि पर अधिकार करना आवश्यक हो तो मैं उनकी प्रार्थना पर उनके धन से वह भूमि प्राप्त कर दूंगा या यदि वह भूमि मेरी होगी तो वह उन्हें ऐसी शर्तों पर हस्तांतरित कर दूंगा जो कि निश्चत हो जायें या निश्चित न होने पर भारत के मुख्य न्यायधीश द्वारा नियुक्त किसी पंच द्वारा निश्चित की जायें।

७. इस पत्र का यह भी अर्थ नहीं होगा कि मैं भारत के भावी संविधान को किसी प्रकार स्वीकार करता हूं तथा ऐसे किसी संविधान के अन्तर्गत भारत सरकार से नये प्रबन्ध करने के सम्बन्ध में मेरे अधिकार को यह पत्र कम नहीं करेगा।

८. इस पत्र के उपबंधों के अतिरिक्त मेरे नरेश होने के कारण जो अधिकार, शक्तियां तथा स्वत्व मुझे प्राप्त हैं उस पर, तथा इस राज्य पर मेरी प्रभुता, या इस राज्य में इस समय लागू किसी अधिनियम पर, इस पत्र का कोई प्रभाव नहीं होगा।

९. मैं यह भी घोषणा करता हूं कि मैं यह पत्र इस राज्य की ओर से लिखता हूं तथा इस पत्र में जो व्यवस्था मेरे या राज्य के नरेश के लिये हैं उसके अन्तर्गत मेरे उत्तराधिकारी भी समझे जायेंगे।

-.........अगस्त १९४७ को मैं अपने हस्ताक्षर कर के यह पत्र देता हूं।

राज्य का नरेश

मैं इस प्रवेश पत्र को स्वीकार करता हूं।

आज ता०............अगस्त १९४७

भारत का गवर्नर जनरल

तीसरी कंडिका में उल्लिखित अनुसूची

क. रक्षा (जल, थल, नभ सेनाएं, शस्त्र आदि)।

ख. विदेशी विभाग।

ग. संचार (डाक, तार, रेल, रेडियो आदि)।

घ. (१) अधिराज्य के व्यवस्थापक मंडल के चुनाव :

(२) उपर्युक्त किसी विषय के सम्बन्ध में अधिनियमों के विरुद्ध अपराध

(३) उपर्युक्त विषयों के लिये छानबीन तथा अंकसंग्रह

(४) उपर्युक्त विषयों के सम्बन्ध में सारे न्यायालयों के कार्य-क्षेत्र और अधिकार, किन्तु सम्मिलित राज्य के नरेश की

सहमति के बिना राज्य में क्षेत्राधिकार सम्पन्न न्यायालय के अतिरिक्त किसी अन्य न्यायालय को वहां क्षेत्राधिकार नहीं दिया जा सकता।

२. काश्मीर

पहले तो काश्मीर ने स्वतन्त्र रहने का प्रयत्न किया किन्तु जब पाकिस्तान के समर्थन से सीमाप्रान्त के कबाइली लोगों ने काश्मीर पर आक्रमण कर दिया तब काश्मीर के नरेश तथा जनता के प्रतिनिधियों ने भारत से प्रार्थना की कि काश्मीर राज्य को भारत में सम्मिलित कर लिया जाये तथा उसकी रक्षा के लिये सेना भेजी जाये। भारत ने यह प्रार्थना इस शर्त पर मान ली कि शांति होने पर वहां की जनता का मत लिया जायेगा कि वह भारत में रहना चाहती है या नहीं। तत्पश्चात काश्मीर नरेश ने ऊपर दिये गये प्रवेश पत्र पर हस्ताक्षर कर दिये।

३. हैदराबाद

यह भारत का सबसे बड़ा राज्य था जिस की जनसंख्या १,४० लाख थी। उसके साथ एक यथा-पूर्व समझौता हुआ जिसके अनुसार १ वर्ष के लिये हैदराबाद ने रक्षा, विदेशी नीति तथा संचार के संबंध में भारत का नियन्त्रण स्वीकार कर लिया। पर इस समझौते को हैदराबाद न निभा सका। कासिम रजवी नामक एक गुंडे ने वहां के प्रशासन पर नियन्त्रण कर लिया और नरेश (निज़ाम) को अपने हाथ की कठपुतली बना लिया। रजवी ने राज्य में जनता को खुलेआम लूटना आरम्भ किया, हत्या, बलात्कार इत्यादि की घटनाएं रोज होने लगी। कुछ मुसलमानों को सशस्त्र बनाकर भारत के विरुद्ध पाकिस्तान से षडयन्त्र किया गया तथा समझौते के विरुद्ध पाकिस्तान को धन दिया गया। विदेशों से हथियार मंगाये गये। भारत के प्रदेश में भी रज़ाकार घुस आते और लूटमार करते। इस पर भारत सरकार ने सितम्बर १९४८ में पुलिस कार्यवाही द्वारा हैदराबाद की जनता का उद्धार किया। तत्पश्चात निज़ाम ने प्रवेश-पत्र पर हस्ताक्षर कर दिये।

४. जूनागढ़

जूनागढ़ वर्तमान सौराष्ट्र में पहले एक छोटा सा राज्य था। यह राज्य सौराष्ट्र में खूब घुलामिला हुआ था तथा इसका पाकिस्तान से कोई भौगोलिक

सम्बन्ध न था और यहां की जनता भारत में मिलने की इच्छुक थी, पर मुसलमान नरेश ने अपने राज्य को पाकिस्तान के समर्पित कर दिया। इसके परिणाम स्वरूप वहां की जनता ने विद्रोह कर दिया तथा नवाब और उसके परामर्शदाता पाकिस्तान भाग गये और भारत सरकार को शासन प्रबन्ध संभालने का निमन्त्रण दे दिया। राज्य का शासनभार अपने हाथों में ले लेने के बाद भारत सरकार ने वहां जनमत संग्रह किया तो पाकिस्तान के विरुद्ध ९९ प्रतिशत से अधिक मत आये तथा वह राज्य सौराष्ट्र में मिला दिया गया।

५. राज्यों का अन्त

सब राज्यों के भारत में सम्मिलित हो जाने के पश्चात भारत सरकार ने अविलंब ही छोटे राज्यों का एकीकरण करने अर्थात् उनके बड़े संघ बनाने का कार्य हाथ में लिया। पिछले इतिहास के देखते हुये यह कार्य असम्भव सा दीख पड़ता था किन्तु १९४७ के समाप्त होते ही उड़ीसा तथा मध्यप्रान्त के छोटे-छोटे २५ राज्य उनके नरेशों की इच्छा से उन प्रान्तों में विलीन कर दिये गये। उन राज्यों के नरेशों ने जिस विलीनकरण संधि पर हस्ताक्षर किये थे वह नीचे दी जाती है :

"१४ दिसम्बर १९४७ को भारत के गवर्नर जनरल तथा.........राज्य के राजा के बीच संधि।

क्यों कि राज्य तथा उसकी जनता के तात्कालिक हितों के हेतु,...... राज्य का राजा इसके लिये इच्छुक है कि राज्य का शासन प्रबन्ध शीघ्रातिशीघ्र, तथा भारत सरकार जैसे उचित समझे उस प्रकार, उड़ीसा/मध्यप्रान्त के शासन प्रबन्ध के साथ मिल कर एक हो जाना चाहिये :

अतएव निम्न संधि की जाती है:—

प्रथम अनुच्छेद...राज्य का राजा इस संधि द्वारा राज्य के शासन के हेतु और सम्बन्ध में अधिराज्य सरकार को पूर्ण तथा एकाकी अधिकार, कार्य्य-शक्ति और सत्ता समर्पित करता है तथा १ जनवरी १९४८ को (जिसे आगे से कथित-दिवस पुकारा जायेगा) राज्य का शासन प्रबन्ध अधिराज्य सरकार को हस्तांतरित करने के लिये सहमत है।

कथित दिवस से अधिराज्य सरकार को यह क्षमता होगी कि वह कथित शक्ति अधिकार तथा कार्यक्षेत्र का जैसे उचित समझे तथा जिसके द्वारा उचित समझे वैसे ही प्रयोग करे।

द्वितीय अनुच्छेद—राजा कथित दिवस से राज्य की आय में से, करों से स्वतन्त्र, वार्षिक........रुपये अपने निजी व्यय के लिये लेने का अधिकारी होगा। अभिप्राय यह है कि इस धन राशि में राजा के तथा उसके कुटुम्ब के सारे व्यय, जिसमें निजी नौकरों, निवास, विवाह तथा अन्य रीतियों आदि के व्यय भी हैं सम्मिलित होंगे तथा यह धन राशि किसी भी कारण से घटाई या बढ़ाई नहीं जावेगी। कथित धनराशि को नरेश राज्य कोष या ऐसे दूसरे कोष से जो कि अधिराज्य सरकार नियत करे चार समान अंशिकाओं में प्रत्येक त्रिमास के आरम्भ में अग्रिम ले सकता हैं।

तृतीय अनुच्छेद—इस संधि की तिथि पर राजा की जो निजी सम्पत्ति हो (जो राज्य सम्पत्ति न हो), राजा उसका पूर्ण स्वामी होगा तथा उसे भोगने तथा प्रयोग करने का अधिकारी होगा।

१ जनवरी १९४८ से पहले राजा अधिराज्य सरकार को अपनी निजी सम्पत्ति की रोकड़, सिक्योरिटियों तथा अचल सम्पत्ति की एक सूची देगा।

यदि कोई विवाद हो जाये कि सम्पत्ति की कोई वस्तु राजा की निजी सम्पत्ति है या राज्य की सम्पति है, तो वह प्रश्न न्याय के अनुभवी ऐसे अधिकारी के पास जायेगा जिसे अधिराज्य सरकार नियुक्त करे तथा उस अधिकारी का निर्णय अन्तिम होगा और दोनों पक्षों पर लागू होगा।

चतुर्थ अनुच्छेद—राजा, रानी, राजमाता, युवराज तथा युवरानी को सारे व्यक्तिगत विशेषाधिकारों का, जिनका वे १५ अगस्त १९४७ के तत्काल पहले राज्य के प्रदेश में या बाहर उपभोग करते थे, हक्क होगा।

पंचम अनुच्छेद—अधिराज्य सरकार यह बचन देती है कि राज्य की गद्दी का उत्तराधिकार तथा राजा के व्यक्तिगत अधिकारों, विशेषाधिकारों, सम्मानों एवं उपाधियों का उत्तराधिकार नियम तथा परिपाटि के अनुसार होगा।

"इस संधि की पुष्टि में श्री वपुल पंगुनी मैनन, भारत सरकार के राज्य विभाग सचिव ने, भारत के गवर्नर जनरल की ओर से तथा प्राधिकार से हस्ताक्षर किये हैं तथा.........राज्य के राजा.........ने अपने तथा अपने उत्तराधिकारियों की ओर से हस्ताक्षर किये हैं।"

६. प्रान्तों में विलीनकरण

इसी प्रकार स्वतन्त्रता के प्रथम दो वर्षों में ही २१६ देशी राज्यों को प्रान्तों में विलीन कर दिया गया। इस का संक्षिप्त विवरण नीचे दिया जाता है।

१. उड़ीसा : यह बहुत छोटा प्रांत था। इस में पहली जनवरी १९४८ को ही २३ देशी राज्य विलीन कर दिये गये जिनका कुल क्षेत्रफल २३,६३७ वर्ग मील, जनसंख्या ४० लाख ४६ हजार तथा राजस्व ६८ लाख ७८ हजार रुपये था। तत्पश्चात १० लाखकी जनसंख्या वाले मयूरभंज राज्य को भी इसी में विलीन कर दिया गया। इससे उड़ीसा का क्षेत्रफल लगभग दुगुना हो गया तथा जनसंख्या लगभग डेढ़ गुनी हो गई।

२. मध्य प्रदेश : इस प्रांत में भी १ जनवरी १९४८ को ही १५ राज्य विलय हो गये जिनका क्षेत्रफल ३१,७४९, जनसंख्या २८ लाख ३४ हजार तथा राजस्व ८८ लाख ३१ हजार रुपये था। इन में कावर्धा, सरगूजा, खैरगढ़, तथा बस्तर की रियासतें उल्लेखनीय हैं।

३. बिहार : इस प्रांत में भी दो रियासतें विलय हो गईं। जिन का क्षेत्रफल ६२३ वर्ग मील, जनसंख्या २ लाख ५ हजार, तथा राजस्व ६ लाख ४५ हजार रुपये था।

४. मद्रास : इस प्रान्त में पुडूकोठई, सुन्दूर तथा वंगलपल्ले के राज्य विलीन किये गये थे, जिनका कुल क्षेत्रफल १६०२ वर्ग मील तथा जनसंख्या ४ लाख ९९ हजार थी।

५. युक्त प्रान्त (उत्तर प्रदेश) : इस में बनारस, रामपुर और टिहरी गढवाल तीन राज्य विलीन कर दिये गये जिनका क्षेत्रफल ६२७६ वर्ग मील तथा जनसंख्या १३ लाख २५ हजार थी।

६. पूर्वी पंजाब : इस प्रान्त में भी छोटी छोटी तीन रियासतें, लोहारु, दुजाना और पटौदी, विलीन कर दी गईं जिनका क्षेत्रफल ३७० वर्गमील, जनसंख्या ८१ हजार तथा राजस्व १० लाख रुपये वार्षिक है।

७. बम्बई : स्वतन्त्रता के प्रथम वर्ष में इस प्रान्त में छोटे-छोटे १६१ राज्य विलय हुए जिनका क्षेत्रफल २५ हजार ३३१ वर्गमील, जनसंख्या ४३ लाख १७ हजार तथा राजस्व ३ करोड ७ लाख १५ हजार रुपये था। तत्पश्चात बड़ोदा (२८ लाख) तथा कोल्हापुर (११ लाख) भी इस में ही विलीन कर दिये गये। इसके अतिरिक्त दांता राज्य तथा सिरोही का कुछ भाग भी बम्बई में मिला दिया गया।

८. पश्चमी बंगाल : इसमें कोच-बिहार विलीन किया गया।

७. राज्य-संघों का निर्माण

इसके अतिरिक्त कई राज्यों को मिलाकर निम्न लिखित पांच-संघ भी बना दिये गये।

१. संयुक्त राजस्थान : यह क्षेत्रफल के विचार से भारतीय संघ का सब से बड़ा अंग है। इसमें १८ राज्य सम्मिलित हैं। इसका क्षेत्रफल लगभग सवा लाख वर्गमील तथा जनसंख्या सवा करोड से अधिक है। इसके महाराजप्रमुख महाराणा उदयपुर हैं; किन्तु शासनकार्य वास्तव में जयपुर नरेश ही चलाते हैं जो कि राजस्थान के राजप्रमुख हैं। इसके उपराजप्रमुख कोटा नरेश हैं।

संयुक्त राज्य राजस्थान का निर्माण क्रमशः हुआ। सर्व प्रथम कोटा नरेश के राजप्रमुखत्व में राजस्थान के नौ राज्य इसमें सम्मिलित हुए जिन की कुल जनसंख्या २३ लाख थी। इन राज्यों के नाम हैं, कोटा, बूंदी, किशनगढ, झालावाड़, डूंगरपुर, बांसवाड़ा, प्रतापगढ, टौंक, किशनगढ और शाहपुरा।

तत्पश्चात महाराणा उदयपुर भी इस में सम्मिलित हो गये तथा उन्हें राज प्रमुख का पद प्राप्त हुआ और कोटा नरेश उपराजप्रमुख बनाए गए। इससे राजस्थान का क्षेत्रफल २९ हजार ६७७ वर्गमील, जनसंख्या ४२ लाख ६१ हजार तथा राजस्व ३ करोड़ १७ लाख रुपये हो गया।

अप्रैल १९४९ में राजपुताना के चार महान राज्य, जयपुर, जोधपुर, जयसलमेर तथा बीकानेर भी इसमें सम्मिलित हो गये तथा बृहद् राजस्थान की रचना हुई। तत्पश्चात मत्स्य राज्य संघ भी इसी में विलीन कर दिया गया। मत्स्य का निर्माण मार्च १९४८ में हुआ था और इसमें अलवर, भरतपुर, धौलपुर, तथा करौली राज्य सम्मिलित थे। मत्स्य का क्षेत्रफल ७,५३६ वर्गमील जनसंख्यों १८ लाख ३८ हजार तथा राजस्व १ करोड ८३ लाख ६ हजार रुपये था।

इस प्रकार महाराजस्थान में १८ राज्य विलय हो गये जिनका कुल क्षेत्रफल १,२८,४२४ वर्गमील तथा जनसंख्या १,३०,८५,००० है।

२. मध्य भारत (मालवा) : जिसमें ४० लाख जनसंख्या वाला ग्वालियर तथा १५ लाख जनसंख्या वाला इन्दौर राज्य तथा २० छोटे राज्य भी सम्मिलित हो गये। उन दोनों राज्यों के नरेश क्रमशः इस संघ के राज-प्रमुख तथा उपराजप्रमुख बने और ग्वालियर तथा इन्दौर इस संघ की ग्रीष्म तथा शीत ऋतु की राजधानियां बनीं। इस संघ में ५ सलामी वाले तथा २० छोटे-छोटे राज्य सम्मिलित हुए थे, जिससे इसका कुल क्षेत्रफल लगभग ४७ हजार वर्गमील, जनसंख्या लगभग ७२ लाख तथा आय ८ करोड़ रुपये हो गई।

मध्य भारत संघ का निर्माण अप्रैल १९४८ में हुआ।

३. सौराष्ट्र : यह काठियावाड़ के २२२ छोटे बड़े राज्यों का एक संघ बना जिस के राजप्रमुख नवानगर नरेश (जाम साहिब) बनाये गये। जूनागढ भी इसी में सम्मिलित किया गया था। सौराष्ट्र का क्षेत्रफल २१,०६२ वर्गमील, जनसंख्या ३५ लाख ५६ हजार और राजस्व ८ करोड़ रुपये है।

४. पटियाला तथा पूर्वी पंजाब राज्य संघ : इसका निर्माण १६४८ के मई मास में हुआ था । इसमें पटियाला, कपूरथला, नाभा, फरीदकोट, जींद, मलेरकोटला, कलसिया तथा नालागढ ये ८ राज्य हैं औरइसके राजप्रमुख पटियाला नरेश हैं। इस संघ का कुल क्षेत्रफल १० हजार वर्गमील जनसंख्या ३४ लाख २४ हजार और राजस्व ५ करोड़ रुपये हैं।

५. त्रावणकोर-कोचीन दक्षिण के प्रसिद्ध दो राज्यों, त्रावनकोर तथा कोचीन को मिला कर भी एक राज्य संघ स्थापित कर दिया गया।

८. नये केन्द्र-प्रशासित प्रान्तों का निर्माण

शेष देशी राज्यों को कुर्ग, दिल्ली, अजमेर की तरह केन्द्रीय सरकार द्वारा शासित राज्य बना दिया गया, जहां केन्द्रीय सरकार द्वारा नियुक्त अधिकारी राज्य करता है। इन के नाम निम्न हैं :

(१) हिमाचल प्रदेश : जिसमें शिमला के आस-पास की २१ पहाड़ी रियासतें विलय हुईं जिनका क्षेत्रफल १० हजार ६०० वर्गमील, जनसंख्या ६ लाख ३५ हजार, तथा राजस्व ८४ लाख ५६ हजार रुपये था।

२. विन्ध्य प्रदेश : इस का राज्य-संघ के रूप में उद्घाटन अप्रैल १६४८ में हुआ। इसमें छत्तीसगढ और बुन्देलखण्ड के ३५ राज्य मिलाये गये जिनका कुल क्षेत्रफल २४,६०० वर्गमील, जनसंख्या ३५ लाख ६६ हजार और राजस्व २ करोड ४३ लाख ३० हजार रुपये था। इसके राजप्रमुख रींवा नरेश थे। अंत में इसे केन्द्र प्रशासित राज्य बना दिया गया।

इसके अतिरिक्त भोपाल, त्रिपुरा, मनीपुर, कच्छ तथा बिलासपुर राज्यों को भी केन्द्र-प्रशासित राज्य घोषित कर दिया गया। इस प्रकार दस केन्द्र शासित राज्य बन गये।

निम्नांकित तालिकाओं में संक्षेप से राज्यों के विलय के आंकड़े दिये गये हैं:—

प्रान्तों में विलीन राज्य

प्रांत का नाम	राज्यों की संख्या	राज्यों का क्षेत्रफल (वर्गमीलों में)	राज्यों की जन-संख्या (हजारों में)
बम्बई	१६५	३६,१२७	८५,३४
उड़ीसा	२४	२७,६७१	५०,३६
मध्य प्रदेश	१५	३१,७४६	२८,३४
उत्तर प्रदेश	३	६,२७६	१३,२५
पश्चिमी बंगाल	१	१,३२१	६,४१
मद्रास	३	१,६०२	४,६६
बिहार	२	६२३	२,०५
पंजाब	३	३७०	८१
योग—	२१६	१,०८,७३६	१,६१,५८

राज्य-संघों में विलीन राज्य

राजस्थान	१८	१,२८,४२४	१,३०,८५
त्रावनकोर-कोचीन	२	६,१५५	७४,६३
मध्यभारत	२५	४६,७१०	७१,४१
सौराष्ट्र	२२२	२१,०६२	३५,५६
पटियाला और पू० पं० रा० संघ	८	१०,०६६	३४ २४
योग—	२७५	२,१५,४५०	३,४६,६६

केन्द्र-प्रशासित राज्य

विन्ध्य प्रदेश	३५	२४,६००	३५,६६
हिमाञ्चल प्रदेश	२१	१०,६००	६,३५
भोपाल	१	६,६२१	७,८५
त्रिपुरा	१	४,०४६	५,१३
मनीपुर	१	८,६२०	५,१२
कच्छ	१	८,४६१	५,०१
बिलासपुर	१	४५३	१,१०
योग —	६१	६३,७०४	६६,२५

सारांश

प्रान्तों में विलीन राज्य	२१६	१,०८,७३६	१,६१,५८
राज्यसंघों में विलीन राज्य	२७५	२,१५,४५०	३,४६,६६
केन्द्र शासित राज्य	६१	६३,७०४	६६,२५
योग—	५५२	३,८७,८६३	६,०७,८२

९. नया संविधान और देशी राज्य

उपर्युक्त तालिकाओं से पता लग गया होगा कि हैदराबाद, मैसूर तथा जम्मू और काश्मीर, इन तीन राज्यों के अतिरिक्त समस्त देशी राज्यों का किसी न किसी प्रकार विलय हो गया।

राज्यों का इस प्रकार एकीकरण तथा संगठन होने के पश्चात २६ नवम्बर १६४८ को भारत का संविधान पूर्ण हुआ। उसमें यह उपबन्ध रखे गये कि राज्य संघों का शासन-प्रबन्ध प्रांन्तों के समान प्रजातन्त्रीय ढंग पर होगा तथा राजप्रमुखों की गवर्नरों के समान स्थिति होगी। समस्त राज-प्रमुखों ने इस संविधान को स्वीकार कर लिया जिससे २६ जनवरी १६५० से नए संविधान के लागू होने पर सारी स्थिति ही बदल गई और पुराने संधिपत्रों का, जिनका वर्णन हम ऊपर कर चुके हैं, लगभग ऐतिहासिक महत्व ही रह गया। साथ ही काश्मीर, हैदराबाद तथा मैसूर के नरेशों ने भी संविधान को स्वीकार करके राजप्रमुख का पद धारण कर लिया।

१० नरेशों की निजी थैलियां (Priny--Purse)

राज्यों के विलय के फलस्वरूप जीवननिर्वाह के हेतु नरेशों को निम्न अनुपात से निजी थैलियां दी गई हैं :—

राज्य की प्रथम १ लाख रु० वार्षिक आय पर १५%

अगली ४ लाख ,, ,, ,, ,, १०%

५ लाख से अधिक राशियों पर ७॥ प्रतिशत, किन्तु १० लाख से अधिक नहीं।

निम्न बड़े राज्यों के विषय में अपवाद है और उन्हें दस लाख रुपये प्रतिवर्ष से अधिक निजी थैली के रूप मे दिये जायेंगे, पर उनके वंशजों को दस लाख रुपये प्रतिवर्ष ही मिलेंगे।

सं०	राज्य	निजी थैली		
१	हैदराबाद	५०	लाख	रुपये
२	मैसूर	२६	,,	,,
३	बड़ौदा	२६॥	,,	,,
४	पटियाला	१७	,,	,,
५	त्रावणकोर	१८	,,	,,
६	ग्वालियर	२५	,,	,,
७	इन्दौर	१५	,,	,,
८	जयपुर	१८	,,	,,
९	बीकानेर	१७	,,	,,
१०	जोधपुर	१७॥	,,	,,
११	भोपाल	११	,,	,,

इस प्रकार सब नरेशों को मिला कर प्रतिवर्ष ५ करोड़ ८० लाख रुपये निजी थैलियों के रूप में देने निश्चित हुए जो संघ की संचित निधि पर भार होंगे।

❀ प्रथम भाग समाप्त ❀

द्वितीय भाग

स्वतन्त्र भारत का संविधान

हम, भारत के लोग, भारत को एक **सम्पूर्ण प्रभुत्व-सम्पन्न लोकतन्त्रात्मक गणराज्य** बनाने के लिये, तथा उसके समस्त नागरिकों को :

सामाजिक, आर्थिक और राजनैतिक **न्याय,**

विचार, अभिव्यक्ति, विश्वास, धर्म

और उपासना की **स्वतन्त्रता,**

प्रतिष्ठा और अवसर की **समता**

प्राप्त कराने के लिये,

तथा उन सब में

व्यक्ति की गरिमा और राष्ट्र की एकता

सुनिश्चित करने वाली **बन्धुता**

बढ़ाने के लिये

दृढ़संकल्प हो कर **अपनी इस संविधान सभा में** आज ता० २६ नवम्बर १९४९ ई० (मिति, मागशीर्ष शुक्ला सप्तमी, संवत् दो हजार छै विक्रमी) को **एतद्द्वारा इस संविधान को अंगीकृत, अधिनियमित और आत्मार्पित करते हैं।**
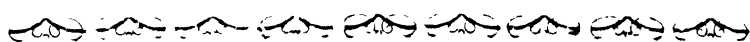
प्रथम अध्याय

संविधान के सिद्धान्त

१. मुख्य रचना

प्रस्तावना—स्वतन्त्र भारत का संविधान २६ नवम्बर १९४९ को स्वीकार किया गया तथा २६ जनवरी १९५० को लागू हुआ। उसकी प्रस्तावना सामने के पृष्ठ पर देखिये।

'भारत के लोग' इस पद से यह स्पष्ट होता है कि प्रभुता का स्रोत जनता है। पिछले संविधानों में सत्ता-स्रोत सम्राट तथा ब्रिटिश संसद होती थी।

'गणराज्य' शब्द का भी यही आशय है कि यहां कोई सम्राट या राजा नहीं होगा, वरन् निर्वाचित प्रतिनिधि ही शासन करेंगे।

प्रस्तावना के पश्चात् इस संविधान में २२ भाग (जिनमें कि ३९८ अनुच्छेद हैं) और ८ अनुसूचियां हैं। प्रथम भाग और प्रथम अनुसूची में भारत के राज्य क्षेत्रों का वर्णन है, द्वितीय भाग में नागरिकता का विषय है, तृतीय भाग में मूलाधिकारों तथा चतुर्थ भाग में राज्य की नीति के निदेशक सिद्धान्तों का वर्णन है। तत्पश्चात शासन प्रणाली का विवरण पंद्रहवें भाग तक चलता है

भाग १६ में अल्पसंख्यकों के विषय में विशेष उपबंध उल्लिखित है। भाग १७ राजभाषा के विषय में है। भाग १८ में संकटकालीन स्थिति के उपबंध है। भाग १९ में प्रकीर्ण विषय हैं तथा भाग २० में संविधान के संशोधन की प्रणाली का वर्णन है। भाग २१ में अस्थायी उपबंध हैं जो प्रथम निर्वाचन तक रहेंगे। अन्तिम भाग २२ में संविधान की आरंभतिथि तथा नाम आदि अंकित हैं।

यह संविधान मूलतः संघीय है, क्योंकि भारत २७ राज्यों का संघ होगा। राज्यों तथा 'संघ' की सरकारों के क्षेत्राधिकार भिन्न भिन्न हैं जिनमे उनका अपना अपना प्राधिकार होगा। क्षेत्राधिकार के विवाद की स्थिति में उच्चतम न्यायालय निर्णय करेगा। राज्यों का क्षेत्राधिकार संघीय सरकार द्वारा प्रदत्त नहीं होगा, प्रत्युत संविधान द्वारा प्रदत्त है। परन्तु भारत की नागरिकता एकात्मक ही होगी, सभी लोग भारत के नागरिक होंगे, भिन्न भिन्न राज्यों के नहीं। न्यायपालिका भी एक ही होगी, राज्यों की भिन्न भिन्न नहीं। किसी राज्य को संघ से पृथक होने का अधिकार नहीं होगा। आकस्मिकता अथवा संकटकाल में संविधान का ढांचा एकात्मक भी बन सकता है, यद्यपि सामान्यतः वह संघीय रहेगा। इस प्रकार भारत एक लचकदार संघ है।

राष्ट्रपति मंत्रिपरिषद् की मंत्रणा पर चलेगा अतः संविधान का ढांचा संसदीय प्रणाली का है।

इस संविधान में सांप्रदायिक निर्वाचनों का अन्त कर दिया गया है तथा निर्वाचन वयस्क मताधिकार के आधार पर होंगे, जिसका अर्थ है कि प्रत्येक नागरिक जिसकी आयु २१ वर्ष से कम न हो, मतदाता होगा। केवल हरिजनों तथा आदिवासियों के लिये उनकी जनसंख्या के अनुपात से स्थान सुरक्षित रखे गये हैं पर यह स्थान-रक्षण भी केवल दस वर्ष के लिये है।

२. भारत का राज्य-क्षेत्र

भारत, अर्थात इण्डिया, राज्यों का संघ होगा। भारत के राज्य-क्षेत्र में २७ राज्य होंगे जो तीन भागों में बांटे गये हैं:—

भाग (क) राज्यपालों के राज्य
(जो पहले प्रान्त थे)

राज्य का नाम	जनसंख्या (हजारों में)
१. उत्तर प्रदेश	६,१६,२०
२. मद्रास	५,४२,६०
३. बिहार	३,६४,२०
४. बम्बई	३,२६,८०
५. पश्चिमी बंगाल	२,४३,२०
६. मध्य प्रदेश	२,०६,२०
७. उड़ीसा	१,४४,१०
८. पंजाब	१,२६,१०
९. आसाम	८५,१०
	२६,८७,८०

भाग (ख) राजप्रमुखों के राज्य

राज्य का नाम	जनसंख्या (हजारों में)
१. हैदराबाद	१,७६,६०
२. राजस्थान	१,४६,६०
३. त्रावंकोर-कोचीन	८५,८०
४. मैसूर	८०,६०
५. मध्य भारत	७८,७०
६. जम्मू तथा काश्मीर	४३,७०
७. सौराष्ट्र	३६,६०
८. प०पू०प०रा० संघ	३३,२०
	६,८५,४०

भारत
का
नवीन राजनैतिक
मान चित्र
भाग (क) राज्यपालों के राज्य
भाग (ख) राज्यप्रमुखों के राज्य
काश्मीर
पश्चिमी पाकिस्तान
नेपाल
सिक्किम
भूटान
आसाम
बिहार
विन्ध्य प्रदेश
मध्य प्रदेश
पूर्वी पाकिस्तान
उड़ीसा
कच्छ
अरब सागर
बम्बई
गोआ
मद्रास
बंगाल की खाड़ी
लंका

भाग (ग) केन्द्र-प्रशासित राज्य

राज्य का नाम	जनसंख्या (हजारों में)
१. विन्ध्य प्रदेश	३८,८०
२. दिल्ली	१५,१०
३. हिमाचल प्रदेश	१०,८०
४. भोपाल	८,५०
५. अजमेर	७,३०
६. त्रिपुरा	५,८०
७. कच्छ	५,५०
८. मनीपुर	५,४०
९. कुर्ग	१,७०
१०. बिलासपुर	१,३०
	१,००,२०

सूचना १.—राज्यों की जनसंख्या संविधान में नहीं दी गई है पर हमने पाठकों की सुविधा के लिये दे दी है। ये आंकड़े १९५० के अनुमानित आंकड़े है जिनके आधार पर स्वतंत्र भारत का प्रथम निर्वाचन होगा।

सूचना २.—सामने के मानचित्र में

भाग (क) के राज्यों को बिन्दुओं में दिखाया गया है,

भाग (ख) के राज्यों को रेखाओं में दिखाया गया है, तथा

भाग (ग) के राज्यों को खाली दिखाया गया है।

यह मानचित्र भी १९५० का है।

इन के अतिरिक्त भारत के राज्यक्षेत्र में अन्दमान और निकोबार तथा ऐसे अन्य राज्यक्षेत्र, जो अर्जित किये जायें, समाविष्ट होंगे [अनुच्छेद १ तथा प्रथम अनुसूची]।

उपयुक्त विवरण से पता लगेगा कि नये संविधान में प्रान्तों, देशी राज्यों तथा चीफ कमिश्नरी क्षेत्रों को एक ही नाम 'राज्य' दे दिया गया है।

संसद, विधि द्वारा, संघ में नये राज्यों का प्रवेश या स्थापना भी कर सकेगी (अनुच्छेद २) और

(क) किसी राज्य से उसका प्रदेश अलग करके अथवा दो या अधिक राज्यों या राज्यों के भागों को मिलाकर अथवा किसी प्रदेश को किसी राज्य से भाग के साथ मिलाकर नया राज्य बना सकेगी।

(ख) किसी राज्य का क्षेत्र बढा सकेगी,

(ग) किसी राज्य का क्षेत्र घटा सकेगी,

(घ) किसी राज्य की सीमाओं को बदल सकेगी,

(ङ) किसी राज्य के नाम को बदल सकेगी,

परन्तु भाग (क) अथवा (ख) के राज्यों में ये परिवर्तन तभी किये जा सकते हैं जब कि सम्बद्ध राज्यों की अनुमति प्राप्त हो जाये (अनु० ३)।

३. नागरिकता

इस संविधान के प्रारम्भ पर प्रत्येक व्यक्ति जिसका भारत राज्यक्षेत्र में अधिवास है, तथा

(क) जो भारत राज्यक्षेत्र में जन्मा था, अथवा

(ख) जिसके जनकों में से कोई भारत राज्यक्षेत्र में जन्मा था, अथवा

(ग) जो ऐसे प्रारम्भ से ठीक पहले कम से कम पांच वर्ष तक भारत राज्यक्षेत्र में सामान्यतया निवासी रहा है,

भारत का नागरिक होगा (अनु० ५)।

शरणार्थियों को नागरिता के अधिकार: कोई व्यक्ति जो इस समय पाकिस्तान के अन्तर्गत राज्यक्षेत्र से भारत राज्यक्षेत्र को प्रव्रजन कर आया है,

इस संविधान के आरम्भ पर भारत का नागरिक समझा जायेगा (अनु० ६) ।

जो व्यक्ति १९४७ के मार्च के पहिले दिन के पश्चात भारत राज्यक्षेत्र से इस समय पाकिस्तान के अन्तर्गत राज्यक्षेत्र को प्रव्रजन कर गया है, वह भारत का नागरिक नहीं समझा जायगा (अनु० ७) ।

अनु० ८ के अनुसार भारत के बाहर रहने वाले भारतीय उद्भव के कुछ व्यक्तियों को भी नागरिकता के अधिकार दिये गये हैं यदि वे उसके लिये आवेदन-पत्र दें और पंजीबद्ध कर लिये जायें।

विदेशी राज्य की नागरिकता स्वेच्छा से अर्जित करने वाले व्यक्ति भारत के नागरिक न होंगे (अनु० ९) ।

इसके अतिरिक्त संसद भी विधि द्वारा नागरिकता के अधिकार का विनियमन कर सकेगी (अनु० ११) ।

४. मूलाधिकार

संविधान में यह भाग अत्यंत महत्वपूर्ण है। इसमें जनता के लिये कुछ मूलाधिकार प्रदान किये गये हैं और प्रत्येक नागरिक राज्य या किसी अन्य नागरिक के विरुद्ध, जो उनमें हस्तक्षेप करे, न्यायालय में जाकर अपने मूलाधिकारों की रक्षा कर सकता है ['राज्य' शब्द में भारत सरकार और राज्यों की सरकारें आदि सभी निहित हैं (अनुच्छेद १२) ।]

कोई कानून, जो इन मूलाधिकारों का उल्लंघन करने वाला हो उस मात्रा तक शून्य होगा जिस तक कि वह मूलाधिकारों के उपबंधों से असंगत है, और राज्य आगे भी कोई ऐसा कानून न बना सकेगा जो मूलाधिकारों को छीनता या कम करता हो अन्यथा वह कानून भी उल्लंघन की मात्रा तक शून्य होगा (अनु० १३)

मूल अधिकारों को प्रवर्तित कराने के लिय उच्चतम न्यायालय को समुचित कार्यवाहियों द्वारा प्रचालित करने का अधिकार प्रत्याभूत किया गया है। किन्तु आपात की उद्घोषणा प्रवर्तन में हो तब इस अधिकार को छीना जा सकता है।

मूल अधिकारों में से किसी को प्रवर्तित कराने के लिये उच्चतम न्यायालय ऐसे निदेश या आदेश अथवा लेख, जिनके अन्तर्गत बन्दीप्रत्यक्षीकरण, परमादेश,

प्रतिषेध, अधिकार-पृच्छा और उत्प्रेषण के प्रकार के लेख भी हैं, जो भी समुचित हो, निकालने की शक्ति होगी। किन्तु संसद अन्य न्यायालयों को भी इस विषय में शक्ति दे सकेगी (अनुच्छेद ३२)।

मुख्य मूलाधिकार निम्न लिखित हैं:—

विधि के समक्ष समताः भारत राज्यक्षेत्र में किसी व्यक्ति को विधि के समक्ष समता से अथवा विधि के समान संरक्षण से वंचित नहीं किया जायगा (अनुच्छेद १४)।

राज्य किसी नागरिक के विरुद्ध केवल धर्म, मूलवंश, जाति, लिंग, जन्मस्थान अथवा इन में से किसी के आधार पर कोई विभेद नहीं करेगा।

केवल धर्म, मूलवंश, जाति, लिंग, जन्मस्थान अथवा इनमें से किसी के आधार पर कोई नागरिक—

(क) दुकानों, सार्वजनिक भोजनालयों, होटलों तथा सार्वजनिक मनोरंजन के स्थानों में प्रवेश के; अथवा

(ख) पूर्ण या आंशिक रूप में राज्य-निधि से पोषित अथवा साधारण जनता के उपयोग के लिये समर्पित कुओं, तालाबों, स्नानघाटों, सड़कों तथा सार्वजनिक समागम स्थानों के उपयोग के

बारे में किसी भी निर्योग्यता, दायित्व, निर्बन्धन अथवा शर्त के अधीन न होगा।

इस अनुच्छेद की किसी बात से राज्य को स्त्रियों और बालकों के लिये कोई विशेष उपबन्ध बनाने में बाधा न होगी (अनु० १५)।

राज्याधीन नौकरियों या पदों पर नियुक्ति के सम्बन्ध में सब नागरिकों के लिये अवसर की समता होगी।

केवल धर्म, मूलवंश, जाति, लिंग, उद्भव, जन्म-स्थान, निवास अथवा इनमें से किसी के आधार पर किसी नागरिक के लिये राज्याधीन किसी नौकरी अथवा पद के विषयों में न अपात्रता होगी और न विभेद किया जायेगा (अनु० १६)।

किन्तु राज्य को पिछड़े हुए किसी नागरिक वर्ग के पक्ष में, जिनका प्रतिनिधित्व राज्य की राय में राज्याधीन सेवाओं में पर्याप्त नहीं है, नियुक्तियों या पदों के रक्षण के उपबन्ध करने में कोई बाधा न होगी।

उपर्युक्त उपबन्धों का उद्देश्य भारत को धर्म निरपेक्ष राज्य बनाना है जिसमें किसी विशेष मत के साथ पक्षपात न होगा।

अस्पृश्यता का अन्तः "अस्पृश्यता" का अन्त किया जाता है और उसका किसी भी रूप में आचरण निषिद्ध किया जाता है। "अस्पृश्यता" से उपजी किसी निर्योग्यता को लागू करना विधि के अनुसार दण्डनीय अपराध होगा (अनु० १७)।

खिताबों का अन्तः सेना या विद्या सम्बन्धी विशिष्टता के सिवाय और कोई खिताब राज्य प्रदान नहीं करेगा; और भारत का कोई नागरिक किसी विदेशी राज्य से कोई खिताब स्वीकार नहीं करेगा।

वाक् स्वातन्त्र्य आदिः सब नागरिकों को वाक्-स्वातन्त्र्य और अभिव्यक्ति स्वातन्त्र्य का अधिकार होगा किन्तु अपमान-लेख, अपमान-वचन, मानहानि, न्यायालय-अवमान को अथवा शिष्टाचार या सदाचार पर आघात को अथवा राज्य की सुरक्षा को दुर्बल करने अथवा राज्य को उलटने की प्रवृत्ति को राज्य रोक सकेगा।

सब नागरिकों को शांतिपूर्वक निरायुध सम्मेलन का, संस्था या संघ बनाने का, भारत राज्यक्षेत्र में सर्वत्र अबाध संचरण का, भारत राज्यक्षेत्र के किसी भाग में निवास करने और बस जाने का, सम्पत्ति के अर्जन, धारण और व्ययन का, तथा कोई वृत्ति, उपजीविका, व्यापार या कारबार करने का भी अधिकार होगा। इन अधिकारों के प्रयोग पर सार्वजनिक व्यवस्था, सदाचार या साधारण जनता के हितों के लिये युक्तियुक्ति निर्बन्धन लगाये जा सकते हैं (अनु० १९)

अपराधों के संरक्षणः कोई व्यक्ति किसी अपराध के लिए सिद्धदोष नहीं ठहराया जायगा, जब तक कि उसने अपराधारोपित क्रिया करने के समय किसी प्रवृत्त विधि का अतिक्रमण न किया हो और न वह उससे अधिक दंड का पात्र होगा जो उस अपराध के करने के समय प्रवृत्त विधि के अधीन दिया जा सकता था।

कोई व्यक्ति उसी अपराध के लिए एक बार से अधिक अभियोजित और दंडित न किया जायगा।

किसी अपराध में अभियुक्त कोई व्यक्ति स्वयं अपने विरुद्ध साक्षी होने के लिए बाध्य न किया जायगा (अनु० २०)।

किसी व्यक्ति के प्राण अथवा दैहिक स्वतन्त्रता का हरण विधि द्वारा स्थापित प्रक्रिया को छोड़कर अन्य प्रकार से न किया जायेगा।

कोई व्यक्ति जो बन्दी किया गया है, ऐसे बन्दीकरण के कारणों से यथाशक्य शीघ्र अवगत कराये गये बिना हवालात में निरुद्ध नहीं किया जायगा और न अपने पसन्द के विधि-व्यवसायी से परामर्श करने तथा प्रतिरक्षा कराने के अधिकार से वंचित रखा जायेगा।

प्रत्येक व्यक्ति जो बन्दी किया गया है और हवालात में निरुद्ध किया गया है, बन्दीकरण के स्थान से दंडाधिकारी के न्यायालय तक यात्रा के लिये आवश्यक समय को छोड़कर, ऐसे बन्दीकरण से २४ घण्टे की कालावधि में निकटतम दंडाधिकारी के समक्ष पेश किया जायगा।

किन्तु जो व्यक्ति तत्समय शत्रु परदेशीय है, अथवा जो व्यक्ति निवारक निरोध उपबन्धित करने वाली किसी विधि के अधीन बन्दी या निरुद्ध किया गया है उसके सम्बन्ध में उपयुक्त नियम लागू न होंगे (अनु० २२)।

बेगार निषेध—मानव का पण्य और बेगार तथा इसी प्रकार का अन्य जबर्दस्ती लिया हुआ श्रम प्रतिषिद्ध किया जाता है और इस उपबन्ध का कोई भी उल्लंघन विधि के अनुसार दंडनीय अपराध होगा।

इस अनुच्छेद की किसी बात से, राज्य को सार्वजनिक प्रयोजन के लिये बाध्य सेवा लागू करने में रुकावट न होगी। ऐसी सेवा लागू करने में केवल धर्म, मूलवंश, जाति या वर्ग या इनमें से किसी के आधार पर राज्य कोई विभेद नहीं करेगा (अनु० २३)।

बच्चों को नौकर रखने का निषेध—चौदह वर्ष से कम आयु वाले किसी बालक को किसी कारखाने अथवा खान में नौकर न रखा जायेगा और न किसी दूसरी संकटमय नौकरी में लगाया जायेगा (अनु० २४)।

धर्म की स्वतन्त्रता—सार्वजनिक व्यवस्था, सदाचार और स्वास्थ्य तथा इस भाग के दूसरे उपबन्धो के अधीन रहते हुए, सब व्यक्तियों को अन्तःकरण की स्वतन्त्रता का तथा धर्म के अबाध रूप से मानने, आचरण करने और प्रचार करने का समान हक्क होगा।

इस अनुच्छेद की कोई बात किसी ऐसी वर्तमान विधि के प्रवर्तन पर प्रभाव अथवा राज्य के लिये किसी ऐसी विधि के बनाने में रुकावट न डालेगी, जो धार्मिक आचरण से सम्बद्ध किसी आर्थिक, वित्तिक, राजनैतिक अथवा अन्य किसी प्रकार की लौकिक क्रियाओं का विनियमयन अथवा निर्बन्धन करती हो; सामाजिक कल्याण और सुधार उपबंधित करती हो, अथवा हिंदुओं की सार्वजनिक प्रकार की धर्म संस्थाओं को हिन्दुओं (जिन में सिख, जैन, बौद्ध भी समाविष्ट हैं) के सब वर्गों और विभागों के लिये खोलती हो।

कृपाण धारण करना तथा लेकर चलना सिक्ख धर्म का अंग समझा जायेगा (अनु० २५)।

धार्मिक कार्यों के प्रबन्ध की स्वतन्त्रता—सार्वजनिक व्यवस्था, सदाचार और स्वास्थ्य के अधीन रहते हुए प्रत्येक धार्मिक सम्प्रदाय अथवा उसके किसी विभाग को धार्मिक और पूर्त प्रयोजनों के लिये संस्थाओं की स्थापना और पोषण का, अपने धार्मिक कार्यों सम्बन्धी विषयों के प्रबन्ध करने का, जंगम और स्थावर सम्पत्ति के अर्जन और स्वामित्व का तथा ऐसी सम्पत्ति के विधि अनुसार प्रशासन करने का अधिकार होगा (अनु० २६)।

कोई भी व्यक्ति ऐसे करों को देने के लिये वाध्य नहीं किया जायेगा जिनके आगम किसी विशेष धर्म अथवा धार्मिक सम्प्रदाय की उन्नति या पोषण में व्यय करने के लिये विशेष रूप से विनियुक्त कर दिये गये हों (अनु० २७)।

राज्य-निधि से पूरी तरह से पोषित किसी शिक्षा संस्था में कोई धार्मिक शिक्षा न दी जायेगी।

राज्य से अभिज्ञात अथवा राज्य निधि से सहायता पाने वाली, शिक्षा संस्था में उपस्थित होने वाले किसी व्यक्ति को ऐसी संस्था में दी जाने वाली धार्मिक शिक्षा में भाग लेने के लिये अथवा ऐसी संस्था में या उससे संलग्न स्थान में की जाने वाली धार्मिक उपासना में उपस्थित होने के लिये वाध्य न किया जायेगा जब तक कि उस व्यक्ति ने, या यदि वह अवयस्क हो तो उसके संरक्षक ने, इसके लिये अपनी सम्मति न दे दी हो (अनु० २८)।

अल्पसंख्यकों के हितों का संरक्षण—भारत के राज्यक्षेत्र अथवा उसके किसी भाग के निवासी नागरिकों के किसी विभाग को, जिसकी अपनी विशेष भाषा, लिपि या संस्कृति है, उसे बनाये रखने का अधिकार होगा।

राज्य द्वारा पोषित अथवा राज्य-निधि से सहायता पाने वाली किसी शिक्षा संस्था में प्रवेश से किसी भी नागरिक को केवल धर्म, मूलवंश, जाति, भाषा अथवा इनमें से किसी के आधार पर वंचित न रखा जायेगा (अनु० २९)।

धर्म या भाषा पर आधारित सब अल्पसंख्यक वर्गों को अपनी रुचि की शिक्षा-संस्थाओं की स्थापना और प्रशासन का अधिकार होगा।

शिक्षा-संस्थाओं को सहायता देने में राज्य किसी विद्यालय के विरुद्ध इसी आधार पर विभेद न करेगा कि वह धर्म या भाषा पर आधारित किसी अल्पसंख्यक वर्ग के प्रबन्ध में है (अनु० ३०)।

सम्पत्ति का अधिकार:—कोई व्यक्ति विधि के प्राधिकार के बिना अपनी सम्पत्ति से वंचित नहीं किया जायेगा।

किसी जंगम या स्थावर सम्पत्ति पर बिना प्रतिकर के राज्य कब्जा न करेगा। प्रतिकर विधि द्वारा निश्चित होगा।

मतदान का अधिकार—प्रत्येक व्यक्ति, जो भारत का नागरिक हो, इक्कीस वर्ष की अवस्था से कम न हो, तथा किसी विधि के अधीन अनिवास, चित्त-विकृति, अपराध अथवा भ्रष्ट या अवैध आचार के आधार पर अनर्ह नहीं कर दिया गया हो, मतदाता के रूप में पंजीबद्ध होने का हक्कदार होगा (अनु० ३२)।

धर्म, मूलवंश, जाति या लिंग के आधार पर कोई किसी व्यक्ति निर्वाचक नामावलि में सम्मिलित किये जाने के लिये अपात्र न होगा तथा किसी विशेष निर्वाचक नामावलि में सम्मिलित किये जाने का दावा न करेगा (अनु० ३२५)।

इस उपबन्ध द्वारा साम्प्रदायिक निर्वाचनों का अन्त हो जाता है। अब संयुक्त निर्वाचन होंगे।

भारत में यह पहला ही समय है कि मताधिकार को इतना विस्तृत किया गया है। पहले के संविधानों में मतदाता बनने के लिये धन-संबंधी अर्हताएं थीं, पर अब वयस्क मताधिकार रखा गया है। इस समय भारत के ३५ करोड़ लोगों में से लगभग आधे अर्थात १८ करोड़ मतदाता होंगे। संसार के किसी देश में इतने मतदाता नहीं हैं।

१६१६ के संविधान में जनता के केवल ३ प्रतिशत लोगों को मतदान का अधिकार था और १६३५ के संविधान में लगभग १० प्रतिशत लोग मतदाता थे। अब भारत में ५० प्रतिशत मतदाता हैं।

५. राज्य की नीति के सिद्धान्त

मूलाधिकारों के अतिरिक्त संविधान के चतुर्थ भाग में 'राज्य की नीति के निदेशक तत्वों' का उल्लेख है। मूलाधिकारों के समान उन्हें न्यायालयों में जाकर क्रियान्वित नहीं कराया जा सकेगा, तो भी इनमें दिये हुए तत्व देश के शासन में मूलभूत हैं और विधि बनाने में इन तत्वों का प्रयोग करना राज्य का कर्तव्य होगा (अनु० ३७)।

इनमें मुख्य तत्व निम्नलिखित हैं :—

(१) लोककल्याण की उन्नति के हेतु राज्य सामाजिक व्यवस्था बनायेगा (अनु० ३८)।

(२) राज्य अपनी नीति का विशेषतया ऐसा संचालन करेगा कि सुनिश्चित रूप से—

(क) समान रूप से नर और नारी सभी नागरिकों को जीविका के पर्याप्त साधन प्राप्त करने का अधिकार हो,

(ख) समुदाय की भौतिक सम्पति का स्वामित्व और नियंत्रण इस प्रकार बंटा हो कि जिससे सामूहिक हित का सर्वोत्तम रूप से साधन हो,

(ग) आर्थिक व्यवस्था इस प्रकार चले कि जिससे धन और उत्पादन साधनों का सर्व साधारण के लिए अहितकारी केन्द्रण न हो,

(घ) पुरुषों और स्त्रियों दोनों का समान कार्य के लिये समान वेतन हो,

(ङ) मिक पुरुषों और स्त्रियों का स्वास्थ्य और शक्ति तथा बालकों की सुकुमार अवस्था का दुरुपयोग न हो और आर्थिक आवश्यकताओं से विवश होकर नागरिकों को ऐसे रोजगारों में न जाना पड़े जो उनकी आयु या शक्ति के अनुकूल न हों,

(च) शैशव और किशोर अवस्था की शोषण से तथा नैतिक और आर्थिक परित्याग से रक्षा हो (अनु० ३९)।

(३) ग्राम पंचायतों का संघटन—राज्य ग्राम-पंचायतों का संघटन करने की चेष्टा करेगा, तथा उनको ऐसी शक्तियां और प्राधिकार प्रदान करेगा जो उन्हें स्वायत्त शासन की इकाइयों के रूप में कार्य करने योग्य बनाने के लिये आवश्यक हों (अनु० ४०)।

(४) सहायता—राज्य अपनी आर्थिक सामर्थ्य और विकास की सीमाओं के भीतर काम पाने के, शिक्षा पाने के तथा बेकारी, बुढ़ापा, बीमारी, और अंगहानि तथा अन्य अनर्ह अभाव की दशाओं में सार्वजनिक सहायता पाने के, अधिकार को प्राप्त कराने का कार्यसाधक उपबन्ध करेगा (अनु० ४१)।

(५) राज्य काम की यथोचित और मानवोचित दशाओं को सुनिश्चित करने के लिए तथा प्रसूति-सहायता के लिए उपबन्ध करेगा (अनु० ४२)।

(६) श्रमिकों के लिये निर्वाह मजूरी आदि—उपयुक्त विधान या आर्थिक संघटन द्वारा, अथवा और किसी दूसरे प्रकार से राज्य कृषि के, उद्योग के या अन्य प्रकार के सब श्रमिकों को काम, निर्वाह-मजूरी, शिष्ट-जीवन-स्तर, तथा अवकाश का सम्पूर्ण उपभोग सुनिश्चित करनेवाली काम की दशायें तथा सामाजिक और सांस्कृतिक अवसर प्राप्त कराने का प्रयास करेगा, तथा विशेष रूप से ग्रामों में कुटीर उद्योगों को वैयक्तिक अथवा सहकारी आधार पर बढ़ाने का प्रयास करेगा (अनु० ४३)।

(७) भारत के समस्त राज्यक्षेत्र में नागरिकों के लिये राज्य एक समान व्यवहार-संहिता प्राप्त कराने का प्रयास करेगा (अनु० ४४)।

(८) निःशुल्क अनिवार्य शिक्षा—राज्य, इस संविधान के प्रारम्भ से १० वर्ष की अवधि के भीतर सब बालकों को १४ वर्ष की अवस्था-समाप्ति तक निःशुल्क और अनिवार्य शिक्षा देने के लिये प्रबन्ध करने का प्रयास करेगा (अनु० ४५)।

(९) दुर्बल भागों के हितों की उन्नति—राज्य जनता के दुर्बलतर-वर्गों के, विशेषतया हरिजनों तथा आदिम जातियों के शिक्षा तथा अर्थ सम्बन्धी हितों की विशेष सावधानी से उन्नति करेगा और सामाजिक अन्याय तथा सब प्रकारों के शोषण से उन का संरक्षण करेगा (अनु० ४६)।

(१०)आहार तथा सार्वजनिक स्वास्थ्य—राज्य अपने लोगों के आहारपुष्टि-तल और जीवन स्तर को ऊंचा करने तथा सार्वजनिक स्वास्थ्य के सुधार को अपने प्राथमिक कर्तव्यों में से मानेगा तथा विशेषतया, स्वास्थ्य के लिये हानिकर मादक पेयों और औषधियों के औषधीय प्रयोजनों के अतिरिक्त उपभोग का प्रतिषेध करने का प्रयास करेगा (अनु० ४७)।

(११) कृषि और पशु पालन—राज्य कृषि और पशुपालन को आधुनिक और वैज्ञानिक प्रणालियों से संघटित करने का प्रयास करेगा तथा विशेषतः गायों और बछड़ों तथा अन्य दुधारू और वाहक ढोरों की नस्ल के सुधारने के लिये तथा उनके वध का प्रतिषेध करने के लिये अग्रसर होगा (अनु० ४८) ।

(१२) राष्ट्रीय महत्व के स्मारकों की रक्षा—संसद् से विधि द्वारा राष्ट्रीय महत्व वाले घोषित कलात्मक या ऐतिहासिक अभिरुचिवाले प्रत्येक स्मारक, स्थान या वस्तु की यथास्थिति लुंठन, विरूपन, विनाश, अपनयन, व्ययन अथवा निर्यात से रक्षा करना राज्य का आभार होगा (अनु० ४९)।

(१३) राज्य की लोक-सेवाओं में, न्यायपालिका को कार्यपालिका से पृ करने के लिये राज्य चेष्टा करेगा (अनु० ५०)।

(१४) राज्य अन्तराष्ट्रीय शान्ति और सुरक्षा की उन्नति का प्रय करेगा (अनु० ५१)।

—( )—

द्वितीय अध्याय

संघीय शासन व्यवस्था

१. राष्ट्रपति

भारत का एक राष्ट्रपति होगा (अनु० ५२) जो साधारणतः अपने पद ग्रहण की तारीख से पांच वर्ष की अवधि तक पद धारण करेगा (अनु० ५६)।

संघ की कार्यपालिका शक्ति राष्ट्रपति में निहित होगी और वह इसका प्रयोग इस संविधान के अनुसार या तो स्वयं या अपने अधीनस्थ पदाधिकारियों के द्वारा करेगा।

संघ के रक्षाबलों का उच्चतम समादेश राष्ट्रपति में निहित होगा और उसका प्रयोग विधि से विनियमित होगा। किन्तु इससे राज्यों की सरकारों के अधिकारों पर प्रभाव नहीं पड़ेगा, और अन्य प्राधिकारियों को कृत्य देने में संसद को वाधा न होगी (अनु० ५३)।

राष्ट्रपति का निर्वाचन—राष्ट्रपति का निर्वाचन एक ऐसे निर्वाचकगण के सदस्य करेंगे जिसमें संसद के दोनों सदनों के निर्वाचित सदस्य, तथा राज्यों की विधान-सभाओं के निर्वाचित सदस्य होंगे।

राष्ट्रपति का निर्वाचन अनुपाती प्रतिनिधित्व पद्धति के अनुसार एकल संक्रमणीय मत द्वारा होगा और उसमें मतदान गूढ शलाका द्वारा होगा।

जहां तक व्यवहार्य हो, राष्ट्रपति के निर्वाचन में भिन्न भिन्न राज्यों के प्रतिनिधित्व के मापमान में एकरूपता होगी।

राज्यों में आपस में ऐसी एकरूपता तथा समस्त राज्यों और संघ में समतुल्यता प्राप्त करवाने के लिए संसद् तथा प्रत्येक राज्य की विधान-सभा का प्रत्येक निर्वाचित सदस्य इस निर्वाचन में जितने मत देने का हक़दार है उसकी संख्या नीचे लिखे प्रकार से निर्धारित की जायेगी :—

(क) किसी राज्य की विधान-सभा के प्रत्येक निर्वाचित सदस्य के उतने मत होंगे, जितने कि एक हजार के गुणित, उस भागफल में हों जो राज्य की जनसंख्या को उस सभा के निर्वाचित सदस्यों की सम्पूर्ण संख्या से, भाग देने से आयें;

(ख) एक हजार के उक्त गुणितों को लेने के बाद यदि शेष पांच सौ से कम न हो तो उपखंड (क) में उल्लिखित प्रत्येक सदस्य के मतों की संख्या में एक और जोड़ दिया जायेगा।

(ग) संसद् के प्रत्येक सदन के त्येक निर्वाचित सदस्य के मतों की संख्या वही होगी जो उपखंड (क) तथा (ख) के अधीन राज्यों की विधान-सभाओं के सदस्यों के लिये नियत सम्पूर्ण मत-संख्या को, संसद् के दोनों सदनो के निर्वाचित सदस्यों की सम्पूर्ण संख्या से भाग देने से आये, जिसमें आधे से अधिक भिन्न को एक गिना जायेगा और अन्य भिन्नों की उपेक्षा की जायेगी।

उपर्युक्त खंड (क) और (ख) का हिसाब निम्न लिखित उदाहरण से स्पष्ट हो जायेगा :

उत्तर प्रदेश की जनसंख्या ६,१६,२०,००० है। उसकी विधान-सभा में ४३० सदस्य होंगे। यह मालूम करने के लिए कि प्रत्येक निर्वाचित सदस्य

राष्ट्रपति के निर्वाचन में कितने मत दे सकेगा, हमें सर्वप्रथम ६,१६,२०,००० (जनसंख्या) को ४३० (कुल निर्वाचित सदस्यों की संख्या) से विभाजित करना होगा, और फिर भागफल में १००० का भाग दिया जायेगा। इसमें भागफल $\frac{६१६२००००}{४३०}$ = १४३३ आया। अतः प्रत्येक सदस्य जितने मत देने का हक्कदार होगा उनकी [illegible] । है १४३३०२/१००० अर्थात १४३ (शेष ३०२ को नहीं गिना गया क्योंकि वह ५०० से कम है)।

खंड (ग) का उदाहरण

मान लीजिये कि उपर्युक्त हिसाब से राज्यों की विधान-सभाओं के सदस्यों के लिए नियत मतों की संख्या ७४,९४० है और संसद् के दोनों सदनों के सदस्यों की कुल संख्या ७१० है, तो संसद् के प्रत्येक सदस्य के मतों की संख्या मालूम करने के लिये हम ७४,९४० को ७१० से विभाजित करेंगे। संसद् का प्रत्येक सदस्य राष्ट्रपति के निर्वाचन में इतने मत देगा :—

$\frac{७४९४०}{७१०}$ = १०५ $\frac{३९}{७१}$ अर्थात १०६ (क्योंकि $\frac{३९}{७१}$ को आधे से अधिक भिन्न होने के कारण, एक गिना जायेगा।

राष्ट्रपति निर्वाचित होने के लिए अर्हताएं—कोई व्यक्ति राष्ट्रपति निर्वाचित होने का पात्र न होगा जब तक कि वह :

(क) भारत का नागरिक न हो,

(ख) ३५ वर्ष की आयु पूरी न कर चुका हो, तथा

(ग) लोक-सभा के लिए सदस्य निर्वाचित होने की अर्हता न रखता हो।

इसके अतिरिक्त कोई व्यक्ति जो भारत सरकार के अथवा किसी राज्य की सरकार के अधीन किसी लाभ का पद धारण किये हुए है, राष्ट्रपति निर्वाचित होने का पात्र न होगा (अनु० ५८)।

राष्ट्रपति न तो संसद के किसी सदन का और न किसी राज्य के विधान-मंडल के सदन का सदस्य होगा।

राष्ट्रपति द्वारा शपथ—प्रत्येक राष्ट्रपति और प्रत्येक व्यक्ति जो राष्ट्रपति के रूप में कार्य कर रहा है अपना पद ग्रहण करने से पूर्व भारत के मुख्य न्यायाधिपति के समक्ष निम्न रूप में शपथ या प्रतिज्ञान करेगा और उस पर अपने हस्ताक्षर करेगा :

"मैं, अमुक, ईश्वर की शपथ लेता हूं / सत्य निष्ठा से प्रतिज्ञान करता हूं — कि मैं श्रद्धा पूर्वक भारत के राष्ट्रपति-पद का कार्यपालन (अथवा राष्ट्रपति के कृत्यों का निर्वहन करूंगा तथा अपनी पूरी योग्यता से संविधान और विधि का परिरक्षण, संरक्षण और प्रतिरक्षण करूंगा और मैं भारत की जनता की सेवा और कल्याण में निरत रहूंगा।"

इसी प्रकार की शपथ या प्रतिज्ञान, प्रकारान्तर से, राज्यपाल, सदनों के सदस्य, मन्त्री आदि भी करेंगे।

२. राष्ट्रपति पर महाभियोग

संविधान के अतिक्रमण करने पर राष्ट्रपति को महाभियोग द्वारा हटाया जा सकेगा (अनु० ५६)। जब राष्ट्रपति पर महाभियोग चलाना हो, तब संसद् का कोई सदन दोषारोप करेगा। इसके लिये उस सदन के समस्त सदस्यों के कम से कम दो तिहाई बहुमत से एक संकल्प पारित होना अपेक्षित है। जब दोषारोप संसद् के किसी सदन द्वारा इस प्रकार किया जा चुके, तब दूसरा सदन उस दोषारोप का अनुसंधान करेगा या करायेगा और इस अनुसंधान में उपस्थित होने का तथा अपना प्रतिनिधित्व कराने का राष्ट्रपति को अधिकार होगा।

यदि अनुसंधान के फलस्वरूप उस सदन के समस्त सदस्यों के कम से कम दो तिहाई बहुमत से उस दोषारोप की सिद्धि को घोषित करने वाला संकल्प पारित हो जाता है तो उस संकल्प का प्रभाव उसकी पारण तिथि से राष्ट्रपति का अपने पद से हटाया जाना होगा (अनु० ६१)।

महाभियोग सम्बन्धी उपर्युक्त उपबन्ध अत्यधिक महत्वपूर्ण हैं। वास्तव में राष्ट्रपति को संविधान द्वारा प्रदत्त समस्त शक्ति पर इस अनुच्छेद से सांविधानिक रोक लगा दी गई है। कार्यपालिका का स्वामी राष्ट्रपति

यदि मंत्रि-परिषद् की मन्त्रणा के विरुद्ध चलने का साहस करे तो वह इस उपबन्ध की अनुपस्थिति में निरंकुश तानाशाह बन सकता है। अतः यह उपबन्ध रखा गया है। संसद् में सदा मंत्रि-परिषद् का बहुमत होने से मंत्रि-परिषद् महाभियोग का ही भय दिखा कर राष्ट्रपति को अपनी मंत्रणा पर चलने के लिये वाध्य कर सकती है।

३. क्षमा आदि की राष्ट्रपति की शक्ति

किसी अपराध के लिए सिद्ध दोष किसी व्यक्ति के दंड को क्षमा प्रविलम्बन, प्रस्थगन या परिहार करने की अथवा दंडादेश का परिहार या लघूकरण की राष्ट्रपति को शक्ति होगी, यदि वह दंड अथवा दंडादेश सेना न्यायालय ने दिया हो, अथवा संघीय विषय सम्बन्धी किसी विधि के विरुद्ध अपराध के लिये दिया गया हो अथवा वह दंडादेश मृत्यु का हो (अनु० ७२)।

४. राष्ट्रपति का संरक्षण

राष्ट्रपति अपने पद की शक्तियों के प्रयोग और कर्तव्यों के पालन में अपने द्वारा किये गये अथवा कर्तुमभिप्रेत किसी कार्य के लिये किसी न्यायालय को उत्तरदायी न होगा।

परन्तु महाभियोग के संबन्ध में संसद् के किसी सदन द्वारा नियुक्त न्यायालय राष्ट्रपति के आचरण का पुनर्विलोकन कर सकेगा और किसी व्यक्ति का भारत सरकार के विरुद्ध कार्यवाही चलाने का अधिकार निर्बन्धित न होगा।

राष्ट्रपति के विरुद्ध उसकी पदावधि में किसी प्रकार की दंड कार्यवाही किसी न्यायालय में न चलेगी और कोई न्यायालय उसे बन्दी या कारावासी करने के लिये कोई आदेशिका नहीं निकाल सकेगा।

राष्ट्रपति के विरुद्ध कोई व्यवहार कार्यवाही भी तब तक नहीं चलेगी जब तक कि उसे दो मास पूर्व लिखित सूचना न दे दी जाये (अनुच्छेद ३६१)।

यही संरक्षण सम्बन्धी उपबन्ध राज्यपालों तथा राजप्रमुखों के विषय में भी लागू होंगे।

५. राष्ट्रपति की विधायिनी शक्तियां

उस समय को छोड़ कर जब कि संसद् के दोनों सदन सत्र में हैं, राष्ट्रपति तुरन्त कार्यवाही की आवश्यकता होने पर अध्यादेश जारी कर सकेगा, जो संसद् के अधिनियम के समान प्रभावी होगा किन्तु ऐसा अध्यादेश संसद् के समक्ष रखा जायेगा, तथा संसद् के पुनः समवेत होने के बाद ६ सप्ताह की समाप्ति पर प्रवर्तन में न रह सकेगा (अनु० १२३)।

६. भारत का उपराष्ट्र पति

भारत का एक उपराष्ट्रपति होगा जो राष्ट्रपति की मृत्यु, पदत्याग अथवा पद से हटाये जाने अथवा अन्य कारण से पद रिक्तता की अवस्था में राष्ट्रपति के रूप में कार्य करेगा जब तक नया राष्ट्रपति निर्वाचित न हो जाय। अनुपस्थिति, बीमारी अथवा अन्य किसी कारण से जब राष्ट्रपति अपने कृत्यों को करने में असमर्थ हो, तब भी उपराष्ट्रपति ही उसके कृत्यों का निर्वहन करेगा (अनु० ६३ और ६५)।

उपराष्ट्रपति पदेन राज्य परिषद् का सभापति होगा और अन्य कोई लाभ का पद धारण न करेगा (अनु० ६४)।

उपराष्ट्रपति का निर्वाचन—संयुक्त अधिवेशन में एकत्रित, संसद् के दोनों सदनों के सदस्यों द्वारा अनुपाती प्रतिनिधित्व पद्धति के अनुसार एकल संक्रमणीय मत द्वारा उपराष्ट्रपति का निर्वाचन होगा तथा ऐसे निर्वाचन में मतदान गूढ शलाका द्वारा होगा।

उपराष्ट्रपति न तो संसद के किसी सदन का और न किसी राज्य के विधान-मंडल के सदन का सदस्य होगा।

कोई व्यक्ति उपराष्ट्रपति निर्वाचित होने का पात्र न होगा जब तक कि वह भारत का नागरिक न हो, ३५ वर्ष की आयु पूरी न कर चुका हो और राज्य-परिषद् के लिए सदस्य निर्वाचित होने की अर्हता न रखता हो।

कोई व्यक्ति जो भारत सरकार के अथवा किसी राज्य की सरकार के अधीन कोई लाभ का पद धारण किए हुए हो उपराष्ट्रपति निर्वाचित होने का पात्र न होगा (अनु० ६६)।

उपराष्ट्रपति की पदावधि—उपराष्ट्रपति अपने पद ग्रहण की तारीख से पांच वर्ष की अवधि तक पद धारण करेगा, परन्तु उपराष्ट्रपति, राष्ट्रपति को सम्बोधित अपने हस्ताक्षर सहित लेख द्वारा अपना पद त्याग सकेगा और उपराष्ट्रपति, राज्य-परिषद् के ऐसे संकल्प द्वारा, अपने पद से हटाया जा सकेगा जिसे परिषद् के तत्कालीन समस्त सदस्यों के बहुमत ने पारण किया हो तथा जिसे लोक-सभा ने स्वीकृत किया हो (अनु० ६७)।

उपराष्ट्रपति द्वारा शपथ—प्रत्येक उपराष्ट्रपति अपने पद ग्रहण करने से पूर्व राष्ट्रपति अथवा उसके द्वारा उस लिये नियुक्त किसी व्यक्ति के समक्ष निम्न रूप में शपथ या प्रतिज्ञान करेगा और उस पर अपना हस्ताक्षर करेगा, अर्थात्:

मैं, अमुक......... ईश्वर की शपथ लेता हूं / सत्य निष्ठा से प्रतिज्ञान करता हूं कि मैं भारत के संविधान के प्रति श्रद्धा और निष्ठा रखूंगा तथा जिस पद को मैं ग्रहण करने वाला हूं उसके कर्तव्यों का श्रद्धापूर्वक निर्वहन करूंगा।

राष्ट्रपति या उपराष्ट्रपति के निर्वाचन से उत्पन्न या सम्बन्धित सब शंकाओं और विवादों की जाँच और निर्णय उच्चतम न्यायालय करेगा और उसका निर्णय अन्तिम होगा। इसका यह आशय है कि उच्चतम न्यायालय किसी व्यक्ति के राष्ट्रपति या उपराष्ट्रपति के रूप में निर्वाचन को शून्य घोषित कर सकता है (अनु० ७१)।

७. संघ की कार्यपालिका शक्ति

संघ की कार्यपालिका शक्ति का विस्तार उन विषयों तक होगा जिनके सम्बन्ध में संसद् को विधि बनाने की शक्ति है (अर्थात् संघ-सूचि और समवर्ती सूचि के विषयों तक होगा] इसके अतिरिक्त किसी संधि या करार के आधार पर भारत सरकार द्वारा प्रयोग किये जाने वाले अधिकार, प्राधिकार और क्षेत्राधिकार का प्रयोग भी संघीय कार्यपालिका द्वारा ही किया जायेगा (अनु० ७३)।

याद रहे भारत की शासन प्रणाली संघीय है अतः संघ की कार्यपालिका शक्ति तथा संसद् की विधि बनाने की शक्ति 'संघ सूची' तथा 'समवर्ती सूची' के विषयों तक ही सीमित है जिनका वर्णन आगे चल कर किया जायेगा (देखिये परिशिष्ट)।

८. मंत्रि-परिषद्

राष्ट्रपति को अपने कृत्यों का सम्पादन करने में सहायता और मंत्रणा देने के लिये एक मंत्रि-परिषद् होगी, जिसका अगुवा प्रधान मंत्री होगा। क्या मंत्रियों ने राष्ट्रपति कोई मंत्रणा दी और यदि दी तो क्या दी, इस प्रश्न की किसी न्यायालय में जांच न की जायेगी (अनु० ७४)।

प्रधान मंत्री की नियुक्ति राष्ट्रपति करेगा और अन्य मंत्रियों की नियुक्ति राष्ट्रपति प्रधान मंत्री की मंत्रणा पर करेगा। राष्ट्रपति के प्रसाद पर्य्यन्त मन्त्री अपने पद धारण करेंगे। मन्त्रि परिषद लोक-सभा के प्रति सामूहिक रूप से उत्तरदायी होगी। किसी मंत्री के अपने पद ग्रहण करने से पहले राष्ट्रपति उससे पद की तथा गोपनीयता की शपथें करायेगा। कोई मंत्री जो निरन्तर छः मास की किसी अवधि तक संसद् के किसी सदन का सदस्य न रहे, उस अवधि की समाप्ति पर मंत्री न रहेगा। मंत्रियों के वेतन तथा भत्ते वे होंगे जो समय समय पर संसद् विधि द्वारा निश्चय करे (अनु० ७५)।

९. सरकारी कार्य का संचालन

भारत सरकार की समस्त कार्यपालिका कार्यवाही राष्ट्रपति के नाम से की हुई कही जायेगी।

भारत सरकार का कार्य अधिक सुविधा पूर्वक किये जाने के लिये तथा मंत्रियों में उक्त कार्य को बांटने के लिये राष्ट्रपति नियम बनायेगा (अनु० ७७)।

प्रधान मंत्री का कर्तव्य होगा कि वह संघ कार्यों के प्रशासन सम्बन्धी मंत्रि-परिषद् के समस्त निर्णय तथा विधान के लिये प्रस्थापनायें, राष्ट्रपति को पहुंचाये;

संघ कार्यों के प्रशासन सम्बन्धी तथा विधान विषयक प्रस्थापनाः सम्बन्धी जिस जानकारी को राष्ट्रपति मंगावे, उसको दे तथा;

किसी विषय को जिस पर किसी मंत्री ने निर्णय कर दिया है किन मंत्रि परिषद् ने विचार नहीं किया हो, राष्ट्रपति की अपेक्षा करने पर परिष के सम्मुख विचार के लिए रखे (अनु० ७८)।

१०. भारत का महान्यायावादी

उच्चतम न्यायालय के न्यायाधीश नियुक्त होने की योग्यत रखने वाले व्यक्ति को राष्ट्रपति भारत का महान्यायावादी नियुक्त करेगा।

महान्यायावादी का कर्तव्य होगा कि वह भारत सरकार को ऐसे विधि सम्बन्धी विषयों पर मंत्रणा दे और ऐसे विधि रूप दूसरे कर्तव्यों का पाल करे जो राष्ट्रपति उसे समय समय पर भेजे या सौंपे। अपने कर्तव्य के पाल के लिये महान्यायवादी को भारत राज्य-क्षेत्र में के सब न्यायालयों सुनवाई का अधिकार होगा।

महन्यायावादी राष्ट्रपति के प्रसाद पर्यन्त पद धारण करेगा तथ राष्ट्रपति द्वारा निश्चित पारिश्रमिक पायेगा (अनु० ७६)।

११. संसद की रचना

संसद् का गठन—संघ के लिये एक संसद होगी जो राष्ट्रपति और दो सदनों से मिल कर बनेगी जिनके नाम क्रमशः राज्य-परिषद और लोक सभा होंगे (अनु० ७९)।

राज्य-परिषद् की रचना

राज्य-परिषद राष्ट्रपति द्वारा मनोनीत बारह सदस्यों और राज्यों के दो सौ अडतीस से अनधिक प्रतिनिधियों से मिलकर बनेगी। राष्ट्रपति द्वार मनोनीत किये जाने वाले सदस्य ऐसे व्यक्ति होंगे जिन्हें साहित्य विज्ञान कला और समाज सेवा के बारे में विशेष ज्ञान या व्यवहारिक अनुभव है

राज्य-परिषद् के लिये राज्यपालों तथा राजप्रमुखों के प्रत्येक राज्य के प्रतिनिधि उस राज्य की विधान-सभा के निर्वाचित सदस्यों द्वारा अनुपाती प्रतिनिधित्व पद्धति के अनुसार एकल संक्रमणीय मत द्वारा निर्वाचित होंगे; और केन्द्रीय शासन के आधीनस्थ राज्यों के प्रतिनिधि ऐसी रीति से चुने जायेंगे जैसी कि संसद् विधि द्वारा निश्चित करे (अनु० ८०)।

राज्यों के प्रतिनिधि द्वारा भरे जाने वाले स्थानों का बटवारा इस प्रकार होगाः—

भाग (क) राज्यपालों के राज्य—१४५ स्थान

१.	आसाम	६	६.	मद्रास	२७
२.	पश्चिमी बंगाल	१४	७.	उड़ीसा	९
३.	बिहार	२१	८.	पंजाब	८
४.	बम्बई	१७	९.	उत्तर प्रदेश	३१
५.	मध्य प्रदेश	१२			

भाग (ख) राजप्रमुखों के राज्य—४९ स्थान

१.	हैदराबाद	११	५.	प०पू०प०रा० संघ	३
२.	जम्मू और काश्मीर	४	६.	राजस्थान	९
३.	मध्यभारत	६	७.	सौराष्ट्र	४
४.	मैसूर	६	८.	त्रावनकोर-कोचीन	६

भाग (ग) केन्द्रीय शासन के अधीनस्थ राज्य—११ स्थान

१.	अजमेर }	१	६.	कूच बिहार	१
२.	कुर्ग }		७.	दिल्ली	१
३.	भोपाल	१	८.	कच्छ	१
४.	बिलासपुर }		९.	मनीपुर }	१
५.	हिमाचल }	१	१०.	त्रिपुरा }	
			११.	विन्ध्य प्रदेश	४

लोक सभा की रचना—राज्यों में के मत दाताओं द्वारा प्रत्यक्ष रीति से निर्वाचित ५०० से अधिक सदस्यों से मिल कर लोक-सभा बनेगी।

प्रति ७,५०,००० जनसंख्या के लिये एक से कम सदस्य तथा प्रति ५००००० जनसंख्या के लिए एक से अधिक सदस्य न होगा।

प्रत्येक प्रादेशिक निर्वाचन क्षेत्र को बांट में दिये गये सदस्यों की संख्या का निश्चित की गई जनसंख्या से अनुपात समस्त भारत में यथासाध्य एक ही होगा।

लोक-सभा में जनसंख्या के प्रत्येक ७.२ लाख के लिये एक स्थान रखा गया है। स्थान वितरण इस प्रकार है :

भाग (क) राज्यपालों के राज्य			भाग (ख) राजप्रमुखों के राज्य		
१.	उत्तरप्रदेश	८६	१	हैदराबाद	२५
२.	आसाम	१२	२	जम्मू और काश्मीर	६
३.	बिहार	५५	३	मध्यभारत	११
४.	बम्बई	४५	४	मैसूर	११
५.	मध्यप्रदेश	२९	५	प. पू. प. रा.संघ	५
६.	मद्रास	७५	६	राजस्थान	२०
७.	उड़ीसा	२०	७	सौराष्ट्र	६
८.	पंजाब	१८	८	त्रावनकोर-कोचीन	१२
९.	पश्चिमी बंगाल	३४			
	योग	३७४		योग	९६

भाग (ग) केन्द्र-प्रशासित राज्य

१.	विन्ध्यप्रदेश	६	७	त्रिपुरा	२
२.	दिल्ली	४	८	मनीपुर	२
३.	हिमाचल प्रदेश	३	९	कुर्ग	१
४.	अजमेर	२	१०	बिलासपुर	१
५	भोपाल	२	११	अंदमान	१
६	कच्छ	२			२६

कुल स्थान—४९६

प्रत्येक जनगणना की समाप्ति पर लोक-सभा में, विभिन्न प्रादेशिक निर्वाचन-क्षेत्रों के प्रतिनिधित्व का पुनः समायोजन किया जायेगा।

परन्तु ऐसे पुनः समायोजन से उस समय विद्यमान लोक-सभा के प्रतिनिधित्व पर कोई प्रभाव नहीं पड़ेगा (अनु० ८१)।

संसद् के सदनों की अवधि : राज्य-परिषद् का विघटन न होगा, किन्तु उसके सदस्यों में से यथाशक्य निकटतम एक तिहाई प्रत्येक द्वितीय वर्ष की समाप्ति पर निवृत्त हो जायेंगे। लोक-सभा यदि पहिले ही विघटन न कर दी जाये, तो अपने प्रथम अधिवेशन के लिये नियुक्त तारीख से पांच वर्ष तक चालू रहेगी और इससे अधिक नहीं तथा पांच वर्ष की समाप्ति का परिणाम लोक-सभा का विघटन होगा।

परन्तु उक्त अवधि को, जब तक आपात स्थिति की उद्घोषणा प्रवर्तन में है, संसद् विधि द्वारा किसी अवधि के लिये बढ़ा सकेगी, जो एक बार एक वर्ष से अधिक न होगी और किसी अवस्था में भी उद्घोषणा के पश्चात् छः मास की अवधि से अधिक विस्तृत न होगी (अनु० ८३).।

१२. सदस्यों की अर्हता आदि

कोई व्यक्ति संसद् में के किसी स्थान की पूर्ति के लिये चुने जाने के लिये अर्ह न होगा जब तक कि—

(क) वह भारत का नागरिक न हो,

(ख) राज्य-परिषद् के स्थान के लिये, कम से कम तीस वर्ष की आयु का तथा लोक-सभा के स्थान के लिये कम से कम पच्चीस वर्ष की आयु का न हो, तथा

(ग) ऐसी अन्य अर्हतायें न रखता हो जो कि इस बारे में संसद् निर्मित किसी विधि के द्वारा या अधीन विहित की जायें (अनु० ८४)।

सदस्यों की अनर्हतायें: कोई व्यक्ति संसद के दोनों सदनों का सदस्य न होगा। कोई व्यक्ति संसद अथवा किसी राज्य के विधान-मंडल इन दोनों का सदस्य न होगा।

यदि कोई सदस्य साठ दिन की कालावधि तक सदन की अनुज्ञा ; बिना उसके सब अधिवेशनों से अनुपस्थित रहे तो सदन उसके स्थान को रिक्त घोषित कर सकेगा (अनु० १०१)।

कोई व्यक्ति संसद् का सदस्य बनने के लिये अनर्ह होगा—

(क) यदि वह भारत सरकार के अथवा किसी राज्य की सरकार के अधीन कोई लाभ का पद धारण किये हुए है,

(ख) यदि वह विकृतचित्त है

(ग) यदि वह भारत का नागरिक नहीं है

(घ) यदि वह अनुन्मुक्त दिवालिया है

(ङ) यदि वह संसद्-निर्मित किसी विधि के द्वारा इस प्रकार अनर्ह कर दिया गया है (अनु० १०२)।

यदि संसद् के किसी सदन में कोई व्यक्ति सदस्य के रूप में उपर्युक्त पेक्षाओं की पूर्ति करने के पूर्व बैठता या मतदान करता है, तो वह प्रत्येक न के लिये, जब कि वह इस प्रकार बैठता है पांच सौ रुपये के दंड का ागी होगा (अनु० १०४)।

सदस्यों की शक्तियां, विशेषाधिकार आदि : इस संविधान के बन्धों के तथा संसद् की प्रक्रिया के नियमों और स्थायी आदेशों के अधीन ते हुए संसद् में वाक्-स्वातन्त्र्य होगा।

संसद् में या उसकी किसी समिति में कही हुई बात किसी के विषय में सी सदस्य के विरुद्ध किसी न्यायालय में कोई कार्यवाही नहीं चल सकेगी।

अन्य बातों में सदस्यों तथा सदन की शक्तियां विशेषाधिकार और मुक्तियां ऐसी होंगी, जैसी संसद्, समय समय पर विधि द्वारा परिभाषित रें, और जब तक इस प्रकार परिभाषित नहीं की जातीं तब तक इंगलिस्तान ा लोकसभा के समान होंगी।

शपथ या प्रतिज्ञान : संसद् के प्रत्येक सदन का प्रत्येक सदस्य पना स्थान ग्रहण करने से पूर्व, राष्ट्रपति द्वारा तदर्थ नियुक्त व्यक्ति के समक्ष पथ लेगा या प्रतिज्ञान करेगा तथा उस पर हस्ताक्षर करेगा (अनुच्छेद ९९)।

१३. संसद् और कार्यपालिका

राष्ट्रपति समय समय पर सदनों को अथवा किसी सदन को ऐसे समय तथा स्थान पर जैसा कि वह उचित समझे, अधिवेशन के लिये बुला सकेगा, सदनों का सत्रावसान कर सकेगा, तथा लोक-सभा का विघटन कर सकेगा। किन्तु संसद् के सदनों को प्रतिवर्ष कम से कम दो बार अधिवेशन के लिये बुलाया जायेगा, तथा दो बैठकों के बीच छः मास का अन्तर न होगा (अनु० ८५)।

संसद् के किसी एक सदन को अथवा साथ समवेत दोनों सदनों को राष्ट्रपति सम्बोधित कर सकेगा और इस प्रयोजन के लिये सदस्यों की उपस्थिति की अपेक्षा कर सकेगा।

राष्ट्रपति संसद् में उस समय लम्बित किसी विधेयक विषयक अथवा अन्य विषयक सन्देश संसद् के किसी सदन को भेज सकेगा और वह सदन, उस सन्देश द्वारा अपेक्षित विचारणीय विषय पर यथासुविधा शीघ्रता से विचार करेगा अनु० ८६)।

प्रत्येक सत्र के आरम्भ में, साथ समवेत संसद् के दोनों सदनों को राष्ट्रपति सम्बोधन करेगा और संसद् को आह्वान का कारण बतायेगा (अनु० ८७)।

सदनों विषयक मंत्रियों और महान्यायवादी के अधिकार— भारत के प्रत्येक मंत्री और महान्यायवादी को अधिकार होगा कि वह किसी भी सदन में, सदनों के किसी संयुक्त बैठक में, तथा संसद् की किसी समिति में, जिसमें उसका नाम सदस्य के रूप में दिया गया हो, बोले तथा दूसरे प्रकार से कार्यवाहियों में भाग ले, किन्तु इस अनुच्छेद के आधार पर उसको मत देने का हक्क न होगा (अनु० ८८)।

१४. संसद् के पदाधिकारी

भारत का उपराष्ट्रपति पदेन राज्य-परिषद् का सभापति होगा।

राज्य-परिषद् यथासम्भव शीघ्र अपने किसी सदस्य को अपना उप-सभापति चुनेगी (अनु० ८९)।

जब कि सभापति का पद रिक्त हो, अथवा किसी कालावधि में जब कि उपराष्ट्रपति राष्ट्रपति के रूप में कार्य कर रहा हो, अथवा उसके कृत्यों का निर्वहन कर रहा हो, अथवा सभापति अनुपस्थित हो; तब उपसभापति उस पद के कर्तव्यों का पालन करेगा (अनु० ६१)।

लोक-सभा का अध्यक्ष और उपाध्यक्ष—लोक-सभा यथासम्भव शीघ्र अपने दो सदस्यों को क्रमशः अपने अध्यक्ष और उपाध्यक्ष चुनेगी।

जब कि अध्यक्ष का पद रिक्त हो या वह अनुपस्थित हो तब उपाध्यक्ष उस पद के कर्तव्यों का पालन करेगा (अनु० ६३, ६५)।

राज्य-परिषद् के सभापति और उपसभापति को, तथा लोक-सभा के अध्यक्ष और उपाध्यक्ष को, वे वेतन और भत्ते दिये जायेंगे, जो क्रमशः संसद् विधि द्वारा नियत करे। संसद् के प्रत्येक सदन का अपना पृथक सचिवालय कर्मीवृन्द होगा (अनु० ६७, ६८)।

१५. संसद् में कार्य प्रणाली

बहुमत से निश्चय—संविधान में अन्यथा उपबन्धित अवस्था को छोड़ कर किसी सदन की किसी बैठक में अथवा सदनों की संयुक्त बैठक में सब प्रश्नों का निश्चय उपस्थित तथा मतदान देने वाले सदस्यों के बहुमत से किया जायेगा। अध्यक्ष या सभापति या उसके रूप में कार्य करने वाला व्यक्ति प्रथमतः मत न देगा, पर मतसाम्य की अवस्था में उसका निर्णायक मत होगा और वह उसका प्रयोग करेगा (अनु० १००)।

प्रक्रिया के नियम—प्रत्येक सदन अपनी प्रक्रिया के, तथा अपने कार्य संचालन के, विनियमन के लिये नियम बना सकेगा।

भाषा—संसद् में कार्य हिन्दी में या अंग्रेजी में किया जायेगा, किन्तु १५ वर्ष तक विधेयक आदि अंग्रेजी में ही पेश होंगे। १५ वर्ष बाद अंग्रेजी में कार्य नहीं होगा, जब तक कि संसद् अन्यथा उपबन्ध न करे। कोई सदस्य दोनों भाषाओं में अपनी पर्याप्त अभिव्यक्ति नहीं कर सके, तो यथास्थिति सभापति या अध्यक्ष उसे अपनी मातृभाषा में बोलने की अनुमति दे सकेगा (अनु० १२०)।

न्यायाधीशों की आलोचना—उच्चतम न्यायालय या उच्च न्यायालय के किसी न्यायाधीश के कर्तव्य पालन में किये गये आचरण के विषय में संसद में कोई चर्चा नहीं होगी, जब तक कि उसे हटाने का प्रस्ताव नियमानुसार पेश न हो (अनु० १२२)।

विधेयकों के पारण की प्रणाली—धन-विधेयकों तथा अन्य वित्तीय विधेयकों के अतिरिक्त कोई विधेयक संसद के किसी सदन में आरम्भ हो सकेगा। दोनों सदनों द्वारा स्वीकृत होने पर ही कोई विधेयक पारित समझा जायेगा (अनु० १०७)।

यदि किसी विधेयक के विषय में या उसमें किये जाने वाले किसी संशोधन पर दोनों सदन अंतिम रूप वे असहमत हो जायें, तो राष्ट्रपति दोनों सदनों को संयुक्त बैठक में अधिवेशित होने के लिये अधिसूचना देगा और यदि संयुक्त बैठक में वह विधेयक बहुमत से पारित हो जाये तो वह दोनों सदनों द्वारा पारित समझा जायेगा (अनु० १०८)।

धन-विधेयकों पर लोक-सभा की सम्पूर्ण सत्ता—धन-विधेयक राज्य-परिषद् में पुरः स्थापित नहीं किया जायेगा। लोक-सभा में पारित हो जाने के पश्चात, धन-विधेयक राज्य-परिषद् में उसकी सिपारिश के लिये जायेगा, तथा राज्यपरिषद् उसे चौदह दिन की कालावधि के भीतर अपनी सिपारिशों सहित लोक-सभा को लौटा देगी और लोक-सभा उन सिपारिशों में से सबको या किसी को स्वीकार या अस्वीकार कर सकेगी (अनु० १०९)।

राष्ट्रपति की अनुमति—दोनों सदनों द्वारा पारित होने के पश्चात प्रत्येक विधेयक राष्ट्रपति के समक्ष उपस्थित किया जायेगा तथा राष्ट्रपति या तो उस पर अनुमति दे देगा या उसे, यदि वह धन-विधेयक नहीं है तो, सदनों को अपने संदेश के साथ पुनर्विचार के लिये लौटा सकेगा। परन्तु यदि वह सदनों द्वारा संशोधन सहित या रहित पुनः पारित हो जाये, तो राष्ट्रपति उस पर अपनी अनुमति न रोकेगा।

१६. आय-व्ययक

राष्ट्रपति प्रतिवर्ष संसद के दोनों सदनों के समक्ष उस वित्तीय वर्ष के लिये प्राक्कलित प्राप्तियों और व्ययों का विवरण (बजट) रखवायेगा। उस

विवरण में भारत की 'संचित निधि' पर भारित व्यय तथा अन्य व्ययों की राशियां पृथक पृथक दिखाई जायेगी। राष्ट्रपति की उपलब्धियां, सदनों के सभापति, उपसभापति, अध्यक्ष तथा उपाध्यक्ष, के वेतन भत्ते, ऋणभार, उच्चतम न्यायालय के न्यायाधीशों के वेतन, भत्ते तथा निवृति वेतन, महा-लेखापरीक्षक के वेतनादि तथा देशी नरेशों की निजी थैलियां आदि व्यय संचित विधि पर भारित व्यय होंगे (अनु० ११२)।

भारित व्यय पर संसद में मतदान नहीं होगा पर चर्चा हो सकती है। अन्य व्यय की प्राक्कलनें अनुदानों के रूप में रखी जायेंगीं तथा लोकसभा किसी मांग को स्वीकार या अस्वीकार अथवा कम कर सकती है। राष्ट्रपति की सिपारिश के बिना कोई मांग न की जायेगी। इस प्रकार स्वीकृत व्यय के अतिरिक्त कोई धन संचित निधि में से नहीं निकाला जायेगा (अनु० ११३- ११४)।

विनियोग विधेयक—अनुदान स्वीकृत होने के पश्चात संसद में एक विनियोग विधेयक पेश किया जायेगा जिसमें संसद द्वारा किये गये अनुदान तथा भारत की संचित निधि पर भारित व्यय सब राशियां समाविष्ट होंगी।

वर्ष के मध्य में अनुपूरक, अपर या अधिकाई अनुदान भी संसद में पेश किये जा सकते हैं। कोई धन-विधेयक राष्ट्रपति की सिपारिश के बिना प्रस्तावित नहीं किया जायेगा (अनु० ११७)।

—:०:—

तृतीय अध्याय

राज्यों की शासन-व्यवस्था

१. सामान्य

राज्यपालों तथा राजप्रमुखों के राज्यों में शासन-व्यवस्था की रूपरेखा मुख्यतः केन्द्रीय ढांचे से मिलती हुई है। उन राज्यों में राज्यपालों अथवा राजप्रमुखों की स्थिति सामान्यतः वही है जो संघीय ढांचे में राष्ट्रपति की है और उनका अपनी अपनी मंत्रि-परिषदों से वही सम्बन्ध है जो केन्द्र में राष्ट्रपति का संघीय मंत्रि-परिषद् से है। इसी प्रकार उन राज्यों में विधान-सभा की वही स्थिति है जो केन्द्र में लोक-सभा की है तथा जिन राज्यों में द्वितीय सदन विधान-परिषद् हो, वहाँ उसकी स्थिति राज्य-परिषद् के समान ही प्रायः होगी। दोनों व्यवस्थाओं में यह अन्तर है कि राज्यपाल या राजप्रमुख को महाभियोग द्वारा नहीं हटाया जा सकता। राज्यपाल राष्ट्रपति द्वारा नियुक्त किया जायेगा तथा राष्ट्रपति के प्रसाद काल तक ही अपने पद पर आसीन रहेगा, यद्यपि सामान्यतः उसकी पदावधि पांच वर्ष होगी। राजप्रमुख तब तक अपने पद पर रहेगा जब तक राष्ट्रपति उसे इस रूप में मान्यता दे, अर्थात उसकी पदावधि की सीमा न होगी। हैदराबाद में वही व्यक्ति राजप्रमुख की शक्तियों का प्रयोग करेगा जिसे राष्ट्रपति उस समय निजाम स्वीकार करले। ऐसी ही स्थिति काश्मीर तथा मैसूर में होगी।

२. राज्यों की तीन श्रेणियां

जैसा कि पहले बताया जा चुका है भारत राज्यों का संघ है। भारत में २७ राज्य हैं, जिन्हें तीन श्रेणियों में विभाजित किया गया है। इनमें से १० राज्यों (अजमेर, कच्छ, कोड़गू, त्रिपुरा, दिल्ली, बिलासपुर, भोपाल, मनीपुर, विन्ध्यप्रदेश तथा हिमाचल प्रदेश) का प्रशासन राष्ट्रपति द्वारा किया जायेगा तथा वह मुख्य आयुक्त या उपराज्यपाल नियुक्त करके या पड़ौसी राज्य की सरकार द्वारा इन राज्यों का प्रशासन चलायेगा।

इन राज्यों के लिये संसद् विधि द्वारा विधान-मंडल या मंत्रि-परिषद् आदि भी बनवा सकती है (अनु० २३९-२४२)।

शेष सत्तरह राज्यों में से ९ राज्यों में (जो पहले प्रांत थे), एक एक राज्यपाल होगा जो राष्ट्रपति द्वारा नियुक्त होगा तथा राष्ट्रपति के प्रसाद पर्यंत पद धारण करेगा, किन्तु साधारणतः उसकी पदावधि पांच वर्ष होगी।

उपर्युक्त राज्यों के अतिरिक्त आठ अन्य राज्य (१) जम्मू और काश्मीर (२) त्रावनकोर-कोचीन अथवा टेक्कू-केरल (३) पटियाला तथा पूर्वी पंजाब राज्य संघ अथवा फुलकिया राज्य (४) मध्यभारत (५) मैसूर (६) राजस्थान (७) सौराष्ट्र और (८) हैदराबाद हैं। इन में राज्यपालों के स्थान पर राजप्रमुख हैं।

राजप्रमुखों के राज्यों पर राष्ट्रपति का अपेक्षाकृत अधिक नियंत्रण होगा। यह इस लिये किया गया है कि वहां जनतंत्र पद्धति ने इतनी प्रगति नहीं की है जितनी कि राज्यपालों के राज्यों में की है।

३. राज्यपाल या राजप्रमुख

राज्य की कार्यपालिका शक्ति राज्यपाल अथवा राजप्रमुख में निहित होगी, तथा वह उसका प्रयोग इस संविधान के अनुसार करेगा। (अनु० १५४)।

राज्यपाल या राजप्रमुख संसद या किसी विधान-मंडल का सदस्य न होगा तथा अन्य कोई लाभ का पद धारण न करेगा। राज्यपाल का वेतन साढ़े पांच हजार रुपये प्रतिमास होगा तथा उसे भत्ते तथा पदावास भी मिलेगा।

राजप्रमुखों को निजी थैली के रूप में जो राशि मिलती है वही मिलेगी तथा अपना महल न होने पर पदावास भी मिल सकेगा ।

राज्यपाल या राजप्रमुख राष्ट्रपति के समान अपने पद की शपथ लेगा ।

राज्य के किसी विषय संबंधी किसी अपराध के संबंध में राज्यपाल या राजप्रमुख को क्षमा या लघुकरण आदि की शक्ति होगी ।

राज्यपाल या राजप्रमुख के कृत्य दो प्रकार के हैं—

(१) जिनमें वह स्वविवेक से कार्य करेगा,

(२) जिनमें वह मंत्रि-परिषद् की मंत्रणा से कार्य करेगा ।

उसे किस विषय में स्वविवेक से कार्य करना है, यह निश्चय वह स्वयं ही करेगा (अनु० १६३) ।

४. राज्यपाल की विधायिनी शक्तियां

उस समय को छोड़ कर जब कि विधान-सभा या दोनों सदन सत्र में हैं, राज्यपाल (या राजप्रमुख) तुरन्त कार्यवाही की आवश्यकता होने पर अध्यादेश जारी कर सकता है, जो विधान-मंडल के अधिनियम के समान प्रभावी होगा, किन्तु ऐसा अध्यादेश विधान-मंडल के समक्ष रखा जायेगा, तथा विधान-मंडल के पुनः समवेत होने के बाद ६ सप्ताह की समाप्ति पर प्रवर्तन में न रहेगा ।

५. मंत्रि-परिषद्

मंत्रि-परिषद् का प्रधान मुख्य मंत्री होगा । मुख्य-मन्त्री की नियुक्ति राज्यपाल या राजप्रमुख करेगा तथा अन्य मन्त्रियों की भी नियुक्ति वह मुख्य-मन्त्री की मंत्रणा से करेगा । मंत्री अपने पद राज्यपाल या राजप्रमुख के प्रसाद पर्यन्त धारण करेंगे । उड़ीसा, बिहार, मध्यप्रदेश और मध्यभारत राज्यों में आदिम जातियों के कल्याण के लिये एक मन्त्री होगा (अनु० १६३, १६४) ।

मन्त्रि-परिषद् विधान-सभा के प्रति सामूहिक रूप से उत्तरदायी होगी [अनु० १६४ (२)] ।

६. महाधिवक्ता

प्रत्येक राज्यपाल (या राजप्रमुख) राज्य के लिये एक महाधिवक्ता नियुक्त करेगा जो उच्च न्यायालय के न्यायाधीश नियुक्त होने की योग्यता रखने वाला व्यक्ति होगा। वह राज्यपाल के प्रसाद पर्यन्त पद धारण करेगा तथा भारत के महान्यायवादी के समान उस राज्य के सम्बन्ध में कार्य करेगा (अनु० १६५)।

७. सरकारी कार्य का संचालन

राज्य की सरकार की समस्त कार्यपालिका कार्यवाही राज्यपाल (या राजप्रमुख) के नाम से की हुई कही जायेगी (अनु० १६६)।

मुख्य मंत्री का कर्तव्य होगा कि प्रशासन सम्बन्धी तथा विधान संबंधी सब सूचनायें राज्यपाल (या राजप्रमुख) को देता रहे (अनु० १६७)।

८. विधान-मंडल की रचना

प्रत्येक राज्य में एक विधान-मंडल होगा जिसमें राज्यपाल (या राज-प्रमुख) तथा विधान-सभा नामक सदन होगा। पंजाब, पश्चिमी बंगाल, बिहार, मुंबई, उत्तरप्रदेश तथा मैसूर के विधान-मंडलों में एक एक और सदन भी होगा जिसका नाम विधान-परिषद होगा। संसद, किसी राज्य की विधान सभा की प्रार्थना पर वहां की विधान-परिषद को हटा सकती है, या, नहीं हो तो, उसका सृजन कर सकती है (अनु० १६८-१६९)।

विधान-सभा—विधान सभा में ६० से लेकर पांच सौ तक सदस्य होंगे जो प्रत्यक्ष निर्वाचत द्वारा चुने जायेंगे। जनसंख्या के प्रत्येक ७५ हजार के लिये एक से अनधिक प्रतिनिधि होगा (अनु० १७०)।

लोक प्रतिनिधित्व अधिनियम १९५० के अनुसार राज्यों की विधान-सभाओं के कुल स्थानों की संख्या निम्न लिखित होगी :

भाग (क) राज्यपालों के राज्य

१.	उत्तर प्रदेश	४३०
२.	मद्रास	३७५
३.	बिहार	३३०
४.	बंबई	३१५
५.	पश्चिमी बंगाल	२३८
६.	मध्य प्रदेश	२३२
७.	उड़ीसा	४०
८.	पंजाब	१२६
९.	आसाम	१०८

भाग (ख) राजप्रमुखों के राज्य

१.	हैदराबाद	१७५
२.	राजस्थान	१६०
३.	त्रावनकोर-कोचीन	१०८
४.	मैसूर	९९
५.	मध्यभारत	९९
६.	सौराष्ट्र	६०
७.	प० पू० पं० रा० संघ.	६०

विधान-सभा की कालावधि पांच वर्ष होगी, किन्तु आपात की स्थिति में संसद उसे बढ़ा सकती है।

विधान परिषद्: किसी राज्य की विधान-परिषद के सदस्यों की संख्या उस राज्य की विधान-सभा के सदस्यों की संख्या की एक चौथाई से अधिक न होगी, किन्तु चालीस से कम भी न होगी।

जब तक संसद अन्यथा उपबन्ध न करे, तब तक विधान-परिषद की रचना इस प्रकार होगी कि :

(क) यथाशक्य तृतीयांश सदस्य नगर पालिकाओं, नगरमंडलों आदि द्वारा चुने जायेंगे,

(ख) द्वादशांश उस राज्य के स्नातकों द्वारा चुने जायेंगे,

(ग) द्वादशांश माध्यमिक पाठशालाओं के शिक्षकों द्वारा चुने जायेंगे,

(घ) तृतीयांश विधान-सभा के सदस्यों द्वारा चुने जायेंगे,

(ङ) शेष राज्यपाल द्वारा नियुक्ति होंगे जो साहित्य, विज्ञान, कला, सहकारी आंदोलन और सामाजिक सेवा में विशेषज्ञ हों (अनुच्छेद १७१)।

विधान-परिषदों में स्थानों का वितरण

राज्य का नाम	कुल स्थान	उपखंड (क)	उपखंड (ख)	उपखंड (ग)	उपखंड (घ)	उपखंड (ङ)
राज्यपालों के राज्य						
१. उत्तरप्रदेश	७२	२४	६	६	२४	१२
२. मद्रास	७२	२४	६	६	२४	१२
३. बिहार	७२	२४	६	६	२४	१२
४. बम्बई	७२	२४	६	६	२४	१२
५. पश्चिमी बंगाल	५१	१७	४	४	१७	९
६. पंजाब	४०	१३	३	३	१३	८
राजप्रमुख का राज्य						
१. मैसूर	४०	१३	३	३	१३	८

विधान-परिषद् का विघटन न होगा किन्तु उसके एक तिहाई सदस्य प्रत्येक द्वितीय वर्ष की समाप्ति पर बदल जायेंगे।

९. सदस्यों की अर्हता

विधान-सभा की सदस्यता के लिये अभ्यर्थी भारत का नागरिक होने के अतिरिक्त २५ वर्ष से अधिक आयु का होना चाहिये, तथा विधान-परिषद् के लिये तीस वर्ष से कम न होना चाहिये।

संसद् विधान-मंडल की सदस्यता के लिये अन्य योग्यताएं भी निर्धारित कर सकती है।

निम्न प्रकार के व्यक्ति सदस्यता के लिये अयोग्य होंगे:—

(१) जो कोई लाभ का पद धारण किये हुए हो ।

(२) जो विकृतचित्त हो ।

(३) जो अनुन्मुक्त दिवालिया हो ।

(४) जो भारत का नागरिक न हो

(५) जो संसद् की किसी विधि द्वारा अनर्ह कर दिया गया हो ।

जो अनर्ह होते हुए सदन में बैठे या मत दे वह प्रत्येक दिन के लिये ५०० रुपये के दंड का भागी होगा ।

विधान-मंडलों के सदस्यों की शक्तियां, विशेषाधिकार और उन्मुक्तियां प्रायः वैसी ही हैं जैसी कि संसद् के सदस्यों के विषय में लिखी गई हैं ।

राज्य के विधान-मंडल का कोई सदन अपनी प्रक्रिया के तथा अपने कार्य-संचालन के विनियमन के लिये नियम बना सकेगा ।

भाषा : राज्य के विधान-मंडल में कार्य राज्य की राजभाषा या हिन्दी या अंग्रेजी में किया जायेगा । किन्तु पंद्रह वर्ष बाद अंग्रेजी में कार्य न होगा, जब तक कि विधान-मंडल अन्यथा उपबन्ध न करे ।

न्यायाधीशों की आलोचना:—उच्चतम न्यायालय या किसी उच्च न्यायालय के किसी न्यायाधीश के अपने कर्तव्य पालन में किये गये आचरण के विषय में विधान-मंडल में कोई चर्चा न होगी ।

१०. विधान-मंडल और कार्यपालिका

सदनों के सत्र बुलाने का कार्य, सत्रावसान तथा विघटन का कार्य राज्यपाल (या राजप्रमुख) करेगा । वह सदनों को सम्बोधित भी कर सकेगा तथा उन्हें संदेश भेज सकेगा । सत्र के आरम्भ में वह सदनों को सम्बोधित करके आह्वान का कारण बतायेगा ।

विधान--मंडल को प्रतिवर्ष कम से कम दो बार अधिवेशन के लिये आहूत किया जायेगा तथा दो बैठकों के बीच छै मास का अन्तर न होगा (अनु० १७४, १७५ तथा १७६)।

११. विधान-मंडल के पदाधिकारी

विधान-सभा में एक अध्यक्ष तथा एक उपाध्यक्ष होंगे जिन्हें वह सभा निर्वाचित तथा पदच्युत कर सकेगी। इसी प्रकार विधान-परिषद् में सभापति तथा उपसभापति होंगे। प्रत्येक सदन का पृथक साचविक कर्मचारी-वृन्द भी होगा, जिस पर उस सदन का नियंत्रण होगा।

१२. विधान-मंडल में कार्यप्रणाली

बहुमत से निश्चय : सदन की बैठकों में सब प्रश्नों का निर्धारण मत देने वाले उपस्थित सदस्यों के बहुमत से होगा।

विधान प्रक्रियाः धन-विधेयक केवल विधान-सभा में ही आरम्भ होंगे, किन्तु अन्य विधेयक विधान-परिषद् में भी, जहां वह हो, आरंभ हो सकते हैं। विधान-परिषद् वाले राज्य में विधान-सभा से पारित होने के बाद, धन-विधेयक विधान-परिषद् को उसकी सिफारिशों के लिये भेजा जायेगा, तथा विधान-परिषद् उसे चौदह दिन के भीतर अपनी सिफारिशों सहित विधान-सभा को लौटा देगी, और विधान-सभा उन सिफारिशों को स्वीकार या अस्वीकार कर सकेगी।

अन्य विधेयक, विधान-सभा में पारित होने के पश्चात, यदि विधान-परिषद् में अस्वीकार कर दिये जायें, या तीन मास तक पारित न हों या ऐसे संशोधनों सहित पारित हों जो सभा को स्वीकार्य न हों, तो सभा उन्हें दोबारा पारित करके परिषद् में भेजेगी और एक मास तक वे परिषद् में पारित न हों तो भी पारित समझे जायेंगे।

अर्थात् राज्यों में विधान-परिषद् को किसी विधेयक के विषय में अन्तिम निर्णय करने का अधिकार नहीं है।

१३. राज्यपाल या राजप्रमुख की अनुमति

विधान-सभा द्वारा (या जहां दो सदन हों वहा दोनों के द्वारा) पारित होने के पश्चात प्रत्येक विधेयक राज्यपाल (या राजप्रमुख) के समक्ष उपस्थित

किया जायेगा तथा वह उस पर या तो अनुमति दे देगा, या उसे, यदि वह धन-विधेयक नहीं हो तो, सदन या सदनों को अपने संदेश के साथ पुनर्विचार के लिये लौटा सकेगा। परन्तु यदि वह विधेयक सदन या सदनों द्वारा संशोधन सहित या रहित पुनः पारित हो जाये तो वह उस पर अपनी अनुमति न रोकेगा।

इसके अतिरिक्त यदि किसी विधेयक द्वारा उच्चन्यायालय की शक्तियों का अल्पीकरण होता हो तो राज्यपाल (या राज्यप्रमुख) उसे राष्ट्रपति के विचारार्थ रक्षित भी रख सकेगा, तथा ऐसे विधेयक पर राष्ट्रपति या तो अपनी सम्मति दे देगा या अपने संदेश के साथ, राज्यपाल के द्वारा, सदन या सदनों को वापस भेज देगा। यदि वह विधेयक सदन या सदनों द्वारा संशोधन सहित या रहित पुनः पारित हो जाये तो वह राष्ट्रपति के समक्ष उसके विचार के लिये पुनः उपस्थित किया जायेगा।

१४. राज्यों का आय-व्ययक

प्रत्येक वित्तीय वर्ष के बारे में राज्य के विधान-मंडल के सदन या सदनों के समक्ष राज्यपाल या राजप्रमुख उस वर्ष के लिये प्राक्कलित प्राप्तियों और व्ययों का विवरण (बजट) रखवायेगा। उसमें उस राज्य की 'संचित निधि' पर भारित व्यय तथा अन्य व्ययों की राशियां पृथक पृथक दिखाई जायेंगी। राज्यपाल की उपलब्धियां, सदनों के सभापति, उपसभापति, अध्यक्ष, उपाध्यक्ष के वेतनादि, ऋण, निक्षेप-निधि-भार, मोचन भार, उच्च न्यायालय के न्यायाधीशों के वेतन, आदि व्यय राज्य की संचित निधि पर भारित व्यय होंगे। भारित व्यय पर विधान-सभा में मतदान नहीं होगा, किन्तु चर्चा हो सकती है। अन्य व्यय की प्राक्कलनें अनुदानों के रूप में रखी जायेंगी, तथा विधान-सभा किसी मांग को स्वीकार, अस्वीकार अथवा कम कर सकती है। राज्यपाल (या राजप्रमुख) की सिपारिश के बिना किसी भी अनुदान की मांग न की जायेगी। इस प्रकार स्वीकृत धन के अतिरिक्त कोई धन राज्य की संचित निधि में से नहीं निकाला जायेगा। वर्ष के मध्य में अनुपूरक, अपर या अतिरिक्त अनुदानों की भी मांग विधान-सभा में पेश की जा सकती है। कोई धन-विधेयक राज्यपाल की सिपारिश के बिना प्रस्तावित न किया जायेगा।

चतुर्थ अध्याय

संघ और राज्यों के संबंध

१. विषय-वितरण

क्योंकि भारत एक संघ है अतः राज्यों तथा केन्द्र में शक्ति विभाजन संविधान द्वारा किया गया है। १९३५ के अधिनियम के अनुसार ही इस संविधान में भी तीन सूचियां हैं संघ-सूची, राज्य-सूची तथा समवर्ती सूची जो पुस्तक के परिशिष्ट के रूप में दी गई हैं। संसद को संघ-सूची तथा समवर्ती सूची के विषयों पर समस्त राज्यक्षेत्र के लिये विधि बनाने का अधिकार है, तथा राज्य-सूची के विषयों पर उन क्षेत्रों के विषय में विधि बनाने की शक्ति है जो केन्द्र द्वारा शासित हैं यथा दिल्ली, अजमेर, भोपाल, हिमाचल प्रदेश, कच्छ, अन्दमान आदि। जो विषय किसी सूची में नहीं हैं उनके बारे में भी संसद को विधि बनाने की अनन्य शक्ति है, तथा ऐसे कर लगाने की भी शक्ति है जो किसी सूची में वर्णित नहीं हों (अनु० २४६, २४७)।

यदि राज्य-परिषद दो तिहाई बहुमत द्वारा घोषित कर दे कि राष्ट्रीय हित में यह आवश्यक या इष्टकर है कि संसद राज्य-सूची के किसी विषय

विशेष पर विधि बनाये तो संसद् को ऐसा करने की क्षमता होगी। किन्तु यह नियम एक वर्ष तक ही प्रवृत रहेगा। राष्ट्रपति द्वारा आपात की उद्घोषणा कर देने पर भी संसद् को राज्य-सूची के विषयों पर विधि बनाने की शक्ति मिल जायेगी। इन उपबन्धों की कोई बात राज्यों के विधान-मंडलों की विधायिनी शक्ति को निर्बन्धित न करेगी, किन्तु विधान-मंडलों की विधियां उसी मात्रा तक प्रभावी होंगी जहां तक कि वे संसद् की विधि के विरुद्ध न हो (अनु० २४६, २५०)

संसद् किसी अन्य देश के साथ की हुई संधि, करार या अभिसमय अथवा किसी अन्तर्राष्ट्रीय संस्था के विनिश्चय के पालनार्थ समस्त भारत के लिये विधि बना सकती है।

यदि समवर्ती सूची के विषय पर संसद् तथा राज्यों के विधान मंडल दोनों विधियां बना दें, तो राज्यों की विधियां विरोध की मात्रा तक शून्य होंगी चाहे संसद् की विधि पहले पारित हुई हो या पीछे (अनु० २५१)।

२. प्रशासन-सम्बन्ध

संविधान में यद्यपि संघ की कार्यपालिका को राज्य की कार्यपालिका से भिन्न माना गया है तथापि वास्तव में संघ के सारे कार्यों के लिये प्रत्येक राज्य में उनके अधिकारियों का रहना आवश्यक नहीं है। अर्थात केन्द्र की विधियों को लागू करने के लिये केन्द्र की पुलिस या काराग्रह आदि होना अपेक्षित नहीं है। इस कारण राज्यों की कार्यपालिकाओं को अनुच्छेद २५६ द्वारा यह आदेश दिया गया है कि वे अपनी शक्तियों का प्रयोग इस प्रकार करें जिससे की संसद् की विधियों का पालन सुनिश्चित रहे, तथा इस विषय में संघ राज्यों को निदेश दे सकता है, राज्य संघ की कार्यपालिका शक्ति के प्रयोग में अड़चन या प्रतिकूल प्रभाव न डालेंगे, तथा संघ अपने किसी विषय सम्बन्धी कृत्य, राज्य की सरकार की सम्मति से, उस सरकार को या उसके पदाधिकारियों को सौंप सकेगा (अनु० २५६, २५७, २५८)।

इस उपबन्धों का आशय यह है कि राज्य संघ-सूची के विषय में संघ के अभिकर्ता के समान होंगे, किन्तु उन्हें इसके लिये संघ सरकार से अतिरिक्त खर्च वसूल करने का अधिकार है।

राज्यों के बीच विवादों की जांच करने, उन पर मंत्रणा देने तथा सिपारिशें करने लिये राष्ट्रपति एक अन्तर्राज्य-परिषद् की भी स्थापना कर सकेगा। अन्तर्राज्यिक नदी या नदी-दूनों के या जलों के प्रयोग, वितरण आदि के बारे में विवाद या फरियाद के न्याय-निर्णयन के लिये भी संसद उपबन्ध कर सकेगी

किन्तु याद रहे, साधारणत: राज्यों के बीच के विवाद तथा संघ और राज्यों के बीच के विवाद उच्चतम न्यायालय में ही जायेंगे।

३. आपात उपबन्ध

जैसा कि हम पहले लिख चुके हैं, भारत का संविधान मूलतः संघीय है किन्तु युद्ध आदि आपात के समय वह एकात्मक भी हो सकता हैं ।

जब राष्ट्रपति का समाधान हो जाये कि गम्भीर आपात विद्यमान है जिससे कि युद्ध या वाह्य आक्रमण या आन्तरिक अशांति से या उसके सन्निकट होने से भारत की या उसके किसी भाग की सुरक्षा संकट में है तो वह आपात की उद्घोषणा कर सकता है, जो संसद् के प्रत्येक सदन के समक्ष रखी जायेगी, तथा दोनों सदन उसका अनुमोदन न कर दें तो वह उद्घोषणा दो मास के पश्चात प्रवर्तन में न रहेगी।

जब ऐसी उद्घोषणा हो जाये तो संसद् को अधिकार होगा कि वह राज्य-सूची के विषयों पर विधि बना सके तथा राज्यों को उनकी कार्यपालिका शक्ति के प्रयोग के विषय में निदेश दे सके (अनुच्छेद ३५२-३)।

वाह्य आक्रमण और आंतरिक अशांति से प्रत्येक राज्य का संरक्षण करना संघ का कर्तव्य होगा। संघ यह भी सुनिश्चित करेगा कि राज्यों की सरकारें इस संविधान के उपबन्धों के अनुसार चलाई जायें (अनु० ३५५)।

४. राज्यों में सांविधानिक विफलता

यदि किसी राज्य के राज्यपाल या राजप्रमुख से प्रतिवेदन (रिपोर्ट) मिलने पर या अन्यथा राष्ट्रपति का समाधान हो जाये कि ऐसी स्थिति

पैदा हो गई है जिसमें कि उस राज्य का शासन इस संविधान के उपबन्धों के अनुसार नहीं चलाया जा सकता, तो राष्ट्रपति उद्घोषणा द्वारा वहां की सरकार के कृत्य राज्यपाल या राजप्रमुख को दे सकेगा, विधान-मंडल की शक्तियां संसद को दे सकेगा, अन्य किसी प्राधिकारी की शक्तियां स्वयं ले सकेगा, तथा संविधान के किसी उपबन्ध को निलम्बित कर सकेगा, किन्तु वह उच्च न्यायालय की शक्तियों को कम न कर सकेगा (अनु० ३५६)।

यह उद्घोषणा संसद के दोनों सदनों के समक्ष रखी जायेगी तथा संसद द्वारा अनुमोदित न हो तो दो मास पश्चात समाप्त हो जायेगी।
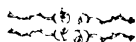
पांचवां अध्याय

न्यायपालिका

१. सामान्य

जैसा कि पहले बताया जा चुका है समस्त भारत की एक ही न्यायपालिका होगी। उसका निर्माण इस प्रकार होगा :—

उच्चतम न्यायालय
|
उच्च न्यायालय
|
जिला न्यायालय
|
अन्य छोटे न्यायालय
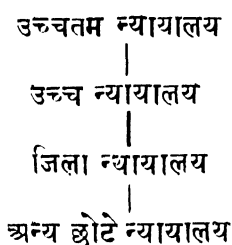
अपीलें आदि नीचे से उच्चतम न्यायालय तक विधि अनुसार जा सकेंगी। संघ तथा राज्यों के कानूनों के लिये भिन्न भिन्न न्यायालय नहीं होंगे। प्रत्येक न्यायालय का कर्तव्य होगा कि वह विधि अनुसार निर्णय करे, चाहे वह विधि राज्य के विधान-मंडल की हो चाहे संसद की।

२. संघ की न्यायपालिका

भारत का एक उच्चतम न्यायालय होगा, जिसमें भारत का एक मुख्य न्यायाधिपति तथा अन्य सात से अनधिक न्यायाधीश होंगे, जिन्हें राष्ट्रपति नियुक्त करेगा। उच्चतम न्यायालय के न्यायाधीश के रूप में वही व्यक्ति नियुक्त किया जायेगा जो भारत का नागरिक हो, तथा कम से कम लगातार ५ वर्ष तक किसी उच्च न्यायालय का न्यायाधीश रह चुका हो अथवा कम से कम दस वर्ष तक किसी उच्च न्यायालय का अधिवक्ता रह चुका हो अथवा राष्ट्रपति की राय में पारंगत विधिवेत्ता हो।

उच्चतम न्यायालय का न्यायाधीश पैंसठ वर्ष की आयु तक पद धारण करेगा, तथा अपने पद से तब तक न हटाया जा सकेगा, जब तक कि सिद्ध कदाचार अथवा असमर्थता के कारण संसद का प्रत्येक सदन समस्त सदस्य संख्या के बहुमत द्वारा, तथा उपस्थित और मतदान करने वाले समस्यों में से दो तिहाई बहुमत द्वारा उसे हटाने का प्रस्ताव पारित न हो जाये। उस अवस्था में उसे राष्ट्रपति पदच्युत करेगा (अनु० १२४)।

जो व्यक्ति एक बार उच्चतम न्यायालय का न्यायाधीश रह चुका हो वह भारत में वकालत नहीं कर सकता।

उच्चतम न्यायालय के मुख्य न्यायाधिपति का वेतन पांच हजार रुपये प्रतिमास तथा अन्य न्यायाधीशों का वेतन ४०००) रुपये प्रतिमास होगा। उन्हें भत्ते आदि तथा सरकारी पदावास भी मिलेगा। उनकी स्वतंत्रता को बनाये रखने के लिये ही उनके वेतनादि संविधान में उल्लिखित हैं और संसद को उन्हें कम करने का अधिकार नहीं है।

उच्च न्यायालय के तीन कार्य होंगे : प्रारंभिक क्षेत्राधिकार, अपीलीय क्षेत्राधिकार, तथा राष्ट्रपति को परामर्श देने का कार्य।

१. प्रारंभिक क्षेत्राधिकार—उच्चतम न्यायालय का प्रारंभिक क्षेत्राधिकार उन विवादों के विषय में होगा जो दो या अधिक राज्यों के बीच या भारत सरकार तथा एक या अनेक राज्यों के बीच हो तथा उसमें कोई ऐसा प्रश्न अन्तर्ग्रस्त हो जिसपर किसी वैध अधिकार का अस्तित्व या विस्तार निर्भर हो। ऐसे विवाद किसी अन्य न्यायालय में नहीं जा सकेंगे (अनु० १३१)।

२. अपीलीय क्षेत्राधिकार–किसी उच्च न्यायालय में दिये गये निर्णय, आज्ञाप्ति या अन्तिम आदेश की अपील उच्चतम न्यायालय में हो सकेगी :

संविधान-विषयक—(१) यदि वह उच्च न्यायालय प्रमाणित करदे कि उस मामले में संविधान के निर्वचन का कोई सारवान विधि-प्रश्न अन्तर्ग्रन्त है ;

(२) यदि उच्चतम न्यायालय का समाधान हो जाये कि उस मामले में ऐसा विधि-प्रश्न अंतर्ग्रस्त है;

व्यवहार-विषयक (३) यदि व्यवहार विषयक विवाद में उच्च न्यायालय प्रमाणित करदे कि विवाद-विषय कि राशि या मूल्य बीस हजार रुपये से अधिक है;

(४) यदि उच्च न्यायालय यह प्रमाणित करदे कि अपील में कोई सारवान विधि प्रश्न अंतर्ग्रस्त है;

दंड-विषयक (५) यदि उच्च न्यायालय ने अपील में किसी अभियुक्त व्यक्ति की विमुक्ति के आदेश को उलट कर उसे मृत्युदंड दिया हो;

(६) यदि उच्च न्यायालय ने किसी मामले को परीक्षण के हेतु अपने पास मंगा कर मृत्यु दंडादेश दिया हो;

व्यापक (७) यदि उच्च न्यायालय प्रमाणित करदे कि मामला उच्चतम न्यायालय में अपील के लायक है (अनु० १३२-१३४)।

इसके अतिरिक्त उच्चतम न्यायालय फेडरल न्यायालय के सारे क्षेत्राधिकारों का प्रयोग करेगा तथा संसद उसे और क्षेत्राधिकार तथा शक्तियां भी दे सकती है (अनु० १३५)।

उच्चतम न्यायालय को एक सर्वोपरि अधिकार भी दिया गया है कि वह भारत क्षेत्र में के किसी न्यायालय या न्यायाधिकरण के किसी निर्णय, आज्ञाप्ति या दंडादेश की अपील के लिये विशेष इजाजत दे सकेगा (अनु० १३६)।

३. परामर्श-संबन्धी कार्य:—यदि राष्ट्रपति को प्रतीत हो कि विधि या तथ्य संबंधी कोई प्रश्न ऐसे सार्वजनिक महत्व का है कि उस पर उच्चतम न्यायालय की राय लेना इष्टकर है तो वह उसकी राय ले सकेगा (अनु० १४३)।

संसद् किसी प्रयोजन के लिये निदेश, आदेश, बन्दीप्रत्यक्षीकरण लेख, परमादेश लेख, प्रतिषेध लेख, अधिकार पृच्छा लेख और उत्प्रेषण लेख तथा अन्य लेखों के निकालने की शक्ति भी उच्चतम न्यायालय को दे सकेगी (अनु० १३८)।

उच्चतम न्यायालय द्वारा घोषित विधि भारत राज्य-क्षेत्र के भीतर सब न्यायालयों को मान्य होगी तथा भारत राज्यक्षेत्र के सभी असैनिक और न्यायिक अधिकारी उच्चतम न्यायालय की सहायता करेंगे (अनु० १४०)।

उच्चतम न्यायालय को किसी व्यक्ति को हाजिर कराने या किसी दस्तावेजों को प्रकट या पेश कराने के लिये आदेश देने की समस्त शक्ति होगी (अनु० १४२)।

३. राज्यों के उच्च न्यायालय

प्रत्येक राज्य के लिये एक उच्च न्यायालय होगा। प्रत्येक उच्च न्यायालय अभिलेख न्यायालय होगा तथा उसे अपने अवमान के लिये दंड देने की शक्ति होगी। उसमें एक मुख्य न्यायाधिपति तथा अन्य न्यायाधीश होंगे जिनकी संख्या राष्ट्रपति नियत करेंगे। मुख्य न्यायाधिपति की नियुक्ति राष्ट्रपति उस राज्य के राज्यपाल या राजप्रमुख से परामर्श करके करेगा। अन्य न्यायाधीशों की नियुक्ति भी राष्ट्रपति ही करेगा तथा मुख्य न्यायाधिपति से उस विषय में परामर्श लेगा। प्रत्येक न्यायाधीश साधारणतः ६० वर्ष की आयु तक पद धारण करेगा और संसद् के समावेदन पर राष्ट्रपति द्वारा उसी प्रकार हटाया जा सकेगा जैसे कि उच्चतम न्यायालय का न्यायाधीश हटाया जाता है। न्यायाधीश को एक राज्य से दूसरे राज्य में स्थानांतरित किया जा सकता है तथा उच्चतम न्यायालय का न्यायाधीश भी नियुक्त किया जा सकता है। केवल वही व्यक्ति उच्च न्यायालय का न्यायाधीश नियुक्त किया जायेगा जो भारत का नागरिक हो, तथा भारत में कम से

कम दस वर्ष तक कोई न्यायिक पद धारण कर चुका हो अथवा किसी उच्च न्यायालय का दस वर्ष तक अधिवक्ता रह चुका हो।

उच्च न्यायालय का न्यायाधीश भारत के किसी न्यायालय में अथवा किसी प्राधिकारी के समक्ष वकालत या कार्य न करेगा।

प्रत्येक उच्च न्यायालय के न्यायाधीश को साढ़े तीन हजार रुपये प्रतिमास तथा मुख्य न्यायाधिपति को चार हजार रुपये प्रतिमास वेतन मिलेगा, तथा भत्ते, पदावास आदि भी मिलेंगे, जो उनके सेवाकाल में घटाये न जायेंगे। किन्तु राजप्रमुखों के राज्यों में इतने वेतनादि नहीं मिलेंगे। वहां वेतन-भत्ते आदि राजप्रमुख से परामर्श करके राष्ट्रपति निर्धारित करेगा किन्तु वे वेतनादि भी नियुक्ति के पश्चात कम नहीं किये जायेंगे।

उच्च न्यायालयों की शक्तियां:—उच्च न्यायालय को मूलाधिकारों के संबंध में या अन्यथा ऐसे निदेश या आदेश या लेख निकालने की शक्ति है, जिनमें बन्दी प्रत्यक्षीकरण, परमादेश, प्रतिषेध, अधिकार-पृच्छा और उत्प्रेषण के लेख भी सम्मिलित हैं। इससे उच्चतम न्यायालय को मूलाधिकारों के विषय में दी गई शक्ति का अल्पीकरण न होगा।

प्रत्येक उच्च न्यायालय अपने क्षेत्राधिकार में सब न्यायालयों और न्यायाधिकरण का अधीक्षण करेगा, उनसे विवरणी मंगा सकेगा, तथा उनके विषय में नियम बना सकेगा।

यदि उसके अधीन न्यायालय में कोई ऐसा मामला लम्बित है जिसमें, संविधान सम्बन्धी कोई सारवान विधि-प्रश्न निहित है तो उच्च न्यायालय उस मामले को अपने पास मंगा सकता है।

मुख्य न्यायाधिपति उच्च न्यायालय के पदाधिकारियों, सेवकों आदि के विषय में नियमानियम बना सकता है।

संसद किसी उच्च न्यायालय के क्षेत्राधिकार का विस्तार या अपवर्जन कर सकेगी।

४. अधीन न्यायालय

प्रत्येक राज्य में उच्च न्यायालय के अधीन जिला-न्यायालय भी होंगे, जिनमें जिला-न्यायाधीश की नियुक्ति उच्च न्यायालय से परामर्श करके राज्यपाल करेगा। जिला-न्यायाधीश वही व्यक्ति बन सकेगा जो कम से कम ७ वर्षों तक अधिवक्ता या वकील रह चुका हो। जिला-न्यायालय के अतिरिक्त अन्य न्यायालयों तथा न्यायाधीशों पर भी उच्च न्यायालय का नियंत्रण रहेगा, तथा वह उनके सम्बन्ध में नियमादि बना सकेगा।

छठा अध्याय

विशेष प्राधिकारी

१. सामान्य

भारत में पक्षपात, भ्रष्टाचार आदि पर रोक लगाने के लिये सर्वोच्च अधिकरण तो न्यायपालिका है ही, जिसके न्यायाधीशों को कार्यपालिका के दबाव से मुक्ति दिलाने के लिये यह उपबन्ध किया गया है कि उन्हें एक विशेष रीति से ही पदच्युत किया जा सकेगा। इस प्रकार कुछ अन्य स्वतन्त्र अधिकारियों की भी संविधान में व्यवस्था की गई है, यथा :

१. महालेखापरीक्षक—जो भारत सरकार तथा राज्यों की सरकारों के लेखाओं की परीक्षा करेगा।

२. निर्वाचन आयोग—जो निर्वाचनों की देखभाल करेगा।

३. लोक सेवा आयोग—जो लोक सेवाओं में नियुक्तियों के लिये परीक्षाओं का संचालन करेगा।

२. भारत का नियंत्रक-महालेखापरीक्षक

उच्चतम न्यायालय के समान नियंत्रक-महालेखापरीक्षक भी एक स्वतन्त्र प्रभुता सम्पन्न अधिकारी होगा। वह राष्ट्रपति द्वारा नियुक्त किया जायेगा तथा उसी रीति और उन्हीं कारणों से हटाया जायेगा, जिस रीति और जिन कारणों से उच्चतम न्यायालय का न्यायाधीश हटाया जाता है। न्यायाधीश के समान ही उसके वेतनादि में नियुक्ति के पश्चात कोई अलाभकारी परिवर्तन नहीं किया जायेगा। अपने पद पर रह जाने के पश्चात वह किसी पद का पात्र न होगा।

नियंत्रक महालेखा-परीक्षक भारत सरकार के तथा राज्यों के सब लेखाओं पर नियंत्रण रखेगा तथा लेखाओं को रखने की प्रणाली निश्चित करेगा और संघ लेखा सम्बन्धी अपने प्रतिवेदन राष्ट्रपति के समक्ष उपस्थित करेगा। राष्ट्रपति उन्हे संसद के समक्ष रखवायेगा।

उसी प्रकार राज्य के लेखा सम्बन्धी प्रतिवेदनों को राज्यपाल या राज्यप्रमुख के समक्ष उपस्थित किया जायेगा जो उनको राज्य के विधान मंडल के समक्ष रखवायेगा।

३. निर्वाचन आयोग

निर्वाचनों में निष्पक्षता एवं न्याय हो इस उद्देश्य से संविधान में उपबन्धित किया गया है कि निर्वाचनों के लिये नामावलि तैयार कराने तथा समस्त निर्वाचनों के संचालन, अधीक्षण, निदेशन और नियंत्रण, तथा निर्वाचनों से उद्भूत विवादों के निर्णय की व्यवस्था करने का काम एक 'निर्वाचन आयोग' में निहित होगा। आयोग में एक मुख्य निर्वाचन-आयुक्त तथा अन्य निर्वाचन-आयुक्त होंगे जिन्हें राष्ट्रपति नियुक्त करेगा। इसके अतिरिक्त प्रादेशिक आयुक्त भी आयोग से परामर्श करके नियुक्त्य किये जायेंगे।

मुख्य निर्वाचन आयुक्त की स्वतन्त्रता बनाये रखने के लिये यह उपबन्ध बनाया गया है कि उसे केवल उसी रीति से तथा उन्हीं कारणों से पदच्युत किया जा सकेगा, जिससे कि उच्चतम न्यायालय के न्यायाधीश को हटाया जा सकता है। अन्य किसी निर्वाचन आयुक्त को मुख्य निर्वाचन-आयुक्त की सिपारिश के बिना हटाया न जायेगा।

४. लोक-सेवा-आयोग

संघ की लोक सेवाओं में नियुक्तयों के लिये परीक्षाओं का संचालन करने के लिये एक संघ लोक सेवा आयोग होगा तथा इसी प्रकार प्रत्येक राज्य के लिये एक लोक सेवा आयोग होगा।

संघ लोक सेवा आयोग के अध्यक्ष तथा अन्य सदस्यों की नियुक्ति राष्ट्रपति करेगा और राज्य के लोक सेवा आयोग के अध्यक्ष तथा सदस्यों की नियुक्ति राज्यपाल या राजप्रमुख करेगा।

संघ-लोकसेवा-आयोग का सदस्य ६ वर्ष की अधिक तक अथवा ६५ वर्ष की आयु तक, जो भी इनमें से पहले हो, पद धारण करेगा। राज्य लोक सेवा आयोग का सदस्य ६ वर्ष की अवधि तक या ६० वर्ष की आयु तक, जो भी पहले हो, पद धारण करेगा। कोई सदस्य अपनी पदावधि की समाप्ति पर उस पद पर पुनर्नियुक्ति के लिये अपात्र होगा।

लोक-सेवा-अयोग का सदस्य केवल कदाचार के आधार पर राष्ट्रपति द्वारा पदच्युत किया जा सकता है। राष्ट्रपति उसे हटाने का आदेश देने से पहिले उच्चतम न्यायालय द्वारा जांच करवायेगा। किन्तु सदस्य को उसके पद से राष्ट्रपति उस अवस्था में हटा सकता है जब कि वह दिवालिया हो जाये, या कोई अन्य वैतनिक नौकरी करले या मानसिक अथवा शारीरिक दौर्बल्य के कारण अयोग्य हो जाये।

लोक सेवा आयोग परीक्षाओं के संचालन के अतिरिक्त भर्ती की रीतियों, पदोन्नति, बदली, अनुशासन आदि विषयों पर सरकार को परामर्श देगा। किन्तु सैनिक सेवाओं के विषय में उसका क्षेत्राधिकार नहीं होगा।

लोक सेवा-आयोगों तथा उनके कर्मचारी वृन्द का व्यय आदि भारत की या राज्य की संचित निधि पर भारित व्यय होगा।

संघ लोकसेवा आयोग अपने काम के बारे मे राष्ट्रपति को, तथा राज्यों के आयोग राज्यपाल या राजप्रमुख को, प्रतिवर्ष प्रतिवेदन देंगे तथा आयोगों का परामर्श स्वीकार न किया जायेगा तो उनके कारण संसद या राज्यों में विधान-मंडलों को बताये जायेंगे।

सातवां अध्याय

विशेष क्षेत्र तथा जातियां

१. अंदमान द्वीप समूह

अब तक हम भारत के २७ राज्यों का वर्णन कर चुके हैं। किन्तु राज्यों के अतिरिक कुछ अन्य भूमिभाग भी भारत के राज्यक्षेत्र में सम्मिलित हैं, यथा अंदमान तथा निकोबार। ऐसे राज्यक्षेत्रों का प्रशासन राष्ट्रपति करेगा, तथा वहां मुख्य आयुक्त या अन्य प्राधिकारी भी नियुक्त करेगा। राष्ट्रपति वहां शान्ति और सुशासन के लिये विनियम बना सकेगा तथा संसदीय विधि में भी वहां के लिये संशोधन कर सकेगा (अनुच्छेद २४३)। इसी प्रकार अर्जित किये गये राज्य-क्षेत्रों का प्रशासन भी राष्ट्रपति. करेगा।

२. अनुसूचित और आदिम जाति क्षेत्र

आसाम में विशेषता तथा अन्य राज्यों में भी कई ऐसे प्रदेश हैं जहाँ आदिम जातियाँ निवास करती हैं। वे जातियाँ बहुत पिछड़ी हुई होने के कारण उन पर सभ्य लोगों के कानून लागू नहीं किये जा सकते। उनके निवासियों को अन्य लोगों के शोषण से भी बचाने की अत्यन्त आवश्यकता

है। अतः उनके विषय में संविधान में विशेष उपबंध रखे गये हैं जो पंचम तथा षष्ठ अनुसूची में उल्लिखित हैं।

आसाम में ६ स्वायत्त शासी जिले होंगे जिनमें से प्रत्येक जिले में २४ से अनधिक सदस्यों की एक जिला-परिषद् होगी।

एक जिले में कई प्रादेशिक परिषदें भी हो सकती हैं यदि वहाँ भिन्न भिन्न प्रकार की आदिम जातियां हों।

इन जिला परिषद् तथा प्रादेशिक परिषदों में प्रशासन के अधिकार निहित होंगे, वे किसी हद तक विधि बना सकेंगी, तथा न्याय-प्रशासन के लिये ग्राम-परिषदें या न्यायालय गठित कर सकेंगी। तथा प्राथमिक विद्यालय स्थापित कर सकेंगी। उन्हें जिला तथा प्रादेशिक निधियां जमा करने की, तथा भूराजस्व निर्धारित करने और संग्रह करने तथा कर-आरोपण की भी शक्ति होगी। वे आदिम जातियों के अतिरिक्त अन्य लोगों की साहूकारी और व्यापार पर भी नियंत्रण रख सकेंगी। स्वायत्त शासी जिलों के प्रशासन की जाँच करने के लिये राज्यपाल एक आयोग भी नियुक्त कर सकेगा।

राज्यपाल इन सब परिषदों पर अपना नियंत्रण रखेगा।

आसाम के अतिरिक्त अन्य राज्यों में भी राष्ट्रपति अनुसूचित क्षेत्रों की घोषणा कर सकता है। ऐसे क्षेत्रों में राज्यपाल या राजप्रमुख यह निदेश दे सकेगा कि वहाँ संसद् या विधान मंडल का कोई विशेष अधिनियम लागू न हो, तथा वहां की शांति और सुशासन के लिये नियम बना सकेगा। वह वहां आदिमवासियों द्वारा भूमि के हस्तांतरण को रोकने के लिये, भूमि के बटवारे के लिये, तथा साहूकारी के व्यापार के लिये नियम बना सकेगा, किन्तु इसके लिये राष्ट्रपति की अनुमति आवश्यक होगी।

इसके अतिरिक्त प्रत्येक राज्य में जहां अनुसूचित जातियाँ यत्र तत्र बिखरी पड़ी हैं, एक आदिम जाति-मंत्रणा-परिषद् स्थापित की जायेगी जिसके बीस से अधिक सदस्य न होंगे, जिनमें कि तीन चौथाई उस राज्य की विधान सभा में आदिमजातियों के प्रतिनिधि होंगे। वह परिषद् उस राज्य की आदिम-

जातियों के कल्याण और उन्नति के संबद्ध विषयों पर राज्यपाल या राजप्रमुख को मंत्रणा देगी।

३ अल्पसंख्यकों का संरक्षण

जैसा पहले बताया जा चुका है भारत में संयुक्त निर्वाचन होंगे। मुस्लिम, ईसाई आदि वर्गों के लिये १९३५ के अधिनियम के समान स्थानों को रक्षित नहीं रखा गया है। किन्तु फिर भी अनुसूचित जातियों (हरिजनों तथा सिखों के पिछड़े हुये वर्गों) के लिये तथा आदिमजातियों के लिये उनकी जन-संख्या के अनुपात से स्थान रक्षित रहेंगे। यह स्थान-रक्षण लोकसभा तथा राज्यों की विधान-सभा में होगा। यदि राष्ट्रपति यह समझे कि आंग्ल-भारतीयों को लोकसभा में पर्याप्त प्रतिनिधित्व नहीं मिला है तो वह सभा में उनके एक या दो प्रतिनिधि नाम-निर्देशित कर सकेगा। इसी प्रकार राज्यपाल या राजप्रमुख उस समुदाय के कुछ सदस्यों को विधान-सभा में नाम-निर्देशित कर सकेगा। यह रक्षण व्यवस्था केवल दस वर्ष तक चलेगी।

सेवाओं में भी प्रशासन कार्यकुशलता को ध्यान में रखते हुये नियुक्तियों के विषय में अनुसूचित जातियों तथा आदिमजातियों के दावों का ध्यान रखा जायेगा।

रेल, डाकतार आदि संबन्धी सेवाओं में आंग्ल-भारतीयों को जो रक्षण अब प्राप्त है वह दस वर्ष तक बना रहेगा किन्तु प्रति दो वर्ष में दस प्रतिशत कम होता जायेगा।

आंग्ल-भारतीयों की शिक्षा पर जो विशेष व्यय होता है वह भी शनैः शनैः ही कम किया जायेगा तथा दस वर्ष में समाप्त होगा।

राष्ट्रपति एक विशेष पदाधिकारी भी नियुक्त करेगा जो अनुसूचित जातियों के विषय में उसे प्रतिवेदन देगा। इसी प्रकार राष्ट्रपति आदिमजातियों के कल्याण के बारे में प्रतिवेदन देने के लिये १० वर्ष के अन्दर ही एक आयोग नियुक्त करेगा। इसी प्रकार अन्य वर्गोंके लिये भी जो कि सामाजिक या शिक्षा की दृष्टि से पिछड़े हुये हैं एक आयोग नियुक्त किया जायेगा जो

इनकी कठिनाइयों, उपायों आदि के विषय में प्रतिवेदन देगा। उपरोक्त सारे प्रतिवेदन संसद के समक्ष रखे जायेंगे।

संघ-सरकार आदिमजातियों के कल्याणार्थ राज्यों को निदेश भी दे सकेगी।

राष्ट्रपति राज्यपाल या राजप्रमुख से परामर्श करके उस राज्य की अनुसूचित जातियों तथा अनुसूचित आदिमजातियों की सूची की घोषणा करेगा। एक बार अधिसूचना द्वारा यह सूची प्रकाशित होने पर उसमें परिवर्तन करने का अधिकार केवल संसद ही को होगा।

आठवां अध्याय

राजभाषा

१. संघ की राजभाषा

संविधान के अनुच्छेद ३४३ के अनुसार भारत की राजभाषा हिन्दी, तथा लिपि देवनागरी होगी, और अंक अंग्रेजी के होंगे, किन्तु १५ वर्ष तक समस्त राजकाज अंग्रेजी में होगा। १५ वर्ष की कालावधि में राष्ट्रपति किसी राजीकीय प्रयोग के लिये हिन्दी भाषा का तथा देवनागरी अंकों का प्रयोग प्राधिकृत कर सकेगा।

संविधान के आरम्भ से ५ वर्ष पश्चात तथा १० वर्ष पश्चात राष्ट्रपति एक आयोग गठित करेगा जिसमें भारत की मुख्य भाषाओं के प्रतिनिधि होंगे और जो राजकीय प्रयोजनों में हिन्दी भाषा के उत्तरोत्तर अधिक प्रयोग के बारे में सिफारिश करेगा (अनुच्छेद ३४४)।

आयोग के प्रतिवेदन पर विचार करने के लिये तीस सदस्यों की एक समिति गठित की जायेगी जिसमें २० लोक-सभा तथा १० राज्य-परिषद् के सदस्य होंगे जो क्रमशः उन सदनों द्वारा चुने जायेंगे।

भारत की मुख्य भाषाएं (संविधान की अष्टम अनुसूची)

१	हिन्दी	६	कन्नड़	११	पंजाबी
२	संस्कृत	७	कश्मीरी	१२	बंगाली
३	उर्दू	८	गुजराती	१३	मराठी
४	असमिया	९	तामिल	१४	मलयालम
५	उड़िया	१०	तेलुगु		

२. प्रादेशिक भाषाएं

राज्यों को अधिकार दिया गया है कि वे अपने राज्य की किसी भाषा अथवा हिन्दी को राजभाषा बना सकते हैं किन्तु जब तक ऐसा निर्णय न हो; तब तक अंग्रेजी का ही प्रयोग होता रहेगा (अनु० ३४५)।

याद रहे उत्तर प्रदेश, राजस्थान, मध्य प्रदेश, मध्य भारत तथा बिहार इन पांचों हिन्दी-भाषी राज्यों ने हिन्दी को अपनी राजभाषा घोषित कर दिया है।

कोई दो या अधिक राज्य अपने पारस्परिक संचार के लिये हिन्दी या तत्समय संघ की राजभाषा का प्रयोग कर सकते हैं किन्तु संघ के साथ राज्यों का संचार संघ की राजभाषा में ही होगा (अनु० ३४६)।

उच्चतम तथा उच्च न्यायालयों का कार्य अंग्रेजी में ही होगा जब तक कि संसद अन्यथा उपबन्ध न करे। किन्तु राज्यपाल या राजप्रमुख राष्ट्रपति की अनुमति से उस राज्य के न्यायालय में अन्य भाषा के प्रयोग को प्राधिकृत कर सकता है (अनु० ३४८)।

स्मरण रहे इसके अधीन मध्य भारत तथा राजस्थान के उच्च न्यायालयों में हिन्दी के प्रयोग को प्राधिकृत किया गया है तथा हैदराबाद और प० पू० पं० रा० सं० के उच्च न्यायालयों में उर्दू के प्रयोग की अनुमति दी गई है। किन्तु वे सब उच्च न्यायालय अपने निर्णय, आज्ञप्ति अथवा आदेश अंग्रेजी में ही देंगे।

संसद तथा राज्यों के विधान-मंडलों में सब अधिनियम अंग्रेजी में पारित किये जायेंगे तथा अध्यादेश, आदेश, नियम आदि अंग्रेजी में ही निकाले जायेंगे, किन्तु यदि कोई विधान-मंडल अन्य भाषा में कार्य करे तो उस राज्य का राजप्रमुख या राज्यपाल उन अधिनियमों आदि का अंग्रेजी अनुवाद प्रकाशित करायेगा।

कोई व्यक्ति व्यथा के निवारण के लिये संघ या राज्य के किसी पदाधिकारी को अपना अभिवेदन उस राज्य की किसी भाषा में दे सकता है।

हिन्दी भाषा का विकास

हिन्दी भाषा का विकास तथा प्रसार-वृद्धि करना संघ का कर्तव्य होगा तथा उसकी आत्मीयता में हस्तक्षेप किये बिना अन्य भारतीय भाषाओं के के रूप, शैली तथा पदावलि को आत्मसात करते हुए उसके शब्द-भंडार के लिये मुख्यत: संस्कृत से और गौणतः अन्य भारतीय भाषाओं से शब्द ग्रहण करते हुए हिंदी की समृद्धि सुनिश्चित करना भी संघ का कर्तव्य होगा (अनुच्छेद ३५१)।

नौवां अध्याय

संविधान का संशोधन

भारत का संविधान लचकदार है। इसका संशोधन एक विधेयक द्वारा हो सकता है जिसे संसद के दोनों सदन अपनी अपनी समस्त सदस्य संख्या के बहुमतों से तथा उपस्थित और मतदान करने वाले सदस्यों के दो तिहाई से अन्यून बहुमत से स्वीकार करें तथा तत्पश्चात राष्ट्रपति की स्वीकृति मिल जाये।

किंतु निम्न उपबन्धों में तभी संशोधन हो सकता है जब कि संसद में उक्त प्रकार पारित होने के बाद उस विधेयक का कम से कम आधे राज्यों के विधान-मंडल समर्थन करें:—

(क) राष्ट्रपति के निर्वाचन सम्बन्धी उपबन्ध (अनु० ५४ और ५५) संघ और राज्यों की कार्यपालिका शक्तियां (अनु० ७३ और १६२)

(ख) न्यायपालिका सम्बन्धी उपबन्ध (भाग ५ का अध्याय ४ तथा भाग ६ अध्याय ५) संघ और राज्यों के सम्बन्ध (भाग ११ अ० १)

(ग) विषय-वितरण और

(घ) संसद में राज्यों का प्रतिनिधित्व।

परिशिष्ट

नये संविधान की सप्तम अनुसूची

सूची १—संघ-सूची

(जिन विषयों पर संसद को विधि बनाने का अधिकार है।)

१ भारत की तथा उसके प्रत्येक भाग की प्रतिरक्षा।

२ नौ, स्थल और विमान-बल, संघ के अन्य सशस्त्र बल।

३ कटक-क्षेत्र।

४ नौ, स्थल और विमान बल की कर्मशालायें।

५ शस्त्रास्त्र, युद्धोपकरण, विस्फोटक, अभ्यस्त्र।

६ अणुशक्ति।

७ प्रतिरक्षा संबन्धी उद्योग।

८ केन्द्रीय गुप्तवार्ता और अनुसंधान विभाग।

९ प्रतिरक्षा, विदेशीय कार्य या सुरक्षा सम्बन्धी निवारक निरोध।

१० विदेशीय कार्य।

११ राजयनिक, वाणिज्य दूतिक और व्यापारिक प्रतिनिधित्व।

१२ संयुक्तराष्ट्र-संघटन।

१३ अतंर्राष्ट्रीय संस्थाओं में भाग लेना तथा उनके विनिश्चयों की पूर्ति।

१४ विदेशों से संधि और करार।

१५ युद्ध और शांति।

१६ विदेशीय क्षेत्राधिकार।

१७ नागरिकता, देशीयकरण तथा अन्यदेशीय।

१८ प्रत्यर्पण।

परिशिष्ट

१९ भारत में प्रवेश, उससे निर्वासन, पार-पत्र।

२० भारत के बाहर की तीर्थयात्राएं।

२१ महासागर या वायु में किये गये अपराध।

२२ रेल।

२३ राष्ट्रीय राज-पथ।

२४ अंतर्देशीय जल-पथ तथा राष्ट्रीय जल-पथ।

२५ समुद्र-नौवहन।

२६ प्रकाश-स्तम्भ।

२७ महा-पत्तन।

२८ पत्तन-निरोधा।

२९ वायु-पथ

३० रेल-पथ।

३१ डाक और तार; संचार।

३२ संघ-संपत्ति।

३३ संघ के प्रयोजनों के लिये संपत्ति का अर्जन।

३४ देशी राज्यों के शासकों की सम्पत्ति।

३५ संघ का लोक-ऋण।

३६ चलार्थ, टंकण और विधिमान्य, विदेशीय विनिमय।

३७ विदेशीय ऋण।

३८ भारत का रक्षित बैंक।

३९ डाकघर बचत बैंक।

४० सरकारी लाटरी।

४१ विदेशी व्यापार, शुल्क-सीमान्त।

४२ अंतर्राज्यिक व्यापार।

४३ व्यापारी निगम, सहकारी संस्थाओं को छोड़कर।

४४ अंतर्राज्यिक निगम, विश्व विद्यालयों को छोड़कर।

४५ महाजनी।

४६ विनिमय-पत्र, चैक, वचन-पत्र ।

४७ बीमा ।

४८ श्रेष्ठि-चत्वर, वादा बाजार ।

४६ एकस्व, आविष्कार, व्यापार-चिह्न ।

५० बाटों और मापों का मान स्थापन ।

५१ निर्यात की वस्तुओं के गुणों का मान-स्थापन ।

५२ लोक हित के उद्योग ।

५३ पैट्रोलियम, ज्वालाग्राही द्रव्य ।

५४ लोक-हित सम्बन्धी खानें ।

५५ श्रम का विनियमन, खानों में सुरक्षितता ।

५६ अन्तर्राज्यिक नदियों और नदी-दूनों का विकास ।

५७ मछली पकड़ना और मीन-क्षेत्र ।

५८ लवण का निर्माण ।

५६ अफीम ।

६० चल-चित्र ।

६१ संघ-सेवकों संबन्धी औद्योगिक विवाद ।

६२ राष्ट्रीय महत्व के पुस्तकालय, संग्रहालय आदि ।

६३ काशी हिन्दू विश्वविद्यालय, अलीगढ़ मुस्लिम विश्वविद्यालय तथा दिल्ली विश्वविद्यालय आदि ।

६४ राष्ट्रीय महत्व की वैज्ञानिक या शिल्पिक संस्थाएं ।

६५ कुछ अन्य संघ अभिकरण और संस्थाएं ।

६६ उच्चतर शिक्षा में एक सूत्रता लाना ।

६७ राष्ट्रीय महत्व के प्राचीन स्मारक, अभिलेख, अवशेष ।

६८ भूपत्तिमाप, भूतत्त्वीय, प्राणकीय परिमाप आदि ।

६६ जनगणना ।

७० अखिल भारतीय सेवाएं ।

७१ संघ-निवृत्ति-वेतन ।

७२ निर्वाचन (संसद् और विधान-मंडलों के)।

७३ संसद् के सदस्यों आदि के वेतन।

७४ संसद् के सदस्यों के विशेषाधिकार आदि।

७५ संघ के मंत्रियों, राष्ट्रपति, राज्यपाल आदि के वेतन, भत्ते आदि।

७६ लेखाओं की परीक्षा।

७७ उच्चतम न्यायालय का गठन, क्षेत्राधिकार आदि।

७८ उच्च न्यायालयों का गठन आदि।

७९ उच्च न्यायालय का दूसरे राज्य में क्षेत्राधिकार।

८० किसी राज्य के आरक्षी दल का अन्य राज्य में क्षेत्राधिकार।

८१ अन्तर्राज्यीय प्रव्रजन और निरोधा।

८२ कृषि आय को छोड़ कर अन्य आय पर कर।

८३ सीमा-शुल्क।

८४ तमाकू, मद्य, अफीम, भांग आदि के अतिरिक्त समस्त वस्तुओं पर उत्पादन-शुल्क।

८५ निगम-कर।

८६ कृषि भूमि के अतिरिक्त मूल-धन पर कर।

८७ कृषि भूमि को छोड़ कर अन्य सम्पत्ति-शुल्क।

८८ कृषि भूमि को छोड़ कर अन्य सम्पत्ति-उत्तराधिकार-शुल्क।

८९ रेल, समुद्र, वायु द्वारा ले गई वस्तुओं या यात्रियों पर कर।

९० श्रेष्ठि चत्वर और वादा बाजार के सौदों पर कर।

९१ विनिमय-पत्र, चैक आदि पर कर।

९२ समाचार पत्रों पर कर, विज्ञापनों पर कर।

९३ इस सूची से संबंधित विषयों के अपराध।

९४ इस सूची से संबंधित विषयों पर जांच आदि।

९५ न्यायालयों पर इस सूची संबंधी विषयों का क्षेत्राधिकार।

९६ इस सूची के विषयों पर फीसें (न्यायालय फीसों को छोड़ कर)।

९७ सूची (२) या (३) में अवर्णित अन्य विषय।

सूची २-राज्य-सूची

(जिन विषयों पर राज्यों को विधि बनाने का अधिकार है)

१ सार्वजनिक व्यवस्था

२ आरक्षी

३ न्याय-प्रशासन

४ कारागार, सुधारालय आदि

५ स्थानीय शासन

६ सार्वजनिक स्वास्थ्य और स्वच्छता

७ भारत के अन्दर की तीर्थयात्राएँ

८ मादक पान

९ अंगहीन तथा नौकरी के अयोग्य व्यक्तियों की सहायता

१० श्मशान तथा कबरस्थान

११ शिक्षा जिसके अन्तर्गत विश्वविद्यालय भी हैं।

१२ पुस्तकालय, संग्रहालय आदि

१३ सूची १ में अनुल्लिखित संचार अर्थात् सड़कें, नौकाघाट आदि

१४ कृषि

१५ पशु के नस्ल की उन्नति

१६ पश्वरोध

१७ जल, सिंचाई, नहरें, बंध, जलशक्ति आदि

१८ भूमि

१९ बन

२० वन्य प्राणियों और पक्षियों की रक्षा

२१ मीनक्षेत्र

२२ प्रतिपालक अधिकरण, भारग्रस्त और कुर्क सम्पदायें

२३ खान और खनिज

२४ उद्योग

परिशिष्ट

२५ गैस

२६ राज्य के अन्दर व्यापार वाणिज्य

२७ वस्तुओं का उत्पादन, सम्भरण, वितरण

२८ बाजार और मेले

२९ माप स्थापन को छोड़ कर बाट और माप

३० साहूकारी, कृषि ऋणिता का उद्धार

३१ पन्थशाला

३२ व्यापारिक, साहित्यक, वैज्ञानिक, धार्मिक संस्थायें, सहकारी समाजें, निगम

३३ नाट्यशाला, चलचित्र, क्रीड़ा, प्रमोद आदि

३४ पण लगाना और जूआ

३५ राज्य में निहित कर्मशालाएँ, भूमि और भवन

३६ राज्य के प्रयोजनार्थ संपत्ति का अर्जन

३७ संसदीय विधि के अधीन विधान-मंडल के निर्वाचन

३८ विधान-सभाओं के सदस्यों के अधिकार आदि

३९ विधान-सभाओं के सदस्यों आदि के वेतन आदि

४० राज्य के मंत्रियों के वेतन आदि

४१ राज्य लोक सेवाएं

४२ राज्य निवृत्ति वेतन

४३ राज्य का लोकऋण

४४ निखात निधि

४५ भू-राजस्व

४६ कृषि आय पर कर

४७ कृषि भूमि का उत्तराधिकार शुल्क

४८ कृषि भूमि का सम्पत्ति शुल्क

४९ भूमि और भवनों पर कर

५० खनिज अधिकार पर कर

५१ मद्य, अफीम, भांग आदि पर कर

५२ वस्तुओं के किसी स्थानीय क्षेत्र में प्रवेश पर कर

५३ विद्युत पर कर

५४ क्रय विक्रय कर

५५ समाचार पत्रों के अतिरिक्त अन्य विज्ञापनों पर कर

५६ सड़कों पर ले जाई जाने वाली वस्तुओं तथा यात्रियों पर कर

५७ सड़कों के यानों पर कर

५८ पशुओं और नौकाओं पर कर

५९ पथ कर

६० वृत्तियों व्यापारों आदि पर कर

६१ प्रतिव्यक्ति-कर

६२ विलास वस्तुओं पर कर, जूट पर कर

६३ मुद्रांक -शुल्क

६४ राज्य-सूची संबंधी अपराध

६५ राज्य सूची संबन्धी न्यायालय को क्षेत्राधिकार

६६ राज्य सूची संबन्धी शुल्क

सूची ३-समवर्ती सूची

(जिन विषयों र संघ तथा राज्यों दोनों को विधि बनाने का अधिकार है।)

१ दंड विधि

२ दंड प्रक्रिया

३ राज्य की सुरक्षा, सार्वजनिक व्यवस्था के लिये निवारक निरोध

४ कैदियों आदि का एक राज्य से दूसरे राज्य को हटाना

५ स्वीय विधि के विषय—विवाह, दत्तक, इच्छापत्र आदि

६ कृषि भूमि के अतिरिक्त अन्य सम्पत्तियों का हस्तान्तरण; विलेखों आदि का पंजीयन
७ संविदाएं
८ अभियोज्य दोष
९ दिवाला
१० न्यास
११ महाप्रशासक और राज न्यासी
१२ साक्ष्य और शपथें
१३ व्यवहार प्रक्रिया
१४ न्यायालय-अवमान
१५ आहिण्डन, अस्थिरवासी और आदिम जातियां
१६ उन्माद और मनोवैकल्य
१७ पशुओं के प्रति निर्दयता निवारण
१८ खाद्य पदार्थों में मिश्रण
१९ औषधि और विष
२० आर्थिक और सामाजिक योजना
२१ वाणिज्यिक और औद्योगिक एकाधिपत्य, गुट्ट और न्यास
२२ व्यापार संघ, श्रमिक विवाद
२३ सामाजिक सुरक्षा, सामाजिक बीमा, बेकारी
२४ श्रमिकों का कल्याण
२५ श्रमिकों का परीक्षण
२६ विधि वृत्तियां, वैद्यक वृत्तियां आदि
२७ शरणार्थियों की सहायता और पुनर्वास
२८ पूर्त और धार्मिक संस्थाएं
२९ सांक्रामिक रोगों का निवारण
३० जीवन सम्बन्धी सांख्यकी
३१ महा-पत्तनों के अतिरिक्त अन्य पत्तन

३२ नौ-वहन, जल पथ

३३ लोकहित के उद्योगों सम्बन्धी व्यापार, वाणिज्य

३४ मूल्य नियंत्रण

३५ यंत्र चालित यान

३६ कारखाने

३७ वाष्पयन्त्र

३८ विद्युत

३९ समाचार-पत्र, पुस्तकें और मुद्रणालय

४० पुरातत्व सम्बन्धी स्थान

४१ निष्क्राम्य सम्पत्ति

४२ अर्जित सम्पत्ति पर प्रतिकर

४३ किसी राज्य में, राज्य के बाहर पैदा हुए दावों विषयक वसूलियां

४४ मुद्रांक-शुल्क

४५ संघ-सूची और समवर्ती-सूची सम्बन्धी विषयों के लिये जांच

४६ समवर्ती सूची संबंधी विषयों पर न्यायालयों के क्षेत्राधिकार

४७ समवर्ती सूची सम्बन्धी विषयों के बारे में फीसें

समाप्त